ISSN : 2321-3922
जनवरी – 2020
BIHHIN05394
वर्ष – 5 अंक–19

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च 2020
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
अश्विनी प्रजावंशी
कुन्दन अमिताभ

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

ISSN - 2321-3922
RNI Reg. No. : BIHHIN05394/20-25
वर्ष–5, अंक–19
जनवरी–मार्च 2020

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–5, अंक–18
अक्टूबर – 2019

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल–जून– 2020 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

कृपया अपनी रचनाएँ
kurtidev -010 में ही
ई मेल : से भेजें

जनवरी–मार्च – 2020 वर्ष–5, अंक–19

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	कबीर और तुलसी की नारी–भावना	प्रो0 डॉ. बहादुर मिश्र	06
लघुशोध	हिन्दी में आलोचना का आरंभ	डॉ. मीना श्रीवास्तव	09
आलेख	प्रेमचंद युगीन अन्य उपन्यासकार	मधुरेश	12
कविता	कमला को पाने की होड़	हीरा प्रसाद हरेन्द	17
आलेख	काव्य परिदृश्य का सटीक उद्घाटन	डॉ. लव कुमार,	18
समीक्षा	सामाजिक सरोकारों का जीवंत दस्तावेज	डॉ. वरुण कुमार तिवारी	19
गज़लें	छल रहा है आदमी	विश्वम्भर पाण्डेय 'व्यग्र'	20
आलेख	उत्तर संस्कृति की जमीन पर पनपते खतरे	डॉ0. अमर सिंह बधान	21
आलेख	बेनीपुरी साहित्य में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक सद्भाव	पूनम कुमारी	23
लघुशोध	रेणु की कहानियों में ग्राम्य–जीवन	डॉ. छोटेलाल बहरदार	25
शोध आलेख	अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्	सुभाषचन्द्र झा	28
समीक्षा	चुप्पियों के बीच : जनसरोकार की ग़ज़लें	नीरज नीर	31
लघुशोध	घनानन्द की काव्यभाषा	सर्वेश सिंह	32
जीवनी साहित्य	विलक्षण व्यक्तित्व 'स्टीव्ह जोब्झ'	डॉ. अनंत वडघणे	35
समीक्षा	हिन्दीकाव्यालोचन : एक अध्ययन	दयानन्द जायसवाल	37
दोहा	नववर्ष	प्रो. शरद नारायण खरे	39
कहानी	मिहिर–मेघा	हरिप्रकाश राठी	40
गज़लें	बचपन में ही मैं कुछ बड़ी हो गई...	मंजरी पाण्डेय	41
कहानी	अपना वतन	पद्मा मिश्रा	42
कविता	शापित हैं हम	डॉ. किशोर अग्रवाल	43
कहानी	कुत्सित–मंशा	गोविन्द सेन,	44
कविताएँ	रिमझिम सावन, बेशर्म	डॉ. रश्मि नायर, सुनील कु0 पटेल	46
कहानी	आत्मचेतना	अजीत कुमार	47
लघुकथा	क्षतिपूर्ति, अहले करम	सीताराम गुप्ता	50
लघुकथा	महादेवी राज्यश्री, एक जवाबदेही और, अखबार	ए.के. सिन्हा, सत्य शुचि	51
कहानी	नाग–फांस	राजेन्द्र राकेश	52
कविताएँ	नारी, शब्द, राखी शुभ संदेश सुनाती	राजेन्द्र परदेशी, शैलेन्द्र चतुर्वेदी	53
कविताएँ	बदली मंजिल, समर्थन, सपनों के सच हो जाने तक	राजकुमार जैन राजन	54
कविताएँ	हे वसन्त, होली के रंग, क्षुधा के सृजन, जीवन का अर्थ	मनोरंजन सहाय सक्सेना	55
कविताएँ	वक्त, बीते दिन याद दिलाते हो, अंतर्मन का सपना	संजीव कुमार	56
समीक्षा	हन्दी उपन्यास को नया धरातल देता कुबेर	बी एल. आच्छा	57
आलेख	भारतीय नवजागरण के अग्रदूत : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	विनय कुमार सिंह	58
कविता	चिड़िया	महेन्द्र देवांगन 'माटी'	59
समीक्षा	डू नॉट लॉस योर कूल, लेट गो ऑफ योर इगो	दयानन्द जायसवाल	60

नई व्यंजना

तुम जो कहना चाहोगे
विगत युगों में कहा जा चुका
सुख का आविष्कार तुम्हारा
बार–बार वह सहा जा चुका
रहने दो, वह नहीं तुम्हारा
केवल अपना हो सकता जो
मानव के प्रत्येक अहं में
सामाजिक अभिव्यक्ति पा चुका
एक मौन ही है जो अब भी
नई कहानी कह सकता है
इसी एक घट में नवयुग की
गंगा का जल रह सकता है
संसृतियों की, संस्कृतियों की
तोड़ सभ्यता की चट्टानें
नई व्यंजना का सोता बस
इसी राह से बह सकता है।

– अज्ञेय

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

हमारा साहित्य सामाजिक जीवन व मानवीय जीवन की वह आधारशिला है जो कभी नींव का पत्थर होती है, उसपर हम बड़ी–बड़ी इमारतें खड़ा करते हैं, जिससे हमें समस्याओं से लड़ने की प्रेरणा मिलती है और नई भावनाओं तथा जिम्मेदारियों को बखूबी निभाने का संबल भी प्राप्त होता है। वर्तमान संदर्भों में समाज का जीवन दर्शन भी बनता है। आत्मीयता के माध्यम से हमारे जीवन के अनछूए पहलुओं को भी साहित्य ने ही उकेरा है, जिससे हमें समस्त मानवीय अथवा सामाजिक जीवन की पहेली का ज्ञान हो जाता है। प्रेम हो या भक्ति, ईर्ष्या हो या घृणा, उल्लास हो या जुगुप्सा, साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति क्रियाओं को प्रेरणा देने में प्रवृत्त होती है। इनकी अनुभूतियों और संवेदनाओं के बीच पारस्परिक संबंध होता है, यह हमारे जीवन में कहीं–न–कहीं अवश्य उपस्थित रहता है, जो यथार्थबोध की अनुभूति के प्रति आग्रहशील रहता है। यदि बुद्धिवादिता या राजनैतिकता से सपनों और भावनाओं पर समाज की मानवीयता तथा उसका मूल्य अधिक समय तक जीवित नहीं रहता है, तो साहित्य से उसे जीवनपरक दृष्टि मिलते ही पुनर्जीवित हो उठता है।

एक समय या जब साहित्यकार गरीब हुआ करते तो भी 'साहित्य का धनी' थे, किन्तु आज पैसों का धनी है तो साहित्य का निर्धन; क्योंकि इन्हें अपने साहित्य रचना–कौशल में डूबने का समय कहाँ। इनका साहित्यिक सृजन तो लिखने से पहले भाव लगाता है, प्रकाशक के अनुसार होता है, मित्रों को बाँटने के लिए होता है, पुरस्कार पाने के लिए होता है, जिसमें मौलिकता का क्षरण व अभाव होता जा रहा है। कभी–कभी लेखक को पता नहीं रहता वह क्या लिखे हैं, क्यों लिखे हैं, किसके लिए लिखे हैं! पर उसका ध्यान रहता है कि उसके कागज चिकने और अच्छे हों, रंगीन हो, वो ज्यादा अच्छा। पाठक की प्रस्तुति किंकर्तव्यविमूढ़ की होती है। जो कहते हैं कि हमने इतनी बहुप्रचारित किताब खरीदी, पर यह तो हमारी उम्मीदों पर खरी नहीं उतरी। इनकी पहली पुस्तक में भी कुछ खास नहीं था, मुफ्त समय भी जाता है। ऐसी स्थिति न आने पाए, यह साहित्यकारों को मिलकर सोचना होगा। इसके पहले के साहित्यकार अपना खून सुखाकर साहित्य– सृजन करते थे, चिमनी की रोशनी थी, उनकी रात कब और सुबह कब होती थी, यह पता पत्नी की डाँट से चलता था।

हमारा साहित्य सिर्फ स्वान्तः सुखाय नहीं, सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय की भावना से सृजित है। अश्वघोष का कहना है कि 'इस वक्त देश के साहित्यकारों में खेमेबाजी, गुटबाजी असहनीय स्तर तक है। कथाकार कवियों को कुछ नहीं समझते, कवियों में ग़ज़लकारों, गीतकारों आदि के अलग–अलग गुट हैं। सब एक दूसरे का विरोध, तीखी आलोचनाएँ करते रहते हैं। अपने को श्रेष्ठ, अन्य को नगण्य बताने में ही उन सबों की ऊर्जा चली जाती है। ये स्थितियाँ मुझे ही नहीं किसी भी समर्पित रचनाकार को असहज करती हैं। जब ऐसे गुटबाज, गोलबाज खुद असाहित्यिक गतिविधियों में संलिप्त होंगे तो उनसे समाज भला क्या उम्मीद कर सकता है।'' जबकि देख रहे हैं आज का युग पूर्णतः वैज्ञानिक युग है। व्यक्ति अपने मनोरंजन के लिए इतने संसाधन निर्मित कर लिये हैं कि थोड़ा–बहुत समय मिलने पर उसी की शरण में चले जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें अपने घर के बच्चों में भी साहित्यिक रुचि उत्पन्न करनी होगी। परिवार हो, समाज हो, देश हो या संपूर्ण विश्वग्राम की बातें करें, मानवीय मूल्यों को स्थापित करने के लिए हमारी सरकार को, राजनीतिज्ञों को, धर्माधिकारियों को सोचना होगा कि तकनीकी शिक्षा के साथ साहित्यिक विरासत से भी हमें बच्चों को सुपरिचित किया जाए। उनकी साहित्यिक लेखन–पाठन की प्रवृत्ति को विकसित किया जाए, ताकि भविष्य में भी हमें एक अच्छे और सुलझे मानव, कवि, लेखक, चिंतनशील व्यक्तित्व अनुपलब्ध न रहें। मंचों पर आज फूहड़ हास्य का बोलवाला है। शिष्ट, धारदार व्यंग्य लापता है। नवरस से साहित्य निचोड़ा लगता है। कहाँ चला जा रहा है वह अलौकिक आनंद, वह ईश्वरीय अनुभूति।

मैं उनके किसी विचारों के खिलाफ नहीं, बल्कि साहित्यिकों से मर्यादित मिठास से निर्मित, साहित्य की माँग करता हूँ, जो समस्त पाठक भी चाहते हैं, न कि विकारों का मक्खियों से भिनभिनाता कुंभीपाक। साहित्यकार विश्व का आनंद– दाता है, उसके रूदन में, हास में, पीड़ा में विश्व को आनंद मिलता है; लेकिन साहित्यकार यदि उस आनंद का स्वयं उपभोग करने लगे, तो अपना और अपनी पीढ़ी–दोनों को भुला बैठता है। प्रयोगशाला में भिन्न–भिन्न चीजों का विश्लेषणकर्ता यदि उन वस्तुओं को खाने लगे, तो उसकी जो गति होगी, वही ऐसे साहित्यकार की होगी। स्वान्तः सुखाय के व्यावहारिक पक्षों को भूलकर आज कुछ साहित्यकार अपने आपको ऐसा ही बना रखा है। उसने भगवान् को पा लिया तो नाचने लगा। स्वान्तः सुखाय को मानकर गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना की, जिसमें एक चरित्र है। समाज उस चरित्र को आदर्श समझा। उसका अनुकरण किया। घर–घर में उस ग्रंथ को सम्मान मिला। बच्चे तो हर घर में पैदा होते, बड़े होकर पारिवारिक संघर्ष करते, लेकिन जिस कलम के धनी ने इसे लिखा, वह युगों की छाती को चीरता हुआ आगे बढ़ गया।

हमारा यह समाज एक समुद्र की तरह है, जिसमें छोटी– छोटी नावें और बड़े–बड़े जहाज तैरते रहते हैं। लहरों की मर्जी पर वे डूब सकते हैं, लेकिन उसी में एक और वस्तु खड़ी रहती है, जिसका सिर लहरों की मरजी पर नहीं झुकता–प्रकाशस्तंभ, जो गुमराहों को रास्ता बताता रहता है। आज हमारा समाज साहित्यकारों से भी यही आशा और अपेक्षा करता है, जिसे 'सुसंभाव्य' के रचनाकार अपनी अथक मेहनत से लगातार इस कसौटी पर खरा उतरने का प्रयास करते हैं। मैं इनके साथ पाठकों के प्रति भी आत्मीय भाव से अभार इसलिए प्रकट करना चाहता हूँ कि उनके द्वारा इस पत्रिका को काफी सम्मान दिया जा रहा है। सादर...

समीक्षा

कबीर और तुलसी की नारी–भावना

प्रो0 डॉ. बहादुर मिश्र
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग , ति.मां.भा.वि.
मो.–9934694386

''हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास में कबीर– जैसा व्यक्तित्व लेकर कोई लेखक उत्पन्न नहीं हुआ। महिमा में यह व्यक्तित्व केवल एक ही प्रतिद्वंदी जानता है–तुलसीदास''– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी बहुत हद तक सही है।

कबीर और तुलसीदास हिन्दी साहित्याकाश के दो ऐसे भास्वर नक्षत्र हैं, जिनकी चमक पाँच–छह सदियाँ बीत जाने के बाद भी फीकी नहीं पड़ी है। यही कारण है कि विशप जी.एच. वस्कट ने कबीर को 'भारत का मार्टिन लूथर' कहा तो जॉर्ज ग्रियर्सन ने तुलसी को 'युद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक' कहकर अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त की।

कबीर और तुलसी में कतिपय समानताएँ–असमानताएँ हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा उनकी परंपरा में आनेवाले आलोचक दोनों में किसी प्रकार की समानता नहीं देख पाते हैं। दूसरी ओर मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा तत्कालीन परिस्थितियों तथा जुलाहों, कारीगरों व व्यापारियों के भौतिक जीवन को भक्ति– साहित्य का सामाजिक आधार मानते हुए दोनों कवियों में अपने नजरिये से समानताएँ ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं। डॉ. युगेश्वर ने तो उनके इस नजरिये की भी आलोचना की है।

जो हो, कबीर और तुलसी कई बातों में एक–से लगते हैं। दोनों मध्यकालीन संत कवि हैं। दोनों एक ही प्रांत उत्तरप्रदेश से संबंध रखते हैं। दोनों एक ही गुरु रामानंद के संप्रदाय में दीक्षित हैं। दोनों के उपास्य 'राम' हैं। यह बात दीगर है कि कबीर के 'राम' निर्गुण–निराकार घट–घट वासी हैं, तो तुलसी के 'राम' अयोध्यापति दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, सीतापति, सगुण, साकार प्रजावत्सल राजा राम हैं। दोनों कवि वैष्णव हैं अर्थात् अहिंसा के समर्थक (असुर–वध जैसे अपवाद को छोड़कर–तुलसी के संदर्भ में)। दोनों लोकभाषा में 'कविताई' के आग्रही हैं। दोनों संत कवि गुरु को सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। दोनों में एक बड़ी समानता यह भी है कि प्रारंभ में दोनों ने ही अपनी–अपनी गृहस्थी बसायी। दोनों कालक्रम में पिता भी बने। (कबीरपंथियों के अनुसार, कबीर आजीवन ब्रह्मचारी रहे)। बाद चलकर दोनों कवि अपनी–अपनी गृहस्थी का पगहा तोड़कर निकल भागे–अपने –अपने राम की तलाश में। प्रारंभ में दोनों अचेत थे, कामी थे। बाद में चलकर सचेत हुए। शुरुआत में दोनों को नारी 'अमृतघट'–सी सी लगी, लेकिन बाद में 'महाविकार'–सी प्रतीत हुई। कबीर के ज्ञानचक्षु उनके आध्यात्मिक गुरु ने खोले, तो तुलसी के उनकी पत्नी रत्नावली ने–अस्थि चर्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीति की फटकार लगाकर। उधर आए दिन कबीर की भी अपनी पत्नी लोई या धनिया से कहा–सुनी हो जाया करती थी। अभावग्रस्त पत्नी के हाथ में अपनी कमाई सौंपने के बजाय वे प्रायः भुक्खड़ साधुओं की टोली ले आते। कहते हैं, माँ 'नीमा' भी अक्सर इस बात के लिए कबीर को फटकारती रहती थी। शायद यहीं पहले से उचाट मन रहनेवाले कबीरदास के मन में नारी जाति के प्रति वितृष्णा का भाव उदित हुआ होगा, तो कालांतर में और भी प्रगाढ़ हो गया। फिर तो नारी के प्रति वितृष्णा के सांसारिक भाव पर क्रमशः शास्त्रीय रंग चढ़ता चला गया। लगभग यही स्थिति तुलसीदास के साथ भी थी।

कबीर और तुलसी–दोनों संत कवियों ने नारी को माया– रूप में देखा है। कबीर की दृष्टि में माया 'महाठगनी' है, तो सत्त्व, रज और तम की 'तिरगुन फाँस' लिये ब्रह्मा–विष्णु–महेश के घर क्रमशः ब्रह्माणी, लक्ष्मी तथा पार्वती–इन तीन नारीरूपों में बैठी हुई है–

'माया महाठगिनी हम जानी।
तिरगुन फाँस लिये कर डोलै, बोले मधुरी बानी।।'

पुनः अपनी एक 'रमैनी' में वे माया को इस रूप में देखते हैं–

'नारी एक संसार हि आई। माय न वाके बाप न जाई।।
गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा। ता मँह भरमि रहा संसारा।।'

अर्थात् सृष्टि में नारी–रूपिणी माया आई है। यह माता– पिता से रहित है। यह पैर, सिर, प्राण इत्यादि से भी रहित है। फिर भी सारा संसार उसी में चक्कर लगा रहा है। दूसरी तरफ तुलसीदास माया–रूपिणी नारी के बारे में यह कहते हैं–

'काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धरि।
तिन्ह मँह अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि।।'

(मानस, अरण्यकांड)

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मद इत्यादि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है। उनमें माया–रूपिणी नारी सर्वाधिक दारुण और दुखद है।

इतना ही नहीं, तुलसीदास ने अपनी अहर्निश आराध्या सीता को भी मायारूप में ही देखा है। वनवास–काल में अत्रि– अनसूया के आश्रम से निकलते हुए राम, सीता और लक्ष्मण क्रमशः ब्रह्मा, माया तथा जीव के रूप में चित्रित किये गये हैं–

'आगे राम अनुज पुनि पाछें। मुनिबर वेष बने अति काछें।।
उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।।'

(मानस, अरण्यकाण्ड)

लक्ष्मणरूपी जीव रामरूपी ब्रह्म से तदाकार होना चाहता है, मगर बीच में सीतारूपिणी माया अवरोध उत्पन्न कर रही है। भूलना नहीं चाहिए कि यही माया सदैव अपने राम के ठीक पीछे उनकी शक्ति बनकर खड़ी रहती है।

ईशावास्योपनिषद् में माया के दो रूप बताए गए हैं– अविद्या और विद्या। इनमें 'अविद्या' निन्द्य, अतः त्याज्य माना गया है, जबकि 'विद्या' माया को विकल्प से ग्राह्य बताया गया है। कहते हैं, इसी की सहकारिता से ईश्वर जगत् का सारा प्रपंच रचता है। इसे ही आदि शंकराचार्य ने अव्यक्त, अनाद्य, त्रिगुणात्मिका (कबीर के शब्दों में तिरगुन फाँसवाली) और परमेश शक्ति कहकर अभिहित किया है। देखिए–

'अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिः अनाद्य विद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधि यैव माया यया जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।।'

कबीर भी 'तू माया रघुनाथ की' नामक अपने पद में माया को राम की शक्ति मानते हैं। माया का शाब्दिक अर्थ भी तो यही होता है–मीयते अनया इति माया अर्थात् जो जीव को सीमित कर दे, बाँध दे। 'मा' का अर्थ नहीं होता है और 'या' का अर्थ स्त्र्यर्थक 'जो' अर्थात् जो जैसी दीखती है, वैसी होती नहीं। माया शब्द को उलट देने से 'यामा' बनता है यानी रात–प्रहरों वाली रात–घोर काली रात, जब कुछ भी दिखाई न पड़े। तुलसी ने नारीरूपिणी माया को इसी रूप में देखा है–

'पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अंधियारी।।'

(मानस, अरण्यकांड)

यही कारण है कि दोनों संत कवि नारी को निंद्य और त्याज्य मानते हैं।

कबीर नारी को 'पापिनी', 'डाकिनी', 'काली नागिन', 'मधुमक्खी की खान', 'विषफल', 'संसार भर का जूठन', 'नरक कुंड', 'कुलबोरनी' और बहुत कुछ कह जाते हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

1. कबीर माया पापणी, फंध लै बैठि हाटि।
[कबीर समग्र, (माया कौ अंग), हि.प्र. संस्थान, वाराणसी]

2. कबीर माया ढाकणी, सब किस ही कौं खाइ।(वही)

3. काँमणि काली नागणीं तीन्यूँ लोक मंझारि।
(वही, कामी नर को अंग)

4. जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे को बीच।(वही)

5. नारी कुंड नरक का, बिरला थमै बाग।(वही)

6. सुंदरि थै सूली भली, बिरला बंचै कोय।

7. चली है कुलबोरनी गंगा नहाय।

8. नारी नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होय।

9. एक कनक अरु काँमनी, विषफल कीएउ पाइ।।(वही)

कबीर की स्पष्ट धारणा है कि नारीरूपिणी माया को वश में रखना चाहते हो, तो उसे दिन–रात लतियाओ। उन्हीं के शब्दों में–

माया दासी संत की, ऊँभी देई असीस।
विलसो अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस।।

ताज्जुब होता है कि जो कबीर तुच्छ 'घास' तक की निंदा से परहेज करते हैं, वे साढ़े तीन हाथ लंबी जिंदा नारी–देह की निंदा गाली–गलौज की भाषा में क्यों और कैसे करते हैं?द्रष्टव्य है–

'कबिरा घास न नींदिये, जो पाँऊ तलि होय।
उड़ि पड़ै जब आँखि में, खरा दुहेली होय।।'

के.एम. पणिक्कर ने इसी आधार पर कबीर को पलायनवादी कहना पसंद किया है। यह ठीक है कि निवृत्तिमार्गी नारी से परहेज करते हैं। परहेज करना अलग बात है और गाली बकना अलग बात। गाली बके बिना भी परहेज किया जा सकता है। माना कि किसी डॉक्टर ने अपने रोगी को बेहतर चिकित्सा मुहैया कराने के उद्देश्य से प्याज–लहसुन या मांस–मछली, मदिरा से परहेज बताया है, इसका मतलब यह कदापि नहीं कि वह रोगी या डॉक्टर दिन–रात लहसुन–प्याज, मांस–मछली आदि को भद्दी–भद्दी गालियाँ देते हुए निंद्य या त्याज्य बताए। कबीर पहले संत हैं, फिर कवि। इस बात को वे दूसरे ढंग से भी कह सकते थे, पर कहा नहीं। उन्हें तो एक ही लाठी से हाँकना आता है। उस पर तुर्रा यह कि कबीर महान् क्रांतिकारी कवि हैं। जो बढ़–चढ़कर जितनी अधिक गालियाँ बक सके, वह उतना बड़ा क्रांतिकारी समझा जाता है। इसके विपरीत सच्चाई यह है गालियाँ कमजोर लोगों के लिए हथियार का काम करती हैं। उनमें उनका आक्रोश भर व्यक्त होता है। समर्थ लोग गालियों का सहारा नहीं लेते। मुझे नहीं पता, गाली बकने से कभी कोई क्रांति हुई हो–व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन हुआ हो। और वह भी गाली किसे?जो समाज की आधी आबादी हैं जो गाली बकनेवाले बदजुबान मर्दों को तबसे लेकर अबतक पैदा करती रही है, पाल–पोसकर बड़ा करती रही, सही–गलत की तमीज सिखाती रही है। संसार की आधी आबादी नारी को निंद्य और त्याज्य सिद्ध करके कबीर किस प्रकार की सामाजिक–आध्यात्मिक क्रांति करना चाहते हैं?क्या वे समाज को संन्यासियों की बस्ती (वेटिकन सिटी) बना देना चाहते हैं?फिर तो हम सांसारिकों के लिए खासकर हमारी 'आधी आबादी' के लिए कबीर–साहित्य की क्या उपयोगिता रह जाएगी?

संतोष की बात है कि कबीर ने दो–एक स्थलों पर वैष्णव पुत्र उत्पन्न करनेवाली माँओं को शाबाशी दी है। देखिए–

कबीर धनि ते सुंदरि, जिन जाया बैसनों पूत।

इसके विपरीत शैव, शाक्त और शुद्ध सांसारिक पुत्रों को जन्म देनेवाली माँएँ कबीर की दृष्टि में अधन्य हैं।

कबीर के सौ साल बाद जन्म लेनेवाले गोस्वामी तुलसीदास के बारे में तो कहीं अधिक नारी–निंदा के आरोप लगते रहे हैं। उन्होंने अपने साहित्य, विशेषतः 'रामचरितमानस' तथा 'दोहावली' में नारी की बहुत प्रकार से निंदा की है। कुछ चयनित उदाहरण द्रष्टव्य है–

'सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी।।'
(मानस, अरण्यकांड)

भगवान श्रीराम नारद से कहते हैं–हे मुनि! सुनो; पुराण, वेद और संत–ये सब कहते हैं कि नारी मोह (अज्ञान)–रूपी वन के लिए वसंत ऋतु के समान हैं, जबकि जप, तप और नियम के समस्त जलाश्रयों को ग्रीष्म ऋतु के समान सुखा डालती है। दूसरे शब्दों में–नारी का ज्ञान, जप, तप व नियम से स्वाभाविक वैर है।

'काम क्रोध मद मस्तर भेका। इन्हहि हरषप्रद बरषा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई।।' (वही)

इस चौपाई में नारी को जहाँ काम, क्रोध, मद, मत्सररूपी मेढकों को वर्षा ऋतु आनंद प्रदान करनेवाली बताया गया है, वहाँ कुवासना–रूपी कुमुद–समूह को शरद ऋतु के समान सुख देनेवाली कहा गया है–

'धर्म सकल सरसीरूह वृंदा। होइ हिम तिन्हहि बहइ सुख मंदा।।
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।।'
(वही)

इन पङ्क्तियों में तुलसी के प्रभु राम ने नारी को धर्मरूपी कमल समूह को हेमंत ऋतु के समान गलानेवाली सिद्ध किया है, तो ममता रूपी जवास वन को शिशिर के समान हरा–भरा बनानेवाली भी।

'पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अंधियारी।।
बुधि बल सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रवीना।।'
(वही)

इस छंद में नारी को जहाँ पापरूपी उल्लुओं के लिए सुखद घोर अंधकारमयी रात के रूप में चित्रित किया गया है, वहाँ बुद्धि, बल, शील और सत्यरूपी मछलियों को फाँसनेवाली वंशी की तरह वर्णित किया गया है। पुनः–

अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।(मानस, अरण्यकांड)

अर्थात् स्त्री अवगुणों की जड़, पीड़क और सभी दुःखों की खान है–ऐसा कहकर रामचन्द्र ने नारी की स्थिति को और भी दयनीय बना दिया।

इसी तरह 'मानस' की महीयसी नारी अनुसूया के मुख से भी तुलसीदास ने नारी निंदा कराई है; यथा–सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ मति लहई। अर्थात् नारी जन्म से ही अपवित्र होती है; लेकिन पति–सेवा करके सहज ही पवित्र हो जाती है। 'मानस' के अन्य स्थलों पर भी नारी–निंदा लक्षित की जा सकती है। जैसे–

1. नारि सहज जड़ अग्य।(बालकांड)

2. ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।
(सुंदरकांड)

3. नारि सुभाव साँच कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया।।
(लंकाकांड)

4. महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी।।
(किष्किन्धाकांड)

5 . राखिय नारि जदपि उर माहीं । सास्त्र नृपति जुबती बस नाहीं ।।
(मानस)

6 . बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी । सकल कपट अघ अवगुन खानी ।।
(अयोध्याकांड)

कहने के लिए कह सकते हैं कि इनमें से कुछ उक्तियाँ तो रावण और जड़ समुद्र–जैसे निंद्य पात्रों के मुख से कहलाई गई है । शेष उक्तियाँ तो प्रातः वंदनीय पात्रों ; जैसे–रामचन्द्र तथा अनसूया के मुख से कहलाई गई है । जो हो, पात्र जैसा भी हो, आखिर कहता है कवि ही न–जैम`चमांमत`चमो जीतवनही`ापे बींतमबजमत . इसी तरह दोहावली के इस दोहे को देखा जाए–

नगर नारि भोजन सचिव, सेवक सखा अगार ।
सरस परिहरें रंग रस, निरस विषाद विकार ।।

इस दोहे के माध्यम से कवि ने कहना चाहा है कि नगर, नारी, भोजन, सचिव, सखा और घर जबतक सरस यानी आनंदप्रद है, तभी तक पास रखने के योग्य है, अन्यथा परित्याज्य ।

वाह रे संत कवि तुलसी! बेवफाई तो कोई आपसे सीखे । पत्नी जबतक सरस है, तभी तक पति नामक प्राणी के साथ रहने की अधिकारिणी है, अन्यथा नीरस होते ही त्याज्य हो जाती है । यह बात तो नारी के लिए भी लागू होनी चाहिए । खासकर नारी सशक्तीकरण और मानवाधिकार वाले इस युग में, जबतक पति सरस है, तभी तक पत्नी के साथ रहने का अधिकारी है, अन्यथा नहीं । आपके मर्यादा पुरुषोत्तम रामने प्रजारंजन के नाम पर घनघोर जंगल तक साथ देनेवाली गर्भवती सीता की अग्नि–परीक्षा के बावजूद आपकी 'गीतावली' बड़े ही अमर्यादित ढंग से त्याग करके अपनी बेवफाई का प्रमाण तो दे ही दिया है । उन्हें प्रजा के लिए ही जीना–मरना था तो कुँवारे क्यों नहीं रह गए ?शिव का धनुष तोड़ने जनकपुर क्यों चले गये ?और फिर, राजा जनक की फुलवाड़ी में झाड़ी के पीछे से सीता को छिप–छिपकर निहारने के पीछे उनकी मंशा क्या थी ?हे संत कवि तुलसी! आपने ही 'मानस' के बालकांड में लिखा है–

लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।

X X X

'करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान ।
मुख सरोज मकरन्द छवि, करइ मधुप इव पान ।।'

इसके विपरीत तुलसीदास ने कुछ मौकों पर नारी के प्रति अपनी सच्ची सहानुभूति भी दिखाई है और यहीं वे कबीर से अलग हो जाते हैं । एक ऐसा ही प्रसंग आता है 'मानस' के बालकांड में । वह है–शिव–पार्वती का विवाह–प्रसंग । इसके बहाने उन्होंने भारतीय समाज में प्रचलित 'बेमेल विवाह' जैसी कुप्रथा पर अपनी नाराजगी जताई है । कहाँ अनिंद्य सुंदरी, सुकुमारी, शीलवती कन्या पार्वती और कहाँ साँपों का शृंगार करनेवाले, अंग–अंग में राख लेपनेवाले, कपड़े के नाम पर बघछाला पहनने वाले, कुछ और नहीं तो 'बसहा' बैल की सवारी करनेवाले, भोजन में भाँग–धतूरा भकोसनेवाले, काले–कलूटे, कुवेशी बौराहा वर शिव । ऐसे दूल्हे से कौन भारतीय माँ अपनी बेटी का ब्याह रचाना चाहेगी ?यही कारण है कि पार्वती की माँ 'मैना' भी विद्रोह कर बैठती है । गोद में बेटी को बिठाकर आँखों में आँसू लिये माँ मैना विधाता को कोसती है–

'कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहिं सुंदरता दई ।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ।
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घर जाउ अपजस होउ जग जीवत बिबाह न हौं करौं ।।'

अर्थात् जिस विधाता ने तुमको इतनी सुंदरता दी है, उसने तुम्हारे लिए ऐसा बावला/कुवेशी वर क्यों बनाया ?जो फल कल्पतरु में लगना चाहिए था, वह जबर्दस्ती बबूल (शिव) में लग रहा है । मैं तुम्हें (पार्वती को) लेकर पहाड़ से कूद जाऊँगी, आग में जल मरूँगी, समुद्र में कूद मरूँगी । घर उजड़ जाए तो उजड़ जाए, संसार भर में बदनामी हो तो हो, पर जीते जी इस बौराहा वर से तुम्हारा ब्याह नहीं करूँगी ।

आखिर में नारद के समझाने–बुझाने पर शादी होती है । बेटी–विदाई के समय फिर एक बार तुलसीदास 'मैना' के मुँह से नारी की निरुपायता पर खीझ प्रकट करते हैं–

'कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं । पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।।'
(मानस, बालकांड)

मनुस्मृति में नारी की स्वतंत्रता को जिस तरह कुंद किया गया, जिस तरह उसे हर अवस्था में पुरुष के अधीन रखने के लिए विधान रचा (कौमार्य में पिता के अधीन, विवाह के बाद पति के अधीन और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन) शायद नारी की उसी पराधीनता की ओर लक्ष्य कर तुलसी ने 'कत बिधि सृजी नारि जग माहिं ।' जैसी पङ्क्ति लिखी ।

इसी संदर्भ में डॉ . राममनोहर लोहिया की टिप्पणी द्रष्टव्य है–''नारी स्वतंत्रता और समानता की जितनी जानदार कविता मैंने तुलसी की पढ़ी और सुनी, उतनी और कहीं नहीं, कम–से–कम इससे ज्यादा जानदार कहीं नहीं । अफसोस यह है कि नारी–हीनता वाली कविता तो हिन्दू नर के मुँह पर चढ़ी रहती है ; लेकिन नारी–सम्मान वाली कविता को वह भुलाए रहता है । संसार के नारी–हृदय की चीख है–कत बिधि सृजी नारी जग माहीं । पराधीन सुख सपनेहुँ नाहीं ।। हिन्दू नर इतना नीच हो गया है कि पहले तो चौपाई के पूर्वार्द्ध को भुला देने की कोशिश की और फिर कहीं–कहीं उसने इसका नया पूर्वार्द्ध ही गढ़ डाला–'कर विचार देखहुँ मन माहीं ।''

गजब है तुलसी! क्या ममता, क्या नारी–हृदय की चीख, क्या नर–नारी आदर्श जीवन की सूचना! आखिर उसने संसार को किस रूप में जाना है–'सिया राममय सब जग जानी ।'

(भारतमाता भारतीयता, रामायण, पृ . 11)

कबीर और तुलसी जिस कालखंड में उत्पन्न हुए थे, वह निश्चितरूपेण नारी के लिए उत्साहजनक नहीं था । वैदिक युग, कुछ हद तक वैदिकोत्तर युग में नारी को जो सम्मान प्राप्त था, वह स्मृति और संहिता–युग तक आते–आते उलट गया । तुलसी की विवादास्पद अर्धाली 'ढोल गँवार सूद्र पसु नारी ...' गर्ग–संहिता में संकलित पद्य का उल्था मात्र है । हिन्दी साहित्य में आदिकाल में नारी भोग्या बनकर रह गयी–

जेहि की बिटिया सुंदर देखि, तेहि पर जाय धरा हथियार ।

उत्तर मध्यकाल तक आते–आते उसकी स्थिति और भी खराब हो गयी । कबीर तथा तुलसी अपने युग की इन सीमाओं से अपने को ऊपर न उठा सके । कबीर की तुलना में तुलसी, फिर भी नारी के प्रति कुछ सहानुभूतिशील बने रहे । मगर हिन्दी के सर्वाधिक अक्खड़ और फक्कड़ कबीर ने एक तरह से नारी को समाज से बाहर ही कर दिया । मिश्रबन्धु ने भी कुछ इसी तरह अपना क्षोभ व्यक्त किया है–''फिर भी हम तो यही कहेंगे कि ऐसे महात्मा और महाकवि को बिना सोचे इतनी प्रचंड निंदा न करनी चाहिए थी । उस काल के अन्य कविगण भी बहुधा इस महादोष के दोषी हैं । कबीरदास ने भी ऐसा लिखा है ।''

(संक्षिप्त कविरत्न, गो . तुलसीदास, पृ .69)

इसके बावजूद आलोचक तुलसी को तो नारी–विरोधी साबित करते रहे हैं, जबकि कबीर को महान् क्रांतिकारी । आलोचक अपने गिरेबान में झाँककर देखें कि अबतक वे क्या करते रहे हैं ।

लघुशोध

हिन्दी में आलोचना का आरंभ

डॉ. मीना श्रीवास्तव
हीरापुर, हरिमंदिर क्षेत्र
धनबाद, झारखण्ड

सन् 1950 के उपरांत नई प्रेरणा, नई विचारधारा एवं अभिव्यक्ति की नवीन शैली को लेकर साहित्य में जो परिवर्तन हुआ, उसी समय गद्य के आविर्भाव से साहित्य के सृजन और विवेचन का कार्य भी तीव्रगति से प्रारंभ हुआ। तभी तो साहित्य के विभिन्न तत्त्वों पर तात्त्विक दृष्टि से चिंतन हुआ। इस प्रकार आलोचना का सूत्रपात इसी युग की देन माना जाता है।

आलोचना का आरंभ इस बात को सूचित करता है कि साहित्य ने अपने अध्येता वर्ग से ऊपर उठकर अपने विवेक बल के द्वारा अपनी अस्मिता, सामर्थ्य, शक्ति और अपने व्यक्तित्व को खोजना आरंभ कर दिया है यानी उसे अब ज्ञात हो चुका है कि उसका अपना एक अलग अस्तित्व है।

तभी तो जहाँ रीतिकाल के अंत तक संस्कृत काव्यशास्त्र की बँधी–बँधाई परिपाटी थी, वहीं आधुनिक काल में नये विचारों के साथ हिन्दी धीरे–धीरे प्रभावयुक्त होने लगी और आचार्य शुक्ल तक आते–आते उसकी अपनी नव्यता का बोध पर्याप्त रूप से विकसित हो गया, यही कारण है कि आचार्य शुक्ल से ही हिन्दी आलोचना का प्रस्थान बिन्दु माना जाता है; क्योंकि यहीं से हिन्दी कविता और साहित्य विधाओं का आचरण और चरित्र की सही पहचान और परख का पूर्णरूप से प्रयास प्रारंभ हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं उनके परवर्ती विद्वानों ने ही नए परिप्रेक्ष्य में गद्य तथा नवीन सिद्धांतों के द्वारा हिन्दी आलोचना का मार्ग प्रशस्त किया है। शुक्लजी ने आलोचना को रचनात्मक साहित्य की अनुगामिनी न मानकर साहित्य की प्रेरिका, नियामिका एवं पथ प्रदर्शिका माना है; क्योंकि उसमें समाज के लिए जीवन दर्शन का समावेश है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं। उन्होंने ही अपने विभिन्न निबंधों में कतिपय विषयों की आलोचना प्रस्तुत की है। कुछ लोगों की दृष्टि में आलोचना का आरंभ नाटक ही माना जाता है। हिन्दी में भी आलोचना (सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप में) नाटक की आलोचना से ही आरंभ होती है। उदाहरणस्वरूप आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र लिखा तो भारतेन्दु ने नाटक। भले ही डॉ. श्यामसुंदर दास ने अपने नये ग्रंथ 'रूपक रहस्य' का महत्व बनाए रखने के कारण इनके नाटक को प्रकाशित न होने दिया।

ऐसे भी भारतेन्दु ने व्यावहारिक आलोचना में तीखे व्यंग्य से काम लिया है। पुस्तक समीक्षा के रूप में आलोचना उन्हीं के समय से आरंभ हो गयी थी। भारतेन्दु के अतिरिक्त उस काल में कुछ अन्य आलोचकों जैसे प्रेमधन, बद्रीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त आदि ने भी आलोचना की नींव डाली है।

हिन्दी में व्यावहारिक आलोचना का आरंभ प्रेमधन ने अपनी 'आनंद कादिम्बिनी' पत्रिका द्वारा किया है। 1886 में 'हिन्दी प्रदीप' में भट्टजी ने 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना की थी।

आलोचना का थोड़ा परिष्कृत रूप आचार्य द्विवेदी के समय से प्रारंभ होता है। इसकी नींव 'नागरी प्रचारिणी' पत्रिका में ही पड़ी है। फिर 'सरस्वती' के माध्यम से इसका और भी प्रचार हुआ। प्रथम से आलोचना का शोधरूप अग्रसर होता है तो द्वितीय से समीक्षा का। निर्णयात्मक आलोचना का सूत्रपात इन्हीं के हाथों हुआ। इसी युग में पद्मसिंह शर्मा और मिश्रबंधुओं ने आलोचना का कार्य आरंभ किया। हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक आधार पर अध्ययन करने का सबसे पहला प्रयास मिश्रबंधुओं ने ही किया।

आचार्य द्विवेदी के बाद आते हैं आचार्य शुक्ल। सच कहा जाए तो यहीं से हिन्दी आलोचना का स्वरूप स्थिर हुआ जान पड़ता है। इनकी आलोचना की तीन प्रमुख धाराएँ हैं–

(1) साहित्य की धारा का क्षेत्र–इसके अंतर्गत हिन्दी साहित्य का इतिहास आता है।
(2) प्रसिद्ध रचना का क्षेत्र–इसमें, तुलसी, जायसी, सूर आदि की कृतियाँ आती हैं।
(3) काव्य सिद्धांतों की समीक्षा–इसमें मूल रूप से 'काव्य में रहस्यवाद' और 'काव्य में अभिव्यक्ति का अभिव्यंजनावाद' के नाम से प्रकाशित प्रबंध आते हैं।

'चिंतामणि' में संकलित इनके निबंध सैद्धांतिक ही हैं। इन्होंने रस और अलंकार में भी नये सिरे से विवेचन किया है। अतः यह कहना यथार्थ में सत्य होगा कि आचार्य शुक्ल हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण आलोचक थे। इसी समय डॉ. श्यामसुंदर दास ने भी 'साहित्यालोचन' लिखा। पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी आदि आलोचकों का भी इसी समय प्रादुर्भाव हुआ। वैज्ञानिक आलोचना का आरंभ भी इसी युग में हुआ। इस युग में डॉ. सक्सेना, डॉ. उदय नारायण तिवारी, वीरेन्द्र वर्मा आदि के नाम आते हैं। इन्हीं लोगों की भाँति मनोवैज्ञानिक आलोचना के क्षेत्र में इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि के नाम आते हैं।

हिन्दी छायावादी युग में भी कई आलोचक हो चुके हैं, जिसमें विनय मोहन शर्मा, शचीरानी गुर्टू आदि प्रमुख हैं। इस युग में नलिनजी की प्रतिभा उच्चकोटि की मानी जाती है। इसी युग में श्रेष्ठ आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. नगेन्द्र माने जाते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा की गणना हिन्दी के समाजवादी आलोचकों में की जाती है। क्योंकि जहाँ शुक्लजी अपनी आलोचना में आध्यात्मिक आदर्शों को महत्व देते हैं, वहीं शर्माजी ने अपनी आलोचना में यथार्थ को ध्यान में रखते हुए अपने गंभीर विचारों को व्यक्त किया है। इनकी प्रमुख कृतियाँ 'प्रेमचंद–भाषा और समाज', 'भारतेन्दु और उनका युग' हैं।

आधुनिक युग के प्रसिद्ध आलोचकों में डॉ. नामवर सिंह भी आते हैं। इन्होंने आलोचना साहित्य का अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन कर उसमें कुछ नवीन प्रवृत्तियों का समावेश किया है। इनकी नवीनतम कृति 'कविता के नये प्रतिमान' में इनकी आलोचना के आधुनिक दृष्टिकोणों की पूर्णतया झलक मिलती है।

हिन्दी आलोचना क्षेत्र में डॉ. नगेन्द्र का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इनकी आलोचना हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करती है। इनकी जो भी रचनाएँ हैं, पूर्व मान्य सिद्धांतों या मानदंडों के आधार पर हैं। यही कारण है कि इनकी रचना शास्त्रीय आलोचना की दृष्टि से देखी जाती है। शास्त्रीय आलोचना का आरंभ इन्हीं के समय से माना जाता है। इनके पहले तो मानो शास्त्रीय आलोचना लुप्त ही थी।

इस प्रकार यह देखा जाता है कि हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचकों में डॉ. नगेन्द्र का स्थान प्रथम कोटि में रखा गया है। ऐसे तो आलोचना को आगे बढ़ाने का श्रेय आचार्य गुलाबराय, डॉ. एस.पी. खत्री, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त आदि को

भी है।

हिन्दी आलोचना का विकास :

प्रायः आलोचक की सृष्टि 'नियतिकृति नियमरहितम्' होकर भी 'व्यवहारविदे' 'शिवेतरक्षतये' और 'कांता– सम्मितयोपदेश्युजे' होती है। आलोचना की इसी दृष्टि के कारण आलोचना का विकास प्रत्येक साहित्य में होता है।

ऐसे यह सत्य ही है कि आलोचना इन्हीं रचनाओं की होती है, जो प्रकाशित हो गयी होती हैं। यदि कोई रचना अप्रकाशित है, तो फिर उसकी आलोचना कैसी?

प्रायः यही देखने को मिलता है कि स्वतंत्रता और शासन, व्यक्तित्व और नियम में अपने नये और पुराने विचारों को लेकर संघर्ष चलता रहता है, जिससे स्वतंत्रता लुप्त हो जाती है और उसमें उच्छृंखलता भी आ जाती है। ठीक उसी समय उसे कड़े शासन की आवश्यकता होती है और तभी नये तरीके से स्वतंत्रता की स्थापना की जाती हैं। ठीक यही स्थिति ग्रंथों की रचना और आलोचना के विकास में भी होती है; क्योंकि लेखक जब लिखना आरंभ करता है, तो लिखने की धुन में बहुत अटपटी बातें भी लिख जाता है। तभी आलोचना का पदार्पण होता है और वह अपने आलोचनारूपी अंकुश लगाकर उन्हें सही मार्ग पर लाता है। आलोचकों के शासन से निकलकर लेखक साहित्य के विकास के लिए नए मार्ग ढूँढ़ लेते हैं।

हाँ, इतना तो अवश्य है कि आलोचना साहित्य के पीछे–पीछे चलकर ही उसके संबंधों में हुए विरोधों और टीका– टिप्पणी को अपने नए विचारों और अपने आदर्शों के अनुकूल बनाकर इन्हीं विचारों एवं सिद्धांतों के आधार पर अपनी नई विचारधारा को व्यक्त करती हैं। अतः इसमें कोई दो मत नहीं कि रचना और सिद्धांत में पूर्णतः संबंध है। अंतर केवल इतना ही होता है कि रचना अपने मौलिक रूप में पहले होती है और सिद्धांत बाद में। किसी भी साहित्य में उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में स्थित सिद्धांतों को देख–समझकर फिर उसके रचना कर्म तथा बोध को सामर्थ्य सिद्धि के लिए नये मार्ग तय करना आलोचक का कार्य होता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा आलोचक का विकास माना जाता है।

आलोचना के विकास से अभिप्राय यह है कि इसी के माध्यम से हम किसी कालखंड विशेष के आदर्शों, प्रवृत्तियों, अनावृत तथ्यों एवं युग के सत्य का निर्माण करने में सफल होते हैं।

भारतीय आलोचना में हमें काव्यतत्त्वों के दार्शनिक एवं शास्त्रीय रूप, भाषा शक्ति और रचना पद्धति के सैद्धांतिक विवेचन देखने को मिलते हैं।

यदि साहित्य सिद्धांतों को देखा जाए, तो पता चलता है कि उसमें सैद्धांतिक संप्रदायों जैसे रस सम्प्रदाय, अलंकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय और ध्वनि सम्प्रदाय का विकास भी आलोचना के क्रम में ही हुआ है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में आलोचना का विकास मुख्यतः चार कालों में देखा जाता है–भारतेंदु काल, द्विवेदी काल, शुक्ल काल और शुक्लोत्तर काल।

भारतेन्दु काल :

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता, पोषक और विशद आलोचक भारतेंदु ने अपने हाथों से हिन्दी साहित्य के सभी अंगों का विकास किया, तब भला आलोचना साहित्य उनके करों का स्पर्श हुए बिना कैसे बचा रह सकता है।

भारतेन्दु का 'नाटक' 1883 में प्रकाशित हुआ था। इसमें उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्र एवं आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा साहित्य का समन्वय कर हिन्दी के नाटककारों के लिए सामान्य नियम निर्धारित किये हैं, साथ ही लेखक की मौलिक उद्‌भावनाएँ भी प्रकट की गयी हैं। सैद्धांतिक विवेचन, खंडन–मंडन आदि भारतेंदु काल में गद्य के निर्माण होने से ही प्राप्त हुए।

भारतेन्दुकाल की आलोचना नई चेतना के प्रति जागरुक होने के बावजूद भी अपने काव्य शास्त्र से प्राप्त अमूल्य निधि को नहीं छोड़ सकी, बल्कि इसका ध्यान प्राचीन सिद्धांतों को छोड़कर उन्हें विकसित करने में लगा था। भारतेंदु ने साहित्य को नियमित करने के लिए कुछ नये रस जोड़े, जिससे काव्य के प्रयोजनों में कौतुक, समाज–संस्कार आदि को सम्मिलित किया जा सके। भारतेंदु के अतिरिक्त उस युग में अन्य आलोचकों का भी पदार्पण हुआ, जिसमें मुख्य रूप से बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने अपने 'आनंदकादिम्बिनी' में 'संयोगिता स्वयंवर' और 'बंग विजेता' ग्रंथों की आलोचना विस्तृत रूप में की है। इसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी–प्रदीप' में 'सच्ची आलोचना' शीर्षक से 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना की थी। भारतेन्दु के इस आलोचना युग को आगे बढ़ाने का श्रेय इन्हीं दो आलोचकों को है। सच कहा जाए तो 'प्रेमधन' जी और भट्ट जी के आलोचनाओं में आलोचना का विकसित रूप दिखता है। जहाँ भट्टजी की शैली में भावनात्मक अनुभूति मिलती है, वहाँ 'प्रेमधन' जी की शैली में गंभीरता मिलती है, तभी तो मुख्य रूप से इन्होंने ऐतिहासिक एवं व्याख्यात्मक आलोचना–पद्धति का विकास किया। साथ ही इन्होंने सबसे पहले हिन्दी 'साहित्य–शास्त्र' की आवश्यकता को महसूस किया था।

भारतेन्दु युग के कुछ आलोचकों जैसे बालमुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने भी आलोचना के क्षेत्र को विकसित करने के लिए उसमें हाथ लगाया। ऐसे इस युग के लेखकों द्वारा विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में भी आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं, जिसके कारण हिन्दी में व्यावहारिक आलोचना का भी सूत्रपात हुआ।

द्विवेदी काल :

भारतेंदु के बाद हिन्दी आलोचना क्षेत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवतरण हुआ। सन् 1900 में 'सरस्वती' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई, किन्तु इसके आगमन से पहले भी गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की 'समालोचना' (1896) तथा अम्बिकादत्त व्यास की 'गद्यकाव्य–मीमांसा' आदि आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रथम पुस्तकाकार कृति 'कालिदास की आलोचना' मानी जाती है। उन्होंने अपने ग्रंथों में लेखकों और कवियों के सही मार्गदर्शन के लिए कुछ साहित्यिक उपलब्धियाँ भी एकत्रित कीं। उनकी दृष्टि सदा ही भाव और भाषा संबंधी गुण–दोषों के प्रकाशन तथा नैतिक विचारों की स्थापना की तरफ ही रही। इनकी 'विक्रमांक देव चरित चर्चा', 'नेपथ्य चरित चर्चा', 'कालिदास की निरंकुशता', 'मेघदूत का रहस्य' इत्यादि रचना इन्हीं भाव–विचारों से परिपूर्ण हैं। इस युग के कुछ अन्य आलोचक भी हैं, जैसे मिश्रबंधु, पद्म सिंह शर्मा, लाला भगवान दीन आदि–आदि। मिश्र बंधुओं ने यदि 'विनोद' नामक ग्रंथ लिखा तो पंडित पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई'। इसी प्रकार लाला भगवान दीन ने भी 'बिहारी और देव' नाम की आलोचनात्मक पुस्तक लिखी। इन्होंने सूर, तुलसी इत्यादि पर भी आलोचनाएँ लिखी हैं।

शुक्ल काल :

आचार्य शुक्ल के पदार्पण से पहले हिन्दी साहित्य क्षेत्र में तुलनात्मक आलोचना का ही विकास हो रहा था। तभी आचार्य शुक्ल ने साहित्य का सुनिश्चित मापदंड एवं आलोचना की एक विकसित पद्धति लेकर साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया। शुक्लजी के शब्दों में ही 'इस तृतीय उत्थान में आलोचना का आदर्श बदला। गुण–दोष कथन से आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंतःप्रवृत्तियों की छान–बीन की और ध्यान दिया गया।।

उन्होंने साहित्य की सूक्ष्म भावनाओं को अपने साहित्य में अपनाया।

उन्होंने अपने साहित्य में सौंदर्य एवं रस को भी लेकर नया जीवन–सा ला दिया है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'चिंतामणि' इत्यादि प्रमुख हैं। इनकी शैली में सूक्ष्मता, गंभीरता, एवं प्रौढ़ता प्रत्यक्ष रूप से नजर आती है।

यह सत्य है कि आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य–क्षेत्र में इस युग की आलोचना को साहित्यिक रूप दिया। साथ ही साहित्य की उपलब्धियों का मंथन करके यह बताया कि साहित्य की रचना करने के लिए भावों की गहराई और उदात्तता ही प्रमुख तत्त्व है। इन्होंने श्रेष्ठ साहित्य की रचना करनेवाले तत्त्वों को ध्यान से देखा, फिर उसी के अंदर से नैतिकता के स्वर को प्रकट किया और उसी के भावों के संबंध, सामाजिक परिष्कार, लोकमंगल आदि को जोड़ दिया। इस प्रकार देखने में आता है कि पं. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार आलोचना के विकास में मुख्य रूप से तीन क्षेत्र हैं–

1. विभिन्न साहित्यिक धाराओं का मूल्यांकन,
2. प्रसिद्ध रचनाओं की समीक्षा और
3. काव्य सिद्धांतों की आलोचना।

पहले क्षेत्र में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आता है, दूसरे में 'सूर', 'तुलसी' आदि कवियों की समीक्षा आती है और तीसरे में 'काव्य में रहस्यवाद' तथा 'काव्य की अभिव्यक्ति– अभिव्यंजनावाद' के नाम से प्रकाशित होनेवाली रचनाएँ आती हैं। इस युग में कुछ अन्य आलोचकों के नाम भी उल्लेखनीय हैं जैसे– डॉ. श्यामसुंदर दास, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, पं. विश्वनाथ मिश्र, पं. चन्द्रवली पांडेय, श्रीलक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' आदि–आदि।

डॉ. शर्मा के प्रसिद्ध ग्रंथों में 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन', 'हिन्दी गद्य शैली का विकास' आदि आते हैं। पं. विश्वनाथ मिश्र संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य दोनों में ही गंभीर विद्वान समझे जाते हैं। ये अपने विचारों को सर्वसम्मत एवं शास्त्रसम्मत तरीके से व्यक्त करते हैं। इनकी 'बिहारी', 'घनानंद' आदि की समीक्षाओं में गांभीर्य के साथ सूक्ष्म भाव ग्रहण एवं भाषा के तत्त्वों का विश्लेषण मिलता है।

चन्द्रवली पांडेय की मुख्य कृतियाँ 'तुलसीदास' और 'केशवदास' आदि हैं। इनकी रचनाओं में गांभीर्य के साथ अभिव्यक्ति की प्रखरता और विदग्धता के दर्शन होते हैं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु' ने आचार्य शुक्ल के विचार को अपने आलोचना क्षेत्र में पूर्णरूप से विकसित किया है। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'काव्य के सिद्धांत' आदि हैं। इनके युग के समकालीन आलोचकों में बाबू श्यामसुंदर दास भी मान्य हैं। इनका प्रथम प्रसिद्ध ग्रंथ 'साहित्यालोचन' ही प्रकाशित हुआ। मौलिकता की दृष्टि से इसका महत्त्व भले ही न हो, लेकिन इसका स्थायी महत्त्व तो अवश्य है।

शुक्लोत्तर काल :

इस युग में हिन्दी आलोचना का विकास द्रुत गति से होता है। इस युग के आलोचकों ने शास्त्रीय मान्यताओं को छोड़कर कृति, कर्ता और युग की प्रवृत्तियों के आधार पर साहित्य की आलोचना की है। यह नया मार्ग इन्हीं छायावाद के मूल्यांकन के द्वारा मिला है। इसके द्वारा रचनाओं को प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य वाजपेयी, महादेवी वर्मा, डॉ. नगेन्द्र, जानकीवल्लभ शास्त्री आदि को है।

ऐसे तो प्रत्येक युग के काव्य में वस्तु और शिल्प के कुछ–न–कुछ परिवर्तन हुए हैं, जिसके द्वारा ही हम उसके कालखंड की विशेष प्रवृत्तियों, आदर्शों, अनावृत्त तथ्यों एवं युग की सत्यता का निर्माण करने में सहायक होते हैं। यानी एक सच्चे आलोचक के लिए काव्य के स्वरूप, तत्त्व, गुण, भाषा, रचना–प्रक्रिया, प्रकृति का ज्ञान होना अति आवश्यक माना जाता है।

इस युग के आलोचकों ने विभिन्न दिशाओं में अपना कार्य किया है। उदाहरणस्वरूप डॉ. भगीरथ मिश्र का 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास'। डॉ. भगवतस्वरूप मिश्र का 'आलोचना : उद्‌भव विकास', डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का 'आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत' आदि–आदि।

इस आलोचना धारा के तुरंत ही बाद दूसरी आलोचना धारा विकसित हुई, जिसे समाजशास्त्रीय आलोचना के नाम से जाना जाता है। इस धारा के आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा, श्रीप्रकाशचन्द्र शुक्ल आदि आते हैं।

कुछ आलोचकों ने तो ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से भी आलोचनाएँ की हैं। इनमें डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, राहुल सांकृत्यायन और डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस युग में कुछ ऐसे भी आलोचक के नाम आते हैं, जो अन्य दिशाओं से मुक्त होकर भी आलोचना कार्य में तत्पर रहे हैं। जैसे डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. शिवनन्दन प्रसाद ऐसे ही आलोचक माने जाते हैं।

हिन्दी आलोचना क्षेत्र में सांस्कृतिक दृष्टि लेकर आनेवाले आलोचकों में द्विवेदीजी ही हैं, जिन्होंने संस्कृति साहित्य को गहराई से देखा है, तभी तो इनकी आलोचना में सांस्कृतिक सूत्र पूर्णरूपेण देखने को मिलते हैं। आलोच्य कृति के समान नवीन, आलोचनात्मक दृष्टिकोण बना लेना इनकी विलक्षण प्रतिभा मानी जाती है।

यह यथार्थ में सत्य ही है कि हिन्दी साहित्य के विकास स्रोत पर इन्होंने अपने मौलिक दृष्टिकोण की स्थापना की है। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका', 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' इनकी प्रमुख आलोचनात्मक पुस्तकें हैं।

हिन्दी के स्वच्छंदतावादी आलोचकों में पं. नंददुलारे वाजपेयी का नाम प्रथम श्रेणी में रखा जाता है। वे आलोचना में उदार दृष्टि और विवेचन में समर्थ तथा आलोचना की नवीन विवेचनात्मक भाषा–शैली के प्रवर्तक भी माने जाते हैं। 'हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी', 'नया युग : नया प्रश्न', 'जयशंकर प्रसाद' आदि इनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में डॉ. रामविलास शर्मा का भी हमें पूर्णरूप से योगदान मिला है। इन्होंने अपनी गहरी अंतर्दृष्टि के द्वारा श्रेष्ठ साहित्यकारों तथा साहित्यिक कलाकृतियों को सामने लाकर रामचंद्र शुक्ल के कार्यों को भी आगे बढ़ाने का प्रयास किया है। इन्होंने आध्यात्मिक प्रसंगों की विवेचना यथार्थ की भूमि पर की है। इनकी कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि ये सरल भाषा में गंभीर विचारों को व्यक्त करते हैं। 'प्रेमचंद और उनका युग', 'प्रेमचंद', 'भारतेन्दु और उनका युग', 'निराला' इत्यादि उनकी ऐसी ही प्रमुख कृतियाँ हैं।

ऐसे कुछ नये आलोचकों का भी प्रादुर्भाव हुआ है, जिनमें आलोचना का विकास समसामयिक कविता के भाव–बोध और अभिव्यक्ति प्रणाली के समर्थन के रूप में हुआ है। इनमें मुक्तिबोध, डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. कुमार विमल, अज्ञेय आदि प्रमुख हैं। इनकी आलोचनाओं का व्यापक अध्ययन, विभिन्न प्रश्नों के मंथन और प्रौढ़ चिंतन के कारण उच्च श्रेणी में रखा जाता है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य आलोचकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. जगदीश गुप्त, श्रीलक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इत्यादि–इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी आलोचना का विकास नये रूपों में तीव्र गति से हो रहा है। 'साहित्य सन्देश', 'लहर', 'आलोचना', 'माध्यम', 'कल्पना' इत्यादि पत्र–पत्रिकाओं ने भी आलोचना के विकास में पूर्ण सहयोग दिया है। सच ही हिन्दी आलोचना अब अपने क्षेत्र में पूर्णरूप से प्रौढ़ मालूम पड़ती है। भविष्य में हिन्दी आलोचना के विकास की और भी अधिक संभावनाएँ हैं।

आलेख

प्रेमचंद युगीन अन्य उपन्यासकार

(साभार–'हिन्दी उपन्यास का विकास')

मधुरेश

प्रेमचंद ने यदि एक ओर उपन्यास को निष्कर्षात्मक और एकांगी आदर्शवाद से मुक्त किया, वहीं उसे व्यापक राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याओं की कर्मभूमि भी बनाया। अपने दो दशकों के रचनाकाल में उन्होंने स्वयं आदर्श से यथार्थ तक की यात्रा की, भले ही आदर्शवाद से वे पूरी तरह मुक्त अंत तक नहीं हो सके। मैथ्यू आर्नल्ड की दी गई काव्य की परिभाषा कविता जीवन की आलोचना है, से वे पूरी तरह सहमत थे और इसके लिए उपन्यास उन्हें और भी उपयुक्त साहित्य रूप लगता था। प्रेमचंद ने नारी–जीवन और उसकी प्रमुख समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक लिखा था। वेश्यावृत्ति, दहेज और अनमेल विवाह की समस्या, बालविवाह, विधवा जीवन आदि समस्याओं को प्रेमचंद के समान ही उनके अन्य समकालीन लेखकों ने भी अपने उपन्यासों में उठाया। इसी प्रकार धर्म की आड़ में पलनेवाले व्यभिचार और धर्मपीठों की वास्तविकता का अंकन भी इस युग के उपन्यास में हुआ है। प्रेमचंद ने सनातन हिन्दू धर्म की आलोचना की जो शुरुआत की, उनके युग के अनेक लेखक उस ओर प्रवृत्त हुए। रजवाड़ों और सामंती जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्त्री की नियति को समझने के प्रयास भी हुए। एक ओर यदि स्त्री की गरिमा का बखान करते हुए उसके त्याग और आदर्शमूलक रूप पर बल दिया गया, वहीं उसके जीवन के अनेक गर्हित प्रसंगों के प्रति भी लेखक एक वर्जनाविहीन दृष्टि अपनाते दिखाई देते हैं। इस युग के प्रमुख लेखकों में जयशंकर प्रसाद, चण्डी प्रसाद शर्मा 'हृदयेश', वृन्दावनलाल वर्मा, शिवपूजन सहाय, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, शिवनारायण श्रीवास्तव, राजा राधिका रमण सिंह, ऋषभचरण जैन, सियाराम शरण गुप्त और उषा देवी मित्रा आदि का उल्लेख सहज ही किया जा सकता है।

जयशंकर प्रसाद :

प्रेमचंद इतिहास के विद्यार्थी होते हुए भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिवाली रचनाओं को संदेह और आशंका की दृष्टि से देखते थे। इसीलिए जयशंकर प्रसाद के नाटकों की अंतर्वस्तु को वे 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' के रूप में देखते थे। इसी दृष्टि से न सिर्फ उन्होंने उनके नाटक 'स्कन्दगुप्त' की आलोचना की थी, वृन्दावन लाल वर्मा के 'गढ़कुण्डार' (1929) पर भी विरोधी टिप्पणी की थी। ऐतिहासिक पृष्ठभूमिवाली रचनाओं को वे संभवतः अनिवार्य रूप से पुनरुत्थानवाद से जोड़कर देखते थे। इतिहास की मार्क्सवादी दृष्टि के फलितार्थ तब उनके आगे स्पष्ट नहीं थे। यही कारण है जब जयशंकर प्रसाद का सामाजिक उपन्यास 'कंकाल' (1929) प्रकाशित हुआ तो प्रेमचंद ने न सिर्फ आगे बढ़कर उसका उत्साहपूर्ण स्वागत किया, उसकी समीक्षा भी लिखी। 'कंकाल' की अंतर्वस्तु वही थी, जिसे अपने आरंभिक काल में प्रेमचंद स्वयं 'देवस्थान रहस्य' में उठा चुके थे। प्रसादजी काशी में रहते थे और धर्मपीठों पर धर्म के नाम पर होनेवाले अनाचारों से अपरिचित नहीं थे। लेकिन उपन्यास में वे अपने को काशी तक ही सीमित न रखकर प्रयाग, काशी, मथुरा, वृन्दावन और हरिद्वार आदि प्रसिद्ध तीर्थों को भी कथा के केंद्र में समेट लेते हैं। जयशंकर प्रसाद उस समाज का वास्तविक चित्र देते हैं, सारी नग्नता और विद्रूपता के साथ जहाँ धर्म के नाम पर मनुष्य की हीन वृत्तियों का नंगा नाच होता है। देव निरंजन के रूप में वे कथित साधुजीवन के ढोंग और पाखंडों का निर्मम चित्रण करते हैं। किशोरी के प्रति उसकी दैहिक आसक्ति का वस्तुपरक और विश्वसनीय अंकन उपन्यास में हुआ है। वह अपनी इस आसक्ति को छद्म दार्शनिकता से ढाँकने–तोपने की कोशिश भी करता है। इस धार्मिक व्यभिचार के पीछे समाज में अवैध संतानों की स्थिति और नियति को लेखक ने पर्याप्त कटुता के साथ अंकित किया है। प्रसादजी के व्यंग्य में करुणा और संवेदना की उपस्थिति उनके मानवीय आशय को स्पष्ट करती है। तारा और घंटी जैसी युवतियाँ जिस यातना और उत्पीड़न की शिकार बनती हैं, उसके पीछे इन धर्मपीठों की प्रमुख भूमिका रही है। यातना और उत्पीड़न के अनुभवों के कारण ही स्त्रियों के प्रति पुरुष की सदाशयता को ही ये युवतियाँ शंका और संदेह की दृष्टि से देखने लगती हैं।

'कंकाल' में प्रसादजी ने हिन्दूधर्म के अतिरिक्त मुस्लिम और ईसाई समाज में भी इस धार्मिक व्यभिचार की व्याप्ति को अंकित किया है। समाज और सम्प्रदाय कोई भी हो, स्त्री की नियति सब कहीं हाशिए पर ही है और कुलीनता तथा पुरुष के वर्चस्ववादी अहंकार का शिकार उसी को होना है। लेकिन प्रसादजी मनुष्य की संभावनाओं के प्रति कहीं भी उदासीन नहीं हैं। वे इस विश्वास को अंत तक बनाए रखते हैं कि संघर्ष करने पर मनुष्य अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठ सकता है।

'कंकाल' की कटुता और व्यंग्यधर्मिता को देखते हुए 'तितली' (1934) एक भिन्न धरातल की रचना है। उपन्यास की कथावस्तु और उसके निर्वाह में वे प्रेमचंद के निकट खड़े दिखाई देते हैं। जमींदार के कारिन्दों के अत्याचार और धांधलियाँ और सरल हृदय जनता पर उनके अत्याचारों को अंकन प्रसादजी ने गहरी करुणा और संवेदना के साथ किया है। 'तितली' में दो समानांतर कथाएँ साथ–साथ चलती हैं। एक कथा इन्द्रदेव और शैल की है, दूसरी मधुवन और तितली की। इंद्रदेव गाँव का सुशिक्षित और सुदर्शन युवा जमींदार है, जो इंग्लैंड से बैरिस्टरी की डिग्री लेकर लौटा है। वहीं से वह निम्नवर्ग की शैला को भी साथ लाया है। शैला जल्दी ही भारतीय ग्राम–परिवेश में अपने को घुला–मिला लेती है और लोगों के कुत्सित एवं क्षुद्र स्वार्थों के विरोध में खड़ी होकर ग्राम–सुधार के लक्ष्य से जुड़ जाती है। दूसरी ओर मधुवन शेरकोट के जमींदारों का वंशज है, जिसके पास उत्तराधिकार के नाम पर खंडहर और मात्र तीन बीघा जमीन भर है। गाँव के ही एक कुलीन परिवार की कन्या तितली–बंजो और मधुवन– मधुवा–दोनों का ही लालन–पालन बाबा रामनाथ के संरक्षण में हुआ है। बचपन का यह आत्मीय संपर्क ही तरुणाई के प्रेम में बदल जाता है। तितली के माध्यम से प्रसाद नारी–जीवन के भारतीय आदर्श को मूर्त करते हैं। प्रेमचंद के पात्रों की अपेक्षा प्रसाद के पात्रों में काल्पनिकता और भावुकता अधिक है। ग्राम–प्रकृति के मोहक और भावपूर्ण चित्र 'तितली' में बहुतायत से उपस्थित है। सांस्कृतिक संदर्भों और पृष्ठभूमि वाले उनके नाटकों की अपेक्षा इन उपन्यासों की भाषा में एक गुणात्मक अंतर सहज ही लक्षित किया जा सकता है।

प्रसादजी के निधन के बाद उनका अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' भी प्रकाशित हुआ। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर शुंगकाल से संबंधित है। पुष्यमित्र के युवापुत्र अग्निमित्र और इरावती की प्रेमकथा के रूप में प्रसादजी ने इसकी परिकल्पना की थी। पात्रों के मानसिक अंतर्द्वन्द्व और ऐतिहासिक प्रामाणिकता की दृष्टि से उपन्यास महती संभावनाओं का संकेत देता है।

विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक :

प्रेमचंद युगीन लेखकों में संभवतः विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रेमचंद के सबसे निकट हैं–विषयवस्तु और भाषा की दृष्टि से। उनके दो उपन्यास 'माँ' (1929) और 'भिखारिणी' (1929) लगभग एक साथ प्रकाशित हुए–'माँ' कुछ पहले और 'भिखारिणी' बाद में। कौशिक और प्रेमचंद में एक समानता उन दोनों का उर्दू से हिन्दी में आना भी है। हिन्दी–उर्दू के मेल से बनी सहज और आम बोलचाल की भाषा के कारण ही कौशिकजी के उपन्यास पठनीयता की

कसौटी पर खरे उतरते हैं। लेकिन विषय वस्तु की ऊपरी और आंशिक समानता के बावजूद कौशिक प्रेमचंद की तरह बड़े पाटवाले लेखक नहीं हैं। 'माँ' में वे एक आदर्श माँ का चरित्र अंकित करने का लक्ष्य लेकर चलते दिखाई देते हैं, लेकिन आगे चलकर वे अपने इस लक्ष्य को जैसे भूल जाते हैं और युग के सुधारवादी आग्रहों के परिणामस्वरूप वेश्यागमन की बुराइयों और उनसे बचाव के उपायों की ओर मुड़ जाते हैं। इससे रचना में स्वाभाविक रूप से एक बिखराव पैदा हुआ है, जिससे उसकी प्रभावान्विति भी क्षतिग्रस्त हुई है। 'माँ' में गोद लिए पुत्र के प्रति वास्तविक और गोद लेनेवाली माँ के व्यवहार को तुलनात्मक दृष्टि से आँकने का प्रयास किया गया है। बाबू ब्रजमोहन के पास सम्पत्ति है; लेकिन कोई संतान न होने से उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं है। अपनी पत्नी सावित्री के अनुरोध पर वह लाला घासीराम के पुत्र श्यामू को गोद ले लेता है। घासीराम की पत्नी सुलोचना इसका विरोध करती है; लेकिन पति के निर्णय के आगे उसे झुकना होता है। 'माँ' काफी दूर तक सावित्री और सुलोचना के व्यवहारगत अंतर पर केंद्रित रहने के बावूजद, श्यामू के वेश्यागामी हो जाने की स्थिति में, अपने दृष्टिकेन्द्र में स्खलन का शिकार होता है। अत्यन्त लाड़–प्यार और समृद्धि के बीच लालन–पालन के कारण श्यामू उच्च शिक्षा और डिप्टी कलक्टरी के बावजूद कुसंगति में पड़कर वेश्यागामी बन जाता है। श्यामू के साथ उसका बहनोई गोकुल भी वेश्यागमन करता है। लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गरीबी में भी वास्तविक माँ अपने बच्चे की देखभाल जितने अच्छे ढंग से कर सकती है, वह गोद लेनेवाली माँ नहीं कर सकती। सावित्री की तुलना में लेखक ने सुलोचना के चरित्र को अधिक संवेदना और सहानुभूति से अंकित किया है। बेटे के साथ ही वह दामाद को भी कुमार्ग पर जाते देखती है और उसी के कारण घुल–घुलकर उसकी बेटी चुन्नी की मृत्यु हो जाती है। सुलोचना के चरित्र में निहित करुणा और अवसाद के यही तत्व उसके चरित्र को सहानुभूति का पात्र बनाते हैं।

'भिखारिणी' एक प्रेमकथा के रूप में लिखित उपन्यास है। इसमें घटनाओं का विकास नाटकीय होने के कारण सहज और विश्वसनीय नहीं बन पड़ा है। इसमें रामनाथ नामक एक धनी युवक भिखारी नंदू और उसकी युवा पुत्री जस्सो को अपने यहाँ शरण देता है और उन्हें नौकर के रूप रख लेता है। इसी रामनाथ और जस्सो की प्रेमकथा के रूप में ही उपन्यास की कथावस्तु विकसित होती है। बाद में पता चलता है कि जस्सो का पिता नंदू नंदराम–स्वयं एक सम्पन्न जमींदार था, जो दुर्दिन के परिणाम स्वरूप भीख माँगने को मजबूर होता है। वह इस संबंध को स्वीकृति नहीं देता; क्योंकि अंतर्जातीय विवाह को स्वीकृति देकर वह अपने कुल पर कलंक नहीं लगाना चाहता। उपन्यास का प्रमुख आकर्षण प्रेम और कुलीनता का द्वंद्वहै, जिसमें अंततः कुलीनता की ही विजय होने से उपन्यास दुःखांत रूप में समाप्त होता है। रामनाथ विवाह करके अपनी सुंदर पत्नी के साथ नई गृहस्थी में रमकर अपने दुःख को भुलाने का प्रयत्न करता है; लेकिन जस्सो भिखारिणी जीवनभर कुँआरी रहकर प्रेम के प्रति अपने एकनिष्ठ समर्पण का उदाहरण प्रस्तुत करती है। वस्तुतः जस्सो की मनोव्यथा में निहित अवसाद और करुणा की भूमिका ही उपन्यास का प्रमुख आकर्षण है।

चण्डी प्रसाद शर्मा 'हृदयेश' :

एक रचना के तौर पर हिन्दी में आया उपन्यास पश्चिम की देन था। लेकिन भारतेंदु युग में ही अपनी सांस्कृतिक जड़ों की जो तलाश शुरू हुई थी, उसकी तेजस्वी उपस्थिति इस युग में भी देखी जा सकती है। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य और प्रसाद के नाटक इस सांस्कृतिक अन्वेषण के उल्लेखनीय उदाहरण हैं। संस्कृत साहित्य की गौरवशाली गद्य एवं आख्यान परम्परा के बावजूद उपन्यास के क्षेत्र में उसके पुनरान्वेषण का कोई गंभीर प्रयत्न नहीं किया गया। चंडी प्रसाद शर्मा 'हृदयेश' ने यह पहल की, यही उनका ऐतिहासिक महत्व है। वे संस्कृत साहित्य के गंभीर अध्येता थे और प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति उनमें गहरा अनुराग था। अतः उन्होंने उपन्यास के रूप में एक ऐसे साहित्यरूप की परिकल्पना की, जो कथानक और चरित्र–चित्रण की दृष्टि से अंग्रेजी उपन्यास के समान होने पर भी शैली और प्रकृति–चित्रण आदि में संस्कृत की आख्यान–परंपरा के निकट हो। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने दो उपन्यासों–'मनोरमा' (1924) और 'मंगल प्रभात' (1926) की रचना की। 'मनोरमा' में लेखक पति के शंकाशील स्वभाव के कारण नायिका मनोरमा के विचलन की कहानी कहता है। उपेक्षा और प्रताड़ना की स्थिति में, प्रकृति की आकर्षक और भव्य पृष्ठभूमि में, वह एक सम्पन्न प्रोफेसर की ओर आकृष्ट होकर भाग जाती है। दूसरी ओर विधवा युवती शांता है, जो अपने दैहिक–मानसिक आवेगों के प्रति संयम का उदाहरण प्रस्तुत करती हुई सारे प्रलोभनों को ठुकराती जाती है। मनोरमा और शांता के पारस्परिक चरित्रांकन के माध्यम से ही लेखक दमन और संयम के मार्ग को श्रेयस्कर प्रमाणित करना चाहता है।

'मनोरमा' की अपेक्षा 'मंगल प्रभात' एक बड़ा उपन्यास है। सामाजिक की अपेक्षा यह धार्मिक या नैतिक उपन्यास–जैसा लगता है। इसमें विभिन्न पात्रों–सुभद्रा, अन्नपूर्णा, आनंदस्वामी, राजेन्द्र और वसंत आदि के माध्यम से लेखक त्याग, सेवा और आत्मसंयम के गुणों को उद्घाटित करता है। दूसरी ओर प्रेमतीर्थ, संग्रामसिंह और यदुनंदन सिंह आदि खलपात्रों के द्वारा सत् और असत् के संघर्ष में सत्य की विजय के सिद्धांत को प्रतिपादित करने की चेष्टा की है। कथानक के बीच–बीच में प्रकृति के विस्तृत अलंकृत वर्णन भी दिए गए हैं। शैली भी संस्कृत के तत्सम शब्दों और अलंकारों के बोझ से दबकर निष्प्राण हो गई है। इन उपन्यासों में घटनाएँ सीमित और संक्षिप्त हैं। कथानक का विकास बिना किसी जटिलता के सीधे–सादे रूप में होता है। चरित्रों का द्वंद्वों और मानसिक तनावों से प्रायः अछूता है। वे अच्छे और बुरे दो स्पष्ट साँचों में ढले हुए हैं। इनकी अलंकृत और कवित्वपूर्ण शैली ही इनका मुख्य आकर्षण है। लेकिन सामाजिक उपन्यास की प्रकृति को देखते हुए वही उनकी सबसे बड़ी सीमा भी है। उपन्यास को संस्कृत आख्यान परंपरा से जोड़ने का जो लक्ष्य लेखक ने अपने सम्मुख रखा था, उसे किसी गंभीर रचनात्मक चुनौती के रूप में नहीं लिया जा सका है। हिन्दी उपन्यास के परवर्ती विकास में ऐसी श्रमसाध्य, अलंकृत और बोझिल शैली की व्यर्थता को समझकर आज चण्डी प्रसाद शर्मा 'हृदयेश' पूरी तरह इतिहास की वस्तु बन चुके हैं।

शिवपूजन सहाय :

चण्डी प्रसाद शर्मा 'हृदयेश' से एकदम भिन्न शिवपूजन सहाय अपने 'देहाती दुनिया' (1926) में ठेठ देहात की भाषा का देशज मुहावरा ढूँढ और गढ़ रहे थे। जीवन–यथार्थ से जुड़े इसके सर्जनात्मक गद्य की स्वीकृति के संबंध में तब वे भी अधिक आश्वस्त नहीं थे, इसीलिए अपनी भूमिका में भवभूति का श्लोक उद्धृत करते हुए उन्होंने काल के निरवधि और पृथ्वी के विपुल होने की बात दोहराई है–भविष्य में किसी समानधर्मा की प्रतीक्षा करते हुए। अपनी भूमिका में उन्होंने लिखा है–'मैं ऐसी ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुँधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें देखने में आती हैं–अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का तांडव नृत्य। वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा–सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों–का–त्यों इसमें अंकित कर दिया है। इसका एक शब्द भी मेरे दिमाग की खास उपज या मेरी मौलिक कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि भाषा का प्रवाह भी मैंने ठीक वैसा ही रखा है, जैसा ठेठ देहातियों के मुख से सुना है।' (देहाती दुनिया, भूमिका पृ. 8, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण, 94)

'देहाती दुनिया' के केंद्र में बिहार का रामसहर नामक एक छोटा–सा गाँव है। उपन्यास के प्रकाशन के वर्षों बाद, आंचलिक उपन्यास के हल्ला–बोल दौर में, आंचलिक उपन्यास के रूप में लोगों ने 'देहाती दुनिया' का उल्लेख भी

जब–तब किया है। लेकिन जैसी कि लेखक को आशंका थी, अपने टटके यथार्थ और उसके संप्रेषण के लिए ठेठ देहाती भाषा का जो मुहावरा लेखक ने निर्मित किया है, उसी के कारण इसे उपन्यास के रूप में स्वीकृति के लिए एक लंबी अवधि तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है। 'देहाती दुनिया' का गाँव भारत का एक प्रतिनिधि गाँव है– अपनी निर्धनता, अज्ञान, रूढ़ियों और अंधविश्वासों की मार सहता हुआ। कथानक पर्याप्त असम्बद्ध है। लेकिन व्यंग्य और बिम्बों के मेल से बनी भाषा से चरित्रांकन की जो पद्धति अपनाई गई है, उससे ही उपन्यास को एक विशिष्ट पहचान मिलती है। इस भाषा के माध्यम से चरित्रांकन की पद्धति का एक उदाहरण देखा जा सकता है, 'दारोगाजी जाति के कायस्थ, घूसखोरी, बपौती–सनातन धर्म, नई उम्र, सुन्दर, डील–डौल, कसी हुई देह, ऐंठी हुई कड़ी नोकदार मूँछें, चमन की क्यारियों की तरह सँवारे हुए बाल, आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा, नाजुक मिजाज, शौकीन तबीयत, बोतल ढालने का चस्का, शोहदेपन का शौक, नस–नस में शरारत भरी हुई, वासनाओं के पुतले और हर–एक 'बाजी' के काजी। (वही, पृ. 84) इस व्यापक अज्ञान के बीच स्त्री की नियति का सवाल उपन्यास का मुख्य कथ्य है। इसमें स्त्री के विभिन्न रूप सहज ही उपलब्ध हैं–रखैल, विधवा, सौत और परिवार की सामान्य स्त्री। बुधिया रामटहल सिंह की रखैल होकर भी अपना अधिकार जताती और माँगती है। लेकिन खोटे सिक्के की तरह द्वार–द्वार घूमना ही जैसे उसकी नियति है–कभी वह मनबहाल सिंह से जुड़ने को अभिशप्त है, तो कभी सोहाबन से। उसकी बेटियाँ–सुगिया, बतसिया और फुलगेनिया भी उससे अधिक भिन्न जीवन नहीं जीतीं। कहीं वे बूढ़ों को ब्याही जाती है, कहीं बेची जाती हैं। सुगिया के ही संदर्भ में दारोगा का प्रसंग ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। बिखरे और असम्बद्ध कथानक द्वारा, गाँव की बोली–बानी और मुहावरों–कहावतों की चाशनी में रच– पचकर निकली भाषा छोटे–छोटे चरित्रों द्वारा जो संसार निर्मित करती है, उसकी सहजता ही उसके प्रति अविश्वास भी पैदा करती है। उपन्यास की स्वीकृति को लेकर स्वयं लेखक की आशंका का उल्लेख किया ही जा चुका है। देहाती दुनिया के संदर्भ में परमानंद श्रीवास्तव ने यह सवाल उठाया है कि क्या यह बिखराव असम्बद्धता और अधूरापन ही उपन्यास की शक्ति है। अपने ही सवाल का उत्तर वे इस रूप में देते हैं, 'प्रगीतात्मकता, गहरे आंतरिक द्वंद्व, गहरी जिज्ञासा और कलात्मकता का अतिक्रमण करते हुए शिवपूजन सहाय ने यहाँ जो रूप चुना है, वह कई बार तो निबंध के निकट है–निबंध प्रकृति का सजीव गद्य! सबसे अधिक, प्रच्छन्न रागात्मकता का कोई अक्षय स्रोत, जहाँ–तहाँ अपनी कथा प्रकृति में छिपाए हुए व्यंग्य–विनोद भी ऐसा कि शिक्षितों को इनका पाठ–संपादन अनिवार्य लगने लगे। पर 'देहाती दुनिया' को जिस अर्थ में 'ठेठ देशज ठाठ का उपन्यास' कहा जा रहा है, वह भदेस–विद्रूप को अपनी अंतर्वस्तु में खपा लेने की युक्ति जानता है। पाखंड या लोकरीति के नाम पर प्रचलित चरम विकृतियों का निर्मम उद्घाटन प्रगतिशील दृष्टि के अभाव में असंभव है।

(उपन्यास का पुनर्जन्म, पृ. 21)

सियारामशरण गुप्त :

सियारामशरण गुप्त की वास्तविक पहचान एक कवि के रूप में रही है। लेकिन अपने तीन उपन्यासों–'गोद' (1932), 'अंतिम आकांक्षा' (1934) और 'नारी' (1937) द्वारा उपन्यास के क्षेत्र में भी उनका सर्जनात्मक हस्तक्षेप कई कारणों से उल्लेखनीय है। अपने इन उपन्यासों में उन्होंने भारतीय ग्राम जीवन के सामान्य पात्रों को ही केंद्र में रखा है। 'गोद' में किशोरी मेले में खो जाती है और इस अपवाद के कारण उसका तय हुआ विवाह टूट जाता है; क्योंकि घर से गायब रही लड़की को स्वीकारने के लिए समाज तैयार नहीं था। इसी के परिणामस्वरूप बाद में किशोरी का विवाह एक प्रौढ़ से तय कर दिया जाता है। पहले उसका विवाह शोभाराम के साथ तय हुआ था। किशोरी के दूसरे संबंध की खबर जब शोभाराम को लगती है, तो वह इसके लिए स्वयं को दोषी समझकर घर से निकल जाता है। अंततः लोकापवाद की चिंता किए बिना वह आगे आकर साहस का परिचय देता है और किशोरी को अपना लेता है। लेखक ने रूढ़ियों, अंधविश्वासों और क्षुद्र स्वार्थों में लिप्त ग्राम–समाज का प्रामाणिक और विश्वसनीय अंकन किया है। उपन्यास का फलक प्रेमचंद के उपन्यासों की तरह बहुत व्यापक भले ही न हो; लेकिन ग्रामीण समस्याओं के प्रति युवा पीढ़ी की हार्दिक संलग्नता में ही उपन्यास का महत्व निहित है। शोभाराम अपनी भाभी को माँ के समान मानता है। निःसंतान होने से पार्वती भी शोभाराम को बेटे की तरह चाहती है। सम्मिलित परिवार के हार्दिक और मोहक चित्रों के कारण भी 'गोद' इस दौर का एक उल्लेखनीय उपन्यास है। 'अंतिम आकांक्षा' केंद्र में रामलाल नामक एक घरेलू नौकर हैं अपने स्वामी की पुत्री के विवाह के अवसर पर पड़े डाके में वह साहसपूर्ण डाकुओं का मुकाबला करके एक डाकू को मार देता है। साक्ष्य मिटाने के विचार से डाकू अपने मृत साथी का सिर काटकर ले जाते हैं। मृत डाकू के शरीर पर पाया जानेवाला जनेऊ समस्या पैदा कर देता है। अपने साहस के लिए पुरस्कृत होने के बजाय रामलाल पर ब्रह्महत्या का दोष लगता है। रामलाल को गाँव छोड़कर अन्यत्र चला जाना होता है; क्योंकि बाराती लोग भोजन करने को तैयार नहीं है। आगे चलकर एक गांधीवादी अध्यापक का प्रवेश होता है। अंततः रामलाल पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है और उसपर डाकुओं का साथ देने के अपराध में मुकद्दमा चलता है। करुण परिस्थितियों में रूढ़िवादी ग्राम–समाज की क्रूरताओं के परिणाम स्वरूप ही उसकी मृत्यु हो जाती है। लेखक ने अपने समय के सामाजिक पाखंड और रूढ़ियों पर तीखी टिप्पणियाँ की हैं, जो कहीं–कहीं उपन्यास की रचनात्मकता को क्षति भी पहुँचाती है।

'नारी' को सियारामशरण गुप्त के औपन्यासिक विकास का प्रौढ़तम रूप माना जा सकता है। उपन्यास के केंद्र में जमुना है। उसका पति वृन्दा नौकरी की तलाश में कलकत्ता चला जाता है। जमुना एक ग्रामीण नारी की सरलता और त्याग की प्रतिमूर्ति है। व्यापक रचनात्मक परिदृश्य में यह स्त्री के महत्व और उसकी अस्तित्वगत स्वीकार्यता का काल है। जमुना अपने दुख और अकेलेपन में भी तेजस्वी दृढ़ता को अपना संबल मानकर चलती है। किसी भी स्तर पर मुखर विद्रोह की अपेक्षा उसकी सहिष्णुता ही समाज के अंतर्विरोधों के प्रति तीखी प्रतिक्रिया पैदा करती है। यही एक तरह से उपन्यास की सफलता भी है। पति की अनुपस्थिति में सहायता और सौहार्द के लिए आगे आए अजित के प्रति वह अपने अंतर्मन में वही दोलायमान भी अनुभव करती है। लेकिन फिर अपनी दृढ़ता से वह इस द्वंद्वपर विजय पाने में सफल होती है। शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' की तरह 'नारी' में भी ग्राम जीवन पर लेखक की पकड़ गहरी विश्वसनीयता और प्रामाणिकता की छाप छोड़ती है।

वृन्दावन लाल वर्मा :

प्रेमचंद ने उपन्यास को कलात्मक स्तर पर अपने समय के सवालों से जोड़ने का जो उपक्रम किया, उसके प्रति उनके अनेक समकालीन और परवर्ती लेखकों का आकृष्ट होना स्वाभाविक था। वृंदावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री जैसे लेखकों ने आगे चलकर भले ही अपनी मुख्य पहचान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखे जानेवाले उपन्यास लेखकों के रूप में बनाई हो, जिसकी चर्चा यथावसर की जाएगी; लेकिन अपने उपन्यास लेखन की शुरुआत इन लोगों ने सामाजिक उपन्यासों से ही की थी। इस बात का उल्लेख भी किया जा चुका है कि इतिहास की पृष्ठभूमि पर लिखी गई रचनाओं को प्रेमचंद आशंका और संदेह की दृष्टि से देखते थे। चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'इस्लाम का विषवृक्ष' (1933) के प्रकाशन पर जैनेन्द्र कुमार को लिखे गए एक पत्र में वे अपनी चिंता प्रकट करते हैं। प्रसादजी के ऐतिहासिक नाटकों को वे 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' जैसा प्रयास मानते हैं। वृंदावन लाल वर्मा का 'गढ़कुण्डार' (1929) प्रकाशित होने पर भी उन्होंने अपनी इस आशंका को छिपाया नहीं था। अपने समय और समाज के सवालों के प्रति

प्रेमचंद अत्यन्त सजग लेखक का उदाहरण हैं। भले ही वे युवा और नए लेखकों के अपने ढंग से विकसित होने में विश्वास करते थे; लेकिन उनकी उपस्थिति ही एक ऐसा रचनात्मक सेंसर थी, जो प्रत्यक्ष रूप से लेखकों को प्रभावित अवश्य करती थी। प्रसाद के दोनों सामाजिक उपन्यासों के संदर्भ में भी इस ओर यथावसर संकेत किया गया है।

आरंभिक कुछ वर्षों में 'गढ़कुण्डार' के अतिरिक्त, वृंदावन लाल वर्मा ने अनेक सामाजिक उपन्यास तो लिखे ही, आगे चलकर भी जब ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उनकी सुस्पष्ट पहचान बन चुकी थी, बुंदेलखंड की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे। उनके आरंभिक उपन्यासों में 'लगन' (1928), 'संगम' (1929), 'प्रत्यागत' (1929), 'कुंडलीचक्र (1929) और 'प्रेम की भेंट' (1931) आदि का उल्लेख किया जा सकता है। प्रेमचंद की उपस्थिति के कारण लोगों का ध्यान वृंदावन लाल वर्मा की ओर तुरंत नहीं गया। इसका एक कारण यह भी था कि अपनी रचनावस्तु और रचनात्मक सरोकारों की दृष्टि से वे प्रेमचंद के निकट ही नहीं, उनके अनुगामी भी थे। उनके सामाजिक उपन्यासों की ओर भी लोगों का ध्यान तब गया, जब ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में बाकायदा प्रतिष्ठित होकर वे एक नई धारा के प्रवर्तक के रूप में जाने, जाने लगे थे। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' और जैनेंद्र कुमार जिनकी चर्चा अगले अध्याय में की जानी है, इसीलिए अपेक्षाकृत अधिक तेजी से लोगों की निगाह में चढ़ सके; क्योंकि प्रेमचंद की उपस्थिति के बावजूद ये लोग अपने लिए उनसे भिन्न और अलग राह की ओर बढ़ रहे थे।

अपने सामाजिक उपन्यासों में वृंदावन लाल वर्मा सामान्यतः प्रेमचंद और उनके युग के दूसरे लेखकों द्वारा उठायी गई समस्याओं को ही केंद्र में रखते हैं। 'लगन' में रामा की बारात इसलिए लौट जाती है; क्योंकि उसका पिता समुचित दहेज की व्यवस्था नहीं कर पाता। लेकिन रामा प्रेमचंद की नायिकाओं से भिन्न बुंदेलखंड के शौर्य और तेज से गढ़ी नई नायिका है–जिस शृंखला का समुचित विकास वृंदावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में होता है। वह अपने लिए प्रस्तावित पति देवसिंह को चाहती है और देवसिंह भी उससे प्रेम करता है। चोरी से जब देव सिंह रामा से मिलने आता है, तो रामा के परिवार के लोग घात लगाकर उसपर आक्रमण करके उसे घायल कर देते हैं। रामा सारी लज्जा और संकोच छोड़कर चढ़ी हुई बेतवा को पार करके देवसिंह के परिवार जनों को वस्तुस्थिति की सूचना देती है। ससुर अपनी बहू के साहस पर गर्व करता है। 'संगम' में रामचरण के माध्यम से वृंदावन लाल वर्मा अवैध संतान के अधिकार की लड़ाई लड़ते हैं। यहाँ वे स्वीकृत वर्ण व्यवस्था के आगे भी प्रश्नचिह्न लगाते दिखाई देते हैं। 'प्रेम की भेंट' में बाल विधवा उजियारी धीरज से प्रेम करती है। लेकिन सामाजिक रूढ़ियों के कारण धीरज उसके प्रति उदासीन बना रहता है। वह एक दूसरी युवती से प्रेम करता है। बदले की भावना से उजियारी उस युवती को विष देकर मारने का प्रयास करती है। भूल से वह विषैला भोजन धीरज के पास पहुँच जाता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। वृंदावनलाल वर्मा प्रेम की उत्कटता को गहरी संवेदना के साथ अंकित करते हैं। बुंदेलखंड के गाँव–कछार, नदी–मैदान, टीले–टापड़ उनके इन सामाजिक उपन्यासों में भी अपने काव्यात्मक उपस्थिति के कारण एक विशेष प्रकार के सम्मोहन की रचना करते हैं। सुगठित कथानक, आकर्षक और प्रभावशाली पात्रों का विश्वसनीय संसार और बुंदेलखंड की आंचलिक रस में रची–पची उनकी भाषा उनके उपन्यासों को पठनीयता का ऐसा गुण देते हैं, जो इस युग के कम ही लेखकों में दिखाई देता है। जन पक्षधरता और समाजवादी देशों में प्रचलित सहकारिता की अवधारणा को वे स्वीकार करते हैं। लोककथा पर आधारित 'सोना' (1950) और सहकारी कृषि पर केंद्रित 'अमरबेल' (1952) उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में प्रर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के बाद भी सामाजिक समस्याओं के प्रति उनकी गहरी अभिरुचि अंत तक बनी रहती है। ऐसा इसीलिए संभव होता है कि इतिहास उनके लिए अतीत और वर्तमान के दो अलग–अलग खानों में बँटा कोई अमूर्त तत्त्व नहीं है। वे इतिहास को एक अखंड काल प्रवाह के रूप में ही स्वीकृति देते हैं, जो किसी भी अतीत से अधिक अपने वर्तमान के लिए उत्तरदायी है।

चतुरसेन शास्त्री :

चतुरसेन शास्त्री ने भी आगे चलकर ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाई। लेकिन अपने उपन्यास 'हृदय की परख' (1931) से उन्होंने सामाजिक उपन्यासों के क्षेत्र में प्रवेश किया। 'अमर अभिलाषा' (1933) और 'आत्मदाह (1934) आदि उनके इस युग में लिखे और उल्लेखनीय उपन्यास माने जा सकते हैं। उनकी उपन्यासों की प्रमुख समस्याएँ लगभग वे ही हैं, जो प्रेमचंद और अन्य उपन्यासकारों द्वारा उठायी जाती रही थीं–विधवा, वेश्या, दहेज और स्त्री जीवन की ऐसी ही अन्य समस्याएँ। 'हृदय की परख' एक वास्तविक घटना पर आधारित उपन्यास है। यह प्रवृत्ति चतुरसेन शास्त्री के परवर्ती लेखन में भी बनी रहती है और बंबई के प्रसिद्ध नानावटी–कांड को केंद्र में रखकर उन्होंने 'पत्थर युग के दो बुत' (1960) नामक उपन्यास लिखा, जो प्रेम के उद्दाम आवेग को एक शाश्वत और सार्वभौम सत्य के रूप में स्वीकृति देता है। शास्त्रीजी अपने सामाजिक उपन्यासों में न तो समस्याओं को किसी नई दृष्टि से देखने का प्रयास करते हैं और न ही पात्रों का एक आकर्षक और विश्वसनीय संसार निर्मित कर पाते हैं। उनकी प्रवृत्ति गद्यगीत की ओर होने के कारण यह प्रभाव उनके सामाजिक उपन्यासों की भाषा पर भी दिखाई देता है। अपने उपन्यासों में वे ऐसी क्लिष्ट, दुर्बोध और जड़ भाषा का प्रयोग करते हैं, जो उनकी पठनीयता को क्षतिग्रस्त करती है।

प्रेमचंद युगीन लेखकों में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह भी अनेक कारणों से एक उल्लेखनीय लेखक हैं। रियासत की सामंती सुख–सुविधाओं वाली जिंदगी से वे राष्ट्रीय आंदोलन और सामाजिक चेतना की ओर आए थे। अपने अन्य समकालीनों की तरह उनपर भी महात्मा गाँधी का गहरा प्रभाव था। लार्ड कर्जन द्वारा बंग विभाजन के दौरान 1905 में वे अपनी शिक्षा के कारण कलकत्ता में थे। इसी कारण अरविंद घोष के प्रभाव वृत्त में भी आए। शाहाबाद की जिला–परिषद् के प्रथम अध्यक्ष से लेकर बिहार हरिजन सेवक संघ तक के वे अध्यक्ष रहे। अपने कथा साहित्य में उन्होंने अपनी इस मूल्य–दृष्टि को रूपायित किया, जो कुल मिलाकर प्रेमचंद की इस काल की रचना–दृष्टि की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के ताने–बाने से तैयार हुई थी। उनके प्रमुख उपन्यासों में 'राम–रहीम' (1936), 'पुरुष और नारी' (1939), 'सूरदास' (1942), 'संस्कार' (1944) तथा 'पूरब और पश्चिम' (1951) आदि उल्लेखनीय है। 'राम–रहीम' अपने शीर्षक से हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द पर केंद्रित उपन्यास होने का भ्रम पैदा करता है, जबकि उसकी केंद्रीय समस्या वेश्या जीवन से संबद्ध है। यह बेला और बिजली नामक दो लड़कियों की कहानी है, जो घटनाचक्र की शिकार होकर इस जीवन में आती है। इनके संपर्क में आए लोगों के रूप में लेखक ने भारतीय समाज के अनेक वर्गों, जातियों और धर्मों का अध्ययन किया है। 'वास्तविकता' की सादी जमीन पर लेखक 'नैतिकता' की जिस किनारी के टंकी होने की बात कहता है, वह वस्तुतः यथार्थवाद के मौसम में आदर्शवाद के छींटों की उपस्थिति ही है। 'पुरुष और नारी' में देव–सेवा, त्याग और बलिदान के महत्व को रेखांकित किया गया है। 'सूरदास' दो अंधे व्यक्तियों की भावनाओं को, ग्रामीण परिवेश में अंकित करता है। सूरदास कंठीधारी भक्त है–ईश्वर के प्रति अपनी निष्ठा के कारण वह अपनी अंधता को भी एक वरदान मानकर स्वीकार करता है। इसके विपरीत धनिया शोख और चंचल है। सूरदास अपने संस्कारों के कारण स्त्री के स्पर्श को वर्जित मानता है, जबकि धनिया उसे छेड़ने की खातिर ही

जाने–अनजाने उसे छूने–पकड़ने का अवसर ढूँढ़ती है। जातिगत वैषम्य भी उनकी निकटता में बाधा डालता है और अंततः धनिया का विवाह उसकी की जाति के एक शराबी माली से कर दिया जाता है। लेकिन वह फिर लौट आती है। फिर अंततः वह अपनी आर्त्त और पीड़ित पुकार सूरदास तक पहुँचा ही देती है–'तुम क्यों नहीं हुए हमारे?'–लेखक ने प्रेम के इस उद्दाम आवेग को बहुत संयत रूप में व्यक्त किया है।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह भी भाषा के संबंध में प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा और शिवपूजन सहाय वाली भाषादृष्टि नहीं अपनाते। वे हिन्दी और उर्दू के मेल से क्लिष्ट शब्दभंडार वाली सानुप्रास भाषा के प्रति अधिक आग्रहशील हैं, इसी कारण उनके उपन्यासों की भाषा भी उनकी पठनीयता को प्रभावित करती है। उनकी भाषा सामान्य जनजीवन की भाषा का प्रतिनिधि रूप नहीं है। विषय और प्रसंग के बाहर, दार्शनिक उक्तियों और प्रकृति चित्रण के नाम पर बेजान, बोझिल और अलंकृत भाषा का घटाटोप उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी सीमा है।

प्रेमचंद के जीवन काल में ही उनकी सर्जनात्मक सक्रियता के अंतिम दौर में, उनके विरुद्ध आरोपों और आशंकाओं की आवाजें भी उठने लगी थीं। आगे चलकर हिन्दी उपन्यास की धरती पर जिस नये रचनात्मक आवेग के कल्ले फूटते दिखाई देते हैं, उनके लिए जमीन तैयार होने का काल भी वस्तुतः यही है। प्रेमचंद के विरुद्ध हथियार की तरह इस्तेमाल किया जानेवाला एक सामान्य आरोप यह था कि उन्होंने स्त्री–पुरुष संबंधों और प्रेमानुभूति के अंकन के प्रति उपेक्षा दिखाई है। इस आरोप के समर्थन में एक ऐसा रचनात्मक विस्फोट तीसरे दशक के अंतिम वर्षों में दिखाई देता है, जिसने हिन्दी उपन्यास की प्रकृति में एक आधारभूत परिवर्तन पैदा किया। अगले अध्याय में मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अंतर्गत यथावसर उसकी चर्चा की जाएगी। लेकिन इस धारा के महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय लेखकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लेखक भी थे, जिन्होंने प्रेमचंद से भिन्न राह अपनाने की कोशिश की। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने प्रेम–संबंधों को लेकर अनेक उपन्यास लिखे। उनका पहला उपन्यास 'मीठी चुटकी' (1927) व्यक्तिवादी उपन्यासों की इस धारा की शुरुआत करता है। इसके पश्चात् उन्होंने असाधारण त्वरा से एक के बाद एक अनेक उपन्यास लिखे। 'पतिता की साधना' (1936), 'पिपासा' (1937), 'निमंत्रण' (1942) आदि उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं; लेकिन अपनी निर्बाध और सुदीर्घ रचना–यात्रा में भी वे ऐसा कुछ नहीं कर सके, जो हिन्दी उपन्यास में उन्हें उल्लेखनीय बनाता। सामाजिक संघर्ष की उपेक्षा करते हुए, अवास्तविक पात्रों की भावुकतापूर्ण स्थितियों का अंकन ही उनके अधिकतर उपन्यासों में हुआ है। उनकी भाषा भी इस भावुकता को झेलने–सँवारने के कारण न तो प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा की भाँति जीवन और धरती से फूटी भाषा है, न ही वह जैनेंद्र और पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा की तरह नए आक्रामक तेवरवाली भाषा है। उनके पात्र पश्चिम में उद्भूत विभिन्न विचारों और कला आंदोलनों पर बहस तो करते हैं; लेकिन उससे कहीं उनके अपने चारित्रिक विकास पर कहीं कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

इस प्रकार अपने पहले उपन्यास 'विदा' (1927) से प्रताप नारायण श्रीवास्तव भी अपनी सुदीर्घ रचनायात्रा की संभावना पूर्ण शुरुआत करते हैं। 1962 में हुए चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखे गए उनके उपन्यास 'विनाश के बादल' (1964) तक उन्होंने अनेक उपन्यास लिखे। 'विदा' तीन परिवारों की कहानी होने पर भी अपने सुगठित कथानक के कारण एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें पश्चिमी और भारतीय आदर्शों के संघर्षक चरित्र–चित्रण के बावजूद 'विदा' न तो प्रेमचंद वाली सामाजिक–राजनीतिक चेतना का आभास दे पाता है और न ही उन नये धरातलों की ओर बढ़ने का कोई स्पष्ट संकेत उससे मिल पाता है, जिसकी ओर अपने–अपने ढंग से जैनेंद्र कुमार और इलाचंद्र जोशी या फिर पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' बढ़ते दिखाई देते हैं। प्रताप नारायण श्रीवास्तव का ऐतिहासिक उपन्यास 'बेकसी का मजार' (1956), 1957 के प्रथम स्वाधीनता युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। उपन्यास का केंद्रीय पात्र अंतिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर है, लेकिन उसके माध्यम से लेखक ने देशव्यापी हताशा और पराजय का पर्याप्त विश्वसनीय और अवसादपूर्ण अंकन उपन्यास में किया है। लेकिन उर्दू और संस्कृत के मेल से बनी भाषा की तलाश में वे एक ऐसी कृत्रिम भाषा का निर्माण करते हैं, जो उनके उपन्यासों की पठनीयता को क्षतिग्रस्त करती है।

प्रेमचंद युगीन लेखकों में अनेक कारणों से उषा देवी मित्रा का उल्लेख जरूरी है। उन्होंने नारी–जीवन की अनेक समस्याओं पर नारी के रूप में अनुभव करके उन पर लिखा। उनका महत्व इस बात में भी है कि उपन्यास के क्षेत्र में संभवतः वे पहली लेखिका हैं, जिन्होंने विश्वसनीय और प्रामाणिक रूप में महिला जीवन को केंद्र में रखा और उसकी अपार संभावनाओं को उजागर किया। उनके उपन्यासों में 'वचन का मोल' (1936), 'जीवन की मुस्कान' (1939), और 'पिया' तथा 'पथचारी' (1940) आदि में भारतीय नारी की केंद्रीय समस्या है, जिसमें अंततः नारी त्याग, सेवा, ममता और करुणा आदि मानवीय गुणों का परिचय देती है। रूढ़ियों और सामाजिक विषमताओं से पीड़ित स्त्रियों के चित्रण में एक ऐसी करुणा और अवसाद सर्वत्र उपस्थित है, जो उन विषमताओं के प्रति गहरे आक्रोश को जन्म देता है। परिवार से सामाजिक आंदोलन की ओर आती भारतीय स्त्री की संक्रमण कालीन मनोदशाओं का अंकन उषा देवी मित्रा ने पर्याप्त विश्वसनीय रूप में किया है।

सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों के अंकन की दृष्टि से प्रेमचंद युगीन हिन्दी उपन्यास पर्याप्त सजग दिखाई देता है। सामाजिक यथार्थता के रूपायन के प्रति अपनी गहरी प्रतिश्रुति के कारण ही वह सीधी, भावव्यंजक और व्यंग्यधर्मी भाषा के संबंध में भी उतना ही सजग दिखाई देता है। कविता में यही युग छायावाद के काव्यांदोलन का युग होने पर भी हिन्दी उपन्यास उसके प्रभाव से जो मुक्त दिखाई देता है, उसका श्रेय प्रेमचंद को ही दिया जाना चाहिए। उन्होंने साहित्य को जीवन से जोड़ने का जो उपक्रम किया, उसी के अनुरूप कथा–भाषा का निर्माण भी किया। लेकिन प्रेमचंद के जीवन–काल में ही उनके परवर्ती दौर में, हिन्दी उपन्यास अनेक नई दिशाओं के संधान और अन्वेषण में सक्रिय दिखाई देने लगता है। तीसरे दशक के अंतिम कुछ वर्ष इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं। इन वर्षों में यदि एक ओर जैनेन्द्र कुमार और इलाचंद्र जोशी व्यक्तिनिष्ठ यथार्थ को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित कर रहे थे, तो वही पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ को ही किंचित् भिन्न और उग्र रूप में अभिव्यक्त करने के कारण ही 'घासलेटी' और 'प्रकृतवादी' जैसी चिप्पियों द्वारा पहचाने जाकर उपहास और भर्त्सना का पात्र बन रहे थे। प्रेमचंद के विचारों और इच्छाओं की ओर से काफी कुछ उदासीन रहकर वृन्दावन लाल वर्मा का 'गढ़कुण्डार' ऐतिहासिक उपन्यास को एक आश्चर्यकारी प्रौढ़ता प्रदान करता दिखाई देता है। प्राचीन आदर्शों के नाम पर समूची जीवन परंपरा में पलते ढोंग और पाखंड को भगवतीचरण वर्मा अपने 'चित्रलेखा' (1934) में निर्ममतापूर्वक उद्घाटित करने का प्रयास करते हैं। इसी संदर्भ में वह युगीन नैतिकता का सवाल भी गंभीरतापूर्वक उठाता है। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में यह नया रचनात्मक विस्फोट भारतीय समाज में स्त्री की नियति को भी नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास करता है।

कविता

हीरा प्रसाद हरेन्द
सुलतानगंज, भागलपुर

कमला को पाने की होड़

समुद्र मंथन से बाहर, कमला भू पर आयी
जीभ चटोरी देवों की, देख–देख ललचायी

दानव चुप्पी क्यों साधे, सबके सब अधिकारी
देव–दनुज ने आवेदन, किया उसी क्षण जारी

कमला को अपनाने की, बातें उसमें अंकित
किसका वरण करेगी वह, सबका मन था शंकित

देख–देख लीला सबकी, कमला मन मुस्कायी
पहली पाती हाथों में, दुर्वासा की आयी

दुर्वासा के आग्रह को, कमला ने ठुकराया
कहकर तुम क्रोधी हो, लोगों को भटकाया

कष्ट मिला शकुन्तला को, तुम लगते हो घाती
तब दूसरी बृहस्पति की, आगे आयी पाती

ज्ञानी हो आसक्ति मगर तुममें कमला बोली
लग गयी बृहस्पतिजी को, कमला जी की गोली

आ गया चाँद तब आगे, कमला मुँह चमकायी
नहीं विजेता कामों के, कैसे करूँ सगाई

इन्द्रदेव तब आगे आ, पेश किया आवेदन
गुरु–पत्नी से करना छल, कमला सोचे मन–मन

बात अहल्या की आयी, इन्द्रदेव शर्माया
परशुराम का खत लम्बा, कमला हाथों आया

कमला आग बबूला हो, बोली तुम तो मुनिवर
आतंक मचाया भारी, कई बार धरती पर

इक्कीस बार क्षत्री का, तुमने नाश किया है
बदले में बोलो किसका, दुख तकलीफ लिया है

उलटी–पुलटी बातें सुन, दधीचि तब मुस्काया
अपना गीत सुनाने को, आगे बढ़कर आया

त्यागी अहा! महात्यागी, मैं तो कहलाता हूँ
जीवन अर्पण करने में, जरा न घबड़ता हूँ

त्याग प्रवीण भले हो तुम, नहीं मुक्ति का कारण
सुनकर बोली कमला की, आगे आया रावण

ज्यों ही रावण को देखा, कमला सोच–समझकर
बोली नहीं रहोगे तुम, ज्यादा इस धरती पर

वेग काल का तुमने तो, जीत नहीं है पाया
मरण तुम्हारा निश्चित है, कमला ने बतलाया

मार्कण्डेय बोल उठा, चाहूँ तभी मारूँगा
इसीलिए अभी तुम्हारा, तत्क्षण वरण करूँगा

एक बात कमला बोली, जल्दी मत घबड़ाओ
बात समझने थोड़ा सा, आगे तुम आ जाओ

तुमसे कोई महिला को, संभव नहीं रिझाना
पड़ सकता है किसी समय, तुमको मुँह की खाना

हिरण्यकशिपु बोल उठा, मेरा है कुछ कहना
मेरी आयु अधिक लंबी, एक कल्प तक रहना

कमला बोली धरती पर, जब उत्पात करोगे
नरसिंह हाथ से तब–तब, कितनी बार मरोगे।

बाघम्बरधारी भोले, झटपट आगे आया
चिरायु हूँ मैं रह–रहकर, कितनी बार बताया

महिला को शीघ्र रिझाना, भी तुमको आता है
अविनाशी होने का भी, तब गाना गाता है

कमला बोली बातें सुन, हे बाघम्बरधारी
दुनिया जान रही है यह, तेरी महिमा न्यारी

अमंगल के खान भी हो, दाता हो अविवेकी
खतरा में अपने को दे, करते हो कुछ नेकी

चर्म गजासुर को ओढ़े, भस्म चिता का तन पर
तेरा असर पड़ेगा क्या, महिलाओं के मन पर

विष्णु सुमंगल मंगलमय, मेरे मन को भाया
ईश्वरत्व अनासक्त है, विजय क्रोध पर पाया

मृत्यु असंभव जिनका है, उनका वरण करूँगी
जन्म–जन्म का नाता भी, उनके संग रहूँगी

कमला हरि के निकट गयी, दोनों मिल मुस्काये
श्री–नारायण की महिमा, देव–दनुज–नर गाये।

आलेख

काव्य परिदृश्य का सटीक उद्घाटन

डॉ. लव कुमार,
गढ़बनैली, पूर्णियाँ,
मो : 9430276299

अपनी काव्य–रचना और संवेदनशीलता के बूते पर, आलोचना में अपनी सामर्थ्य सिद्ध करनेवाले डॉ. वरुण कुमार तिवारी के विचारों में व्यापकता और गहराई है। उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और एक विशेष प्रकार का रचनात्मक तेवर उन्हें एक खास अंदाज देते हैं और यह बात उनकी तीनों कविता पुस्तकों में महसूस की जा सकती है; क्योंकि इनमें विचारों की गहनता, जीवन की गंभीरता और सोच की व्यापकता के साथ–साथ जीवन का कटु–कठोर यथार्थ भी है, जो हमारे दिल के अंतर्भावों को कुरेदता है। बालस्वरूप राही के शब्दों में, 'जागरुक संवेदनशील कवि वरुण कुमार तिवारी को उनके होने का एहसास कराती है कविता।... कविता की इस अटूट प्रतिबद्धता तथा अतुलनीय क्षमता में दृढ़ विश्वास कवि वरुण को ऐसी जिजीविषा से भर देता है, जो मानवता के लिए विघटनकारी भयावह परिस्थितियों में भी अपराजेय बनी रहती है।' (पृ. 99) इन कविताओं में अनेक स्थलों पर कवि की नकारात्मक मुद्रा लक्षित होने के बावजूद टूटन और त्रासदियों के शब्दांकन में एक आंतरिक अन्विति है, एक प्रकार की वैचारिक ऊर्जा और असहज–अस्वाभाविक के लिए प्रतिरोध का तेवर है, जो आश्वस्तकारी परिप्रेक्ष्य से परिपूर्ण भी है।

इसी आंतरिक अन्विति के अन्वेषण और विचारोद्घाटन के उद्देश्य से आनंद प्रकाश त्रिपाठी ने 'प्रतिरोध की ऊर्जस्वल चेतना' का सार्थक संपादन किया है। पुस्तक की शीर्षक भी डॉ. तिवारी की कविता से लिया गया है। 'प्रतिरोध की कविता' के रूप में व्याख्या करते हुए नित्यानंद तिवारी लिखते हैं कि 'उनकी कविताओं में आज के समय का एहसास जिन रूपकों और संरचनाओं में व्यक्त हुआ है, वे भूमंडलीकरण के दबाव और सुविधाएँ झेलते/भोगते समाज के भीतर से उत्पन्न हैं। इधर–उधर कुछ सपने, कुछ गर्म साँसें और भाषा के कुछ मुहावरे अपने संदर्भों से टूटे हुए लेकिन सजीव हरकतों के साथ बचे हुए हैं। उन्हीं को सहेजकर फिर से जीवन पाया जा सकता है और यही प्रतिरोध है।' (पृ. 16) वस्तुतः वरुण कुमार तिवारी की कविताएँ कविता की जरूरत को नए संदर्भ और परिवेश में नई ऊर्जा के साथ प्रस्तावित करनेवाली हैं, जिनमें समाज जीवन के भौतिक क्लेश के साथ ही यथार्थ, अभाव, मरण, वंचितों और दुखियों की असीम वेदनाएँ, हृदय को द्रवित करनेवाले जीवन संदर्भ, विविध परिप्रेक्ष्य और स्मृतियों के उजास से परिपूर्ण है।

समीक्ष्य कृति में संपादक ने वरुण कुमार तिवारी के तीनों काव्य–कृतियों–'कुछ दूर रेत पर चलकर' (2009), 'अपने होने का एहसास' (2007) और 'तीसरी दुनिया के लिए' (2002) की कुल सत्तर समीक्षाएँ संकलित की हैं, जो किसी–न–किसी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हैं अथवा कुछ स्वतंत्र रूप से इस पुस्तक के लिए ही लिखी गयी हैं। सभी समीक्षाओं का अपना वैशिष्ट्य, अपना दायरा और मूल्यांकन दृष्टि है, अपनी अलग सीमाएँ भी हैं। रचनाओं से सहमति या असहमति, प्रशंसा और विरोध, तर्क–वितर्क और मूल्यांकन एवं पिष्टपेषण की समानांतर भावभूमि पर लिखी गई ऐसी समीक्षाएँ कहीं अन्वेषणपरक भी हैं, कहीं विश्लेषणात्मक और कहीं टिप्पणीमूलक भी; परन्तु सभी समीक्षाओं में तिवारीजी की कविताओं में सोच से ज्यादा महत्व संवेदनाओं को पकड़ने की प्रवृत्ति है। तिवारीजी सीमित अनुभवों वाले कवि नहीं हैं और न ही भाषा और शिल्प में एकरसता के शिकार हुए हैं, बल्कि सच्चाई तो यह है कि उनकी कविताएँ अपने सहज–स्वाभाविक रूप में हमें मनुष्यता को बचाए रखने की सीख देनेवाली और इस समझ की शक्ति जगानेवाली है। इसलिए दिविक रमेश का कहना उचित है कि 'कवि ने आज के समय की नब्ज को पूरी तरह पकड़ा और पहचाना है तथा उतने ही सटीक ढंग से उसे अभिव्यक्त भी किया है। अभिव्यक्ति में कहीं कोई गुंजलक नहीं, चमत्कार दिखाने की प्रवृत्ति नहीं।(पृ. 32)

अस्तु, इन तीनों काव्य–कृतियों पर लिखी गई, समीक्षाएँ बड़ी संतुलित, काव्य–मर्म को उद्घाटित करनेवाली, अंतर्वस्तु और शिल्प की अंतस्संगति की गहन पड़ताल करनेवाली हैं। इनमें कवि तिवारी की संवेदना, आस्था, विश्वास, मूल्यधर्मिता और सामाजिक सरोकारों को स्पर्श करने की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह स्पष्ट है कि तिवारी जी की कविताएँ सामाजिक परिवर्तन में कारगर भूमिका निभानेवाली हैं और इस बात के लिए स्वयं कवि के मन में भी कोई संशय नहीं है। 'अपने होने का एहसास' के समीक्षकों ने कवि के जीवनानुभवों और अपनी संरचना के भीतर से उभरती संवेदनाओं को कुरेदने की यथासंभव कोशिश की है। नंदकिशोर नवल, विवेकी राय, बलदेव वंशी, रामदरश मिश्र, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, विष्णु प्रभाकर, रामनिहाल गुंजन और श्रीरंजन सूरिदेव जैसे वरिष्ठ आलोचकों की लिखी समीक्षाएँ सारगर्भित और वस्तु–विश्लेषणपरक होते हुए भी टिप्पणी के आकार–प्रकार की हैं, जो समीक्षकीय मंतव्य की दृष्टि से मर्मोद्घाटन के कारण उल्लेखनीय हैं; लेकिन सच यह है कि तिवारीजी की काव्यकृति का समग्र मूल्यांकन और वस्तुगत अनुभूति का विशद उद्घाटन इन टिप्पणियों में नहीं हो सका है। इसलिए उन समीक्षाओं में गहराई तो है, पर फैलाव नहीं; सूत्र रूप में ही सही, पर सत्योद्घाटन तो है, लेकिन विस्तार नहीं।

अरस्तू ने कहा है कि 'काव्य का उद्देश्य एक उच्चस्तरीय आनंद प्रदान करना है।' किन्तु आज के समय में जिस तरह से काव्य का सृजन हो रहा है, इससे कविता की काव्यात्मकता और आनंद की उच्चता शोचनीय हो गयी है। ऐसी स्थिति में इन समीक्षकों के द्वारा वरुण कुमार तिवारी की कविताओं में जीवन की जड़ता पर प्रहार करने और जीवन में नए अर्थों की तलाश करने की प्रवृत्ति एक सुखद अनुभूति कराती हैं। संकलित समीक्षाओं में निष्पक्षता एवं विवेचात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है और मनुष्य जीवन के अनेक आयामों को गंभीर ढंग से उजागर करने की कोशिश भी। तिवारीजी ने जीवन के लिए जीवन की कविता रची है, जिसमें भाषा की रवानी और मिट्टी का सोंधापन है, प्रतिरोध का स्वर है और आशा की एक नई किरण भी। स्पष्ट है कि कवि आम जनता से जुड़ा है और उनके संघर्षों में उनके साथ है और इसी कारण तिवारी की कविताएँ इतनी परिपक्व हैं तथा बिना किसी विचारधारा के आरोपण के ही सार्थक जीवनमूल्यों और दृष्टि–सम्पन्नता से परिपूर्ण है। इसलिए भगवान दास जैन की यह उक्ति अनुचित नहीं कि 'वरुण कुमार तिवारी सामाजिक सरोकारों तथा समकालीन बोध के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे सकारात्मक मूल्यों के कवि हैं तथा अपने ऊर्जस्वी शब्दों के द्वारा समय के खिलाफ सार्थक हस्तक्षेप करने के लिए जूझ रहे हैं।' (पृ. 69)

समीक्ष्य कृति में संपादक 'डॉ. आनंद प्रकाश त्रिपाठी की दृष्टि डॉ. तिवारी की कविताओं के महत्व और समाज के प्रति उनकी निष्ठा और सरोकारों से वाकिफ कराना है।' अपने समय और समाज के लगभग हर छोटे–बड़े प्रश्नों, संघर्षों और मनुष्य–मन की पीड़ा को सही कोण से एवं व्यापक संवेदना के स्तर पर देखने समझने वाले डॉ. तिवारी की कविताओं की इन समीक्षाओं में भी एक नया ढब, मर्मस्पर्शी संवेदना का रंग, विचारों का तेवर और एक नई भाषा–शैली मिलती है; क्योंकि विद्वान समीक्षकों ने बड़ी स्पष्टता, तटस्थता और ईमानदारी के साथ उनकी कविताओं की समीक्षाएँ लिखी हैं। इन समीक्षकों ने तिवारीजी के काव्य में निहित जीवन–मूल्यों, निषेधात्मक मूल्यों और उसके प्रतिरोध में उठ खड़े होने की चेतना को स्पर्श कर उद्घाटित करने का प्रयास किया है। कवि के मूड, उनकी संवेदना और प्रतिबद्धता, उनकी जीवनदृष्टि, यथार्थ की पकड़ और प्रतिरोध की क्षमता को पकड़कर उसे संयमित भाषा में अभिव्यक्त करने के कारण 'प्रतिरोध की ऊर्जस्वल चेतना' नए काव्य समीक्षकों और अध्येताओं के लिए एक सकारात्मक सोच विकसित करनेवाली है। यहाँ पुरानी एवं नई पीढ़ी और इनके बीच से उभर रही एक और युवापीढ़ी के रचनाकारों और आलोचकों द्वारा वरुण कुमार तिवारी की कविताओं के मूल्यांकन का प्रयास इस पुस्तक की एक उल्लेखनीय विशेषता है। समीक्षा के कई रंग–रूप, बदलते तेवर, भाषा की अर्थच्छवियाँ और विभिन्न शैलियाँ एक साथ इस कृति में दिखाई देने के कारण निश्चय ही काव्यालोचन जगत में इसका स्वागत किया जाएगा।

समीक्षा

सामाजिक सरोकारों का जीवंत दस्तावेज : शाख से टूटे पत्ते

डॉ. वरुण कुमार तिवारी
वैशाली, गाजियाबाद
मो. 8860478066

'परिणीता' तथा 'केंचुल पहने लोग' कहानी–संग्रहों के बाद 'शाख के टूटे पत्ते' चर्चित कथाकार धर्मेन्द्र कुसुम (जन्म 1959) का तीसरा कहानी संग्रह है। इस संग्रह की कहानियाँ इसका साक्ष्य है कि यहाँ तक आते–आते लेखक की सृजनात्मक परिपक्वता और प्रतिभा के आयामों को और अधिक विस्तार मिलता है।

संग्रह की कुल पंद्रह कहानियों में विषय की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है और इससे यह बोध होता है कि लेखक के पास जीवन के व्यापक और विविध अनुभव हैं। वह अपने इन अनुभवों को सीधे–सरल तरीके से कहानी में ढालता चलता है। कोई अनावश्यक उलझाव नहीं है। फलस्वरूप इन कहानियों की पठनीयता बढ़ी है। अधिकतर कहानियाँ कोशी के जन–जीवन से संबद्ध हैं। इनकी भाषा सहज–सामान्य है। जिस कहानी के आधार पर इस संकलन का नाम रखा गया है, उस 'शाख के टूटे पत्ते' में युवा वर्ग में आए बेरोजगारी, निराशा से उत्पन्न आक्रोश का अतिरेक एवं फैंटेसी को चिह्नित किया गया है।

भोगवादी मूल्यों पर आधारित आज के लोगों में खासकर युवावर्ग में तनाव बढ़ता जा रहा है। इसी कारण असंयमित आचरण जीवन का अंग बन गया है। हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में गड़बड़ियाँ पैदा हो गयी हैं। असुरक्षा, हिंसा, ईर्ष्या–द्वेष, भय, चिंता, निराशा, खिन्नता जैसे मानसिक विकार हमारे जीवन में कोहराम मचाए हुए हैं। युवकों में बेरोजगारी का तनाव, पारिवारिक तनाव और सामाजिक तनाव के भयानक परिणाम देखने को मिलते हैं। भूमंडलीकरण के कारण धन–संग्रह की होड़ को बढ़ावा मिला है; क्योंकि इसने धन को मानव की प्रतिष्ठा का आधार बना दिया है। फलतः देश में चोरी, डकैती, अपहरण, हत्या, देह–व्यापार, बूथ कैप्चरिंग, सट्टा, जुआ, स्मगलिंग जैसी आपराधिक क्रियाएँ व्यवसायों का रूप ले चुकी हैं। इस तरह नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है और युवावर्ग दिशाहीन हो गया है। कहानी के अंत में पाँच युवकों में से पाँचवाँ युवक कहता है–'ऐसी ही है आज की युवा पीढ़ी। एक समस्या हो तो कोई उपाय भी हो। माँग लिया रोजगार नहीं तो बेरोजगारी भत्ता दो। जब बेरोजगारी भत्ता मिलने लगा तो हल्ला करने लगे, हम भत्ता नहीं लेंगे, इससे हमारे स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है। बात चलेगी राजनीति पर फिसलकर चले जाएँगे साहित्य पर, साहित्य में फिल्मी चर्चा होगी, फिल्मों के रेप सीन पर गाँव के बलात्कार की बात आ जाएगी। उससे छूटे तो प्रशासन पर टीका–टिप्पणी होते–होते अपने–अपने प्रेम–प्रसंग चलने लगेंगे, प्रेम प्रसंग पर सांप्रदायिक दंगों का वर्णन चलने लगेगा, फिर... ऐसे ही हैं आज के दिशाहीन युवा। शाख के टूटे हुए पत्ते की तरह किधर जा पड़ेंगे, कहाँ गिरेंगे कुछ नहीं मालूम।''

संग्रह की पहली कहानी 'पुरखों का गाँव' में गाँव छोड़ने का दर्द और टूटते हुए पारिवारिक संबंध का चित्रण है। नैरेटर का पिता अठारह वर्ष पहले गाँव छोड़कर शहर में बस गया था। गाँव से नैरेटर की दादी के मरने की खबर आती है। पिता नैरेटर के हाथ में एक हजार रुपये देते हुए कहता है–''दोपहर की बस से गाँव चले जाओ। यह रुपये दे देना, माँ की अन्त्येष्टि में काम आएँगे और हाँ, कह देना–मुझे ऑफिस से छुट्टी नहीं मिल सकी, वरना जरूर आता।' नैरेटर जानता है कि पिताजी की अभी छुट्टी है, फिर भी वे ऑफिस की छुट्टी नहीं मिलने का बहाना बना रहे हैं। गाँव से वापिस आते समय नैरेटर अतीत की स्मृतियों में बसे हुए गाँव को छोड़ने की पीड़ा से तिलमिला उठता है–''लोग गाँव छोड़कर शहर में बसते चले गए हैं। दो दशक बीत चुके और बावजूद विकास के गाँव टूटते गए और नगरों की आबादी बढ़ती गई है।''

'छोटी–छोटी बातें' कहानी में स्त्री के स्वाभिमान को एक नए कोण से उद्घाटित एवं प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है। स्त्री–जीवन की उलझनपूर्ण स्थितियों, स्त्री की पीड़ा एवं उसकी अस्मिता का इसमें मार्मिक चित्रण है। कहानी के अंतिम भाग में कथा नायिका शालू अपने पति से कहती है–''हर चीज कुछ क्षणों के लिए ही सुंदर लगती है और कालांतर में मोहभंग होता है। नई चीज ही पुरानी हो जाता है और पुरानी चीजों के प्रति वह लगाव नहीं होता; लेकिन व्यक्ति और वस्तु में फर्क है। व्यक्ति वस्तु नहीं, जिसे पुराना मानकर उपेक्षित कर दिया जाए और यदि ऐसा ही करना हो तो दूसरे के बारे में सोचते रहने का नाटक करने की जरूरत क्या है?'' अंत में वह दाम्पत्य जीवन की सबसे महत्वपूर्ण बात उजागर करती है–''वस्तुओं को रखने के लिए काफी साज–सँभाल की आवश्यकता होती है, जो कभी–कभी सुख से अधिक उत्तरदायित्व का बोध कराती है, लेकिन संबंधों के साथ ऐसी बात नहीं। तुम्हारे सिर्फ दो बोल मेरे लिए कितने कीमती थे और हैं, यह तुम नहीं समझ सके।''

'टुकड़ा–टुकड़ा जीवन' शीर्षक कहानी का कथा नायक बड़ी कठिनाई से गृहस्थी की गाड़ी खींचता है। वह एक दुकान में सेल्समैन है और रात में रिक्शा चलाता है। एक दिन कुछ माँगों को लेकर रिक्शा–चालक हड़ताल कर देते हैं। लेकिन कुछ दिनों बाद वे दो गुटों में बँट जाते हैं। एक दल का प्रमुख कथानायक है। दूसरे दल का प्रमुख एक षड्यंत्र के तहत कथानायक को जेल भिजवा देता है। ढाई महीने बाद जब वह जेल से छूटकर आता है, तो जिंदगी के कई दार्शनिक प्रश्नों में उलझकर रह जाता है। कहानी के अंत में लेखक का यह दार्शनिक चिंतन अनावश्यक प्रतीत होता है। कहानी इसके बिना भी पूरी थी।

'लौटती डाक' शीर्षक कहानी में दाम्पत्य संबंध की सीमा से बाहर निबंध यौन–जीवन का चित्रण है। इस तरह की कहानियाँ 'अकहानी' आंदोलन के दौर में काफी लिखी गयीं। इस कहानी में भी स्त्री–पुरुष के यौन–शुचिता को पूर्णतः तिलांजलि देकर निर्बन्ध काम संबंधों को जीने की दृष्टि प्रखर रूप से उपस्थित है। कथा नायिका, जो दो बच्चों की माँ भी है, अपने पति को छोड़कर ऑफिस के बॉस के साथ दूसरे शहर में जाकर रहने लगती है और तेरह वर्ष बाद अपने पति के पास लौटना चाहती है। पति का हृदय बड़ा है। वह उसकी वापसी का स्वागत करता है। 'शेष दिन' शीर्षक कहानी भी विवाहेतर संबंध बनाने के दुष्परिणाम को चित्रित करती है। दाम्पत्य संबंध की उष्मा शेष हो जाने की यह कहानी स्त्री–पुरुष के लिए अलग–अलग नैतिकता के पैमाने को रेखांकित करती है।

'पाप स्वीकृति' शीर्षक कहानी भी निर्बन्ध यौन जीवन की कहानी है, लेकिन इस कहानी में उपदेश की ध्वनि है। कहानी सुधारात्मक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है। कथा–नायिका स्वछंद प्रकृति की है। वह एक–एक कर कई युवकों से संबंध बनाती चलती है और तोड़ती भी चलती है। अंततः उसे बोध हो जाता है कि यह तो जीवन नहीं है। इसमें अँधेरा और खालीपन के सिवा कुछ भी नहीं है। वस्तुतः फिसलन की राह बड़ी चिकनी होती है, जिस पर नारी अगर एक बार गिर जाए तो कहाँ तक गिरेगी, कहना मुश्किल है।

'दुल्हन ही देहज है' एक अच्छी कहानी है, जिसमें दहेज दानव की

विभीषिका और पुरुषवादी सोच के बीच कथा–नायिका मनिका स्वयं चुनौती देती है और उसे देखने आए लड़के को अस्वीकार कर देती है। लेकिन उसे लगता है कि ऐसी गलती के लिए पिता कभी माफ नहीं करेंगे। परंतु पिता काफी प्रसन्न होते हैं और कहते हैं–'तू तो बड़ी साहसी है रे।'

'लोरिकायन' प्रेम की दुखांत कहानी है, जिसमें कथा नायक की मृत्यु हो जाती है। कहानी में प्रसंगवश कथा–नायिका चंदा नाविक को नाव पर लोकदेव लोरिक की वीरता की गाथा सुनाती है। कहानी मर्मस्पर्शी है, लेकिन इसमें विवरणात्मक अधिक है।

'बाजार' शीर्षक कहानी अपने समय–समाज की चिंताओं से टकराती हुई यह अहसास कराती है कि आज कहानी में सामाजिक चिंता ही सर्वप्रमुख है। कहानी में सामंती चरित्रों द्वारा असहायों का शोषण, व्यवस्था की भ्रष्टता और नेताओं के नैतिक पतन को प्रमुखता से उजागर किया गया है। 'फैसला' कहानी में भी गाँव के ठाकुरों द्वारा दलितों के शोषण के विरुद्ध आक्रोश एवं बदला लेने की भावना भी दबी जुबान से अभिव्यक्त होती है।'एक और साक्षात्कार' बेरोजगारी की आधारभूमि पर रचित एक मार्मिक कहानी है, जिसमें नियोजन–कार्यालय में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण है। 'पीर बाबा' युद्धोन्माद (मॉब साइकोलॉजी) की कहानी है। भीड़ के सामूहिक मस्तिष्क (ग्रुप माइंड) में कोई विवेक नहीं होता। फिर तो बड़ी आसानी से भीड़ द्वारा बड़ा से बड़ा नुकसान किया जा सकता है।

समग्रतः धर्मन्द्र कुसुम की ये सामाजिक चिंता प्रधान कहानियाँ आत्मीय स्तर पर प्रभावित करती हैं। परिवेश से जुड़ाव की ये कहानियाँ निश्चय ही मार्मिक कही जा सकती हैं।

ग़ज़लें

विश्वम्भर पाण्डेय 'व्यग्र'
9549165579

डूबते को तिनके का सहारा हो जा
न जीत अपनों से तू हारा हो जा

बहुत कश्ती चला ली बीच धार में
मेरे माँझी अब तो किनारा हो जा

थक चला क्यूँ जिंदगी की राह में
मन मेरे तू फिर बंजारा हो जा

कीमती पल न गवाँ रुसवाई में
आज फिर आँखों का तारा हो जा

प्रेम बिन जिंदगी 'व्यग्र' सी लगती
छोड़ मुरझाना खिलके हजारा हो जा।

झूठी बातों के सिलसिले न होते
जो तुम हमको मिले ना होते

बिन खाये रस रिसता कैसे
आम जो पिलपिले ना होते

कपट–विहीन बर्ताव जो होता
सच मानों फिर गिले ना होते

फर्क जानते गर झूठ साँच का
तो हम कदमों तले ना होते

ना मिटते हम 'व्यग्र' कभी भी
बर्फ के मानिंद गले ना होते।

छल रहा है आदमी एक दूसरे को
खल रहा है आदमी एक दूसरे को

सच कहना अपराध–सा लगने लगा
तल रहा है आदमी एक दूसरे को

स्वार्थ को ही मान बैठा सब कुछ यहाँ
मसल रहा है आदमी एक दूसरे को

बढ़ना किसी का किस को गँवारा नहीं
दखल दे रहा आदमी एक दूसरे को

रखता 'व्यग्र' कितने मुखौटे संग अपने
बदलता रहता हरपल आदमी एक दूसरे को

हम उम्र में तुमसे बड़े हैं भाई
तुम बैठे हो हम खड़े हैं भाई

ये कौन–सी शिक्षा की हासिल तुमने
कुछ कुछ हम भी पढ़े हैं भाइ

अंग्रेजी बोलकर क्या जताना चाहते
कुछ हर्फ हमने भी मढ़े हैं भाई

अरे इतनी जल्दी भूल गये क्या
यहाँ सब अँगुली पकड़ बढ़े हैं भाई

वक्त बड़ा सख्त मत सोच 'व्यग्र' तू
आज खुले कपाट कल ताले जड़े हैं भाई।

आलेख

उत्तर संस्कृति की जमीन पर पनपते खतरे

डॉ0. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स
निदेशक, उच्चतरशिक्षा एवं शोधकेन्द्र
चंडीगढ़, मो. 9876301085

आज हम उत्तर सांस्कृतिक इतिहास के एक मनोवैज्ञानिक क्षण से गुजर रहे हैं और विश्व में घटित हो रहे परिवर्तनों एवं विचित्र घटनाओं का सीधा संबंध संस्कृति और सभ्यता के साथ है। इतिहास ने संस्कृति की मूल तस्वीर पर कई रेखाएँ खींच दी हैं, जिनका असर अपने स्वभाव में गंदला, मटमैला, प्रदूषणमयी और अपसंस्कृत है। एक अन्य भयावह विडंबना यह है कि 'उत्तरसंस्कृति' पर प्रभाव के ग्लेशियर हमारी मूल संस्कृति, सभ्यता, भाषा और साहित्य को शवों में बदलने पर तुले हैं। हमें मालूम है कि इन शवों पर बैठकर कुछ नहीं मिलेगा और यदि कुछ पाना ही है, संभालकर रखना ही है और विरासत में कुछ छोड़ना ही है तो हमें न केवल उदारीकरण, बाजारीकरण, वैश्वीकरण और उपभोक्ता संस्कृति जैसे बांडों से उपजे संकटों के प्रति सचेत रहना है, बल्कि पेड़ों तले और वनों में पली अपनी अरण्य संस्कृति को बचाना भी है। हमारे स्थापित सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों को भोंथरा एवं अप्रासंगिक बनाना उत्तर संस्कृति पर मंडराते खतरों की जिद्द है। यह सर्वविदित है कि वैभव की लालसा भूख पैदा करती है और बाजारीकरण का बढ़ावा देती है। मनुष्य, प्रकृति और संस्कृति को तबाह करके कुछ हासिल होनेवाला नहीं है। किराए के दिमाग और आयातित मूल्य समाज और संस्कृति को लेशमात्र प्रभावित तो कर सकते हैं, लेकिन मूल आत्मा को बदल नहीं सकते हैं, लेकिन मूल आत्मा को बदल नहीं सकते। प्रभाव का संकट खरोंचे मार सकता है, लहूलुहान होने की नौबत भी आ सकती है, लेकिन मूल को निर्मूल नहीं किया जा सकता। प्रतिकूल प्रभाव के कारण जो सांस्कृतिक रुग्णता आई है, उसके इलाज के लिए हमें अपने वैद्य को अपने अंदर ही खोजना है। जब सांस्कृतिक चेतना के सामने संकट या खतरे खड़े हो जाएँ, तो इनसे निपटने के लिए संस्कृति की ही धीमी आँच में तपना पड़ता है।

यदि गौर से देखा जाए तो 1960 से 1980 तक आते–आते उत्तर औद्योगिकीकरण, उत्तर आधुनिकता और उत्तर संस्कृति जैसी अवधारणाएँ अपने पूर्ण अस्तित्व में आने लगती हैं तथा एक नए सांस्कृतिक परिवेश का सूत्रपात सामने आता है। वैश्वीकरण ने उत्तर संस्कृति को गति प्रदान की, सुर्ख रंग चढ़ा और सुदूर के लोग आपस में जुड़ने लगे। राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों तथा अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों की संधिस्थल में नई लोकप्रिय उत्तर सस्कृति का अवतरण हुआ, जो शुद्धता की भावना से मुक्त संस्कृति कही जाने लगी। ज्याँ बोड्रिलाई, मिशेल फूको, जॉक क्रेकोज, ल्योताई, जॉक देरिदा, फ्रेडरिक जेमसन आदि विचारकों ने निष्कर्षस्वरूप कहा कि उत्तर संस्कृति, आधुनिक संस्कृति की प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आई है। प्राच्य संस्कृति, आधुनिक संस्कृति, उत्तर संस्कृति स्वयं में एक प्रति–क्रियात्मक विकास प्रक्रिया है। लेकिन उत्तर संस्कृति को आधुनिक संस्कृति का रूढ़िवादी रेजिमेंटेशन स्वीकार नहीं है। उत्तर संस्कृति की अवधारणा से उत्तर आधुनिक काल का स्वरूप भी स्पष्ट होता है। यह ऐसा सांस्कृतिक युग है, जिसमें दैहिक शक्ति की बजाय, सूचना प्रौद्योगिक, विचार की गति एवं त्वरित संचार माध्यमों को सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यहाँ कामुकता को प्रेम की कला नहीं माना जाता, बल्कि यौन व्यवहार पर खुलकर चर्चा की जाती है। इस युग की बौद्धिक कुशलता सांस्कृतिक मूल्यों की खोज नहीं करत, बल्कि इसका उद्देश्य कृत्रिम सांस्कृतिकता के तरीके को खोजना हो गया है। मनुष्य एक 'वस्तु' बन गया है, जो उपभोग और बिक्री के लिए है। यहाँ तक कि उस पर पूँजी का निवेश किया जाता है। यह एक नया मानवीय संकट उभरा है।

उत्तर संस्कृति पर प्रभाव के एक अन्य संकट ने मानव मूल्यों के प्रति व्यक्ति की अनास्था में वृद्धि की है। नैतिकता, ईमानदारी, सच्चाई, भाईचारा, जीवनमूल्यों के लिए अडिग रहनेवाले व्यक्ति समाज में अलग–अलग पड़ गए हैं। अर्थ और राजनीति का वर्चस्व बढ़ा है। पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं को चुनौती मिली है। आज नारी–पुरुष दोनों के लिए सेक्स न तो वर्जित क्षेत्र रहा है और न ही आज विवाह इसकी सीमा है। प्रेम अलग–अलग रूपों में विभाजित हो गया है। नारी का नारी के प्रति और पुरुष का पुरुष के प्रति आकृष्ट होना अस्वस्थ मानसिकता में गलत बदलाव का प्रतीक ही है। इस प्रभाव और इससे उत्पन्न संकटों को 1990 से 2010 के बीच महिला कथाकारों द्वारा रचित उपन्यासों एवं कहानियों में खुलकर बयान किया गया है। अर्थ एवं सस्ती लोकप्रियता की लिप्सा के सामने स्वाभिमान, मर्यादा, नैतिकता और मानवीयता के कोई मायने नहीं है। आज की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ भयावह हैं और मूल्यों पर मनुष्य का भरोसा डगमगा गया है। हम एक ऐसी बाजार केन्द्रित संस्कृति में आ गए हैं, जिसमें मानवीय संबंधों और संवेदनाओं के निर्मम व्यावसायीकरण की प्रक्रिया जारी है। इसे विज्ञापन और मुनाफे की संस्कृति कह सकते हैं। आज की स्थितियों में बाजार कहीं भी प्रवेश करके जनमत को अपने अनुसार ढालकर मूल्यों को सिर के बल खड़ा कर सकता है।

आश्चर्य नहीं कि विचारधारा के विकास का जो क्रम परंपरा, आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के रूप में जाना जाता है, वही क्रम प्राच्य संस्कृति, आधुनिक संस्कृति और उत्तर संस्कृति पर भी लागू किया जा सकता है। दरअसल प्राचीन समय ही प्राच्य संस्कृति में रूपांतरित हतोकर मनुष्य के जीवन को संचालित करता है। जब हम भारत को प्राच्य संस्कृतिमय देश कहते हैं, तो इस अर्थ में नहीं कि वह केवल अतीत के सांस्कृतिक मूल्यों में जीनेवाला देश है, बल्कि आधुनिक संस्कृति और उत्तर संस्कृति में रहकर भी वह अपने आंतरिक समय की लय का अनुकरण करता है। सांस्कृतिक इतिहास के परिवर्तन भारत में भी हुए हैं। लेकिन जीने की इस सांस्कृतिक लय को परिवर्तनों के बीच अखंडित रखने में जो चीज सबसे अधिक सहारा देती है, वह संस्कृति ही है। सांस्कृतिक परिवेश में ही मनुष्य की आत्मा स्वच्छंद विचरण कर सकती है। आधुनिक संस्कृति को प्रगति और विकास का पर्याय मान लिया गया है। आज यह धारणा प्रबल हो गई है कि जो संस्कृतियाँ अपने को आधुनिकता अथवा बदलाव की होड़ से मुक्त रखना चाहती हैं, वे पिछड़ी हुई और अविकसित हैं। यद्यपि भारतीय संस्कृति आधुनिकता को अनुभव करती हुई उत्तर संस्कृति ने प्रभाव में काफी सीमा तक आ चुकी है; लेकिन एक बड़े अनुपात में यह अपने उन मूल्यों से अलग नहीं हुई है, जो सीधे– सीधे आस्था, विश्वास, आदर्श, सादगी, सयम एवं आचरण से जुड़े हुए हैं।

लक्षित विषय को और आगे बढ़ाने से पहले 'संस्कृति' और 'सभ्यता' में अंतर स्पष्ट कर देना इसलिए प्रासंगिक है कि ज्यादातर लोग इन दोनों शब्दों को पर्यायवाची मान लेते हैं या फिर इन दोनों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। यही बात उत्तर संस्कृति और उत्तर सभ्यता पर भी लागू होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो संस्कृति युग–युगान्तर में निर्मित होती है। संस्कृति विचार, आचरण के वे नियम हैं और मूल्य हैं, जिन्हें कोई समाज अतीत से प्राप्त करता है। संस्कृति एक विशिष्ट जीवन शैली का नाम है, यह एक सामाजिक विरासत भी है। संस्कृति में जीवन का वैचारिक पक्ष प्रबल होता है, जबकि सभ्यता में जीवन का भौतिक पक्ष प्रधान रहता है। सभ्यता की दृष्टि समकालीन जीवन की सुविधाओं–असुविधाओं पर रहती है, जबकि संस्कृति का भविष्य या अतीत के आदर्श पर। सभ्यता के निकट कानून मनुष्य से बड़ी चीज है; लेकिन संस्कृति की दृष्टि से मनुष्य कानून से परे है। सभ्यता चंचल है,

संस्कृति स्थायी है और राष्ट्रीयता का मेरूदंड है। संस्कृति देश के भूगोल से नियंत्रित होती है और धरती से उसकी जड़ें फूटती हैं। भारतीय संस्कृति के प्राण में एकत्व है और इसके रक्त में सहानुभूति है। संस्कृति ने हमेशा से समन्वय के रूप में समस्या का समाधान किया है। संस्कृति मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। संस्कृति में शांति है तो सभ्यता में चमक–दमक; एक में प्रबुद्धता है तो दूसरी उपयोगिता; एक केन्द्र की ओर प्रत्यार्वतन करती है तो दूसरी परिधि की ओर प्रगति; एक में निःश्रेयस है तो दूसरी में अभ्युदय; एक में नितांत ऐकान्तिकता है तो दूसरी में सामाजिकता। सभ्यता को मापना संभव है, जबकि संस्कृति का माप संभव नहीं। सभ्यता को बिना परिवर्तित किए ग्रहण कर सकते हैं; लेकिन संस्कृति को बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण नहीं किया जा सकता। सभ्यता बिना प्रयास स्वयं आगे बढ़ती है; परन्तु संस्कृति के साथ ऐसा नहीं है। स्पष्ट है कि संस्कृति और सभ्यता की स्थितियाँ भिन्न–भिन्न हैं। फिर भी एक को आत्मा और दूसरी को शरीर कहा जा सकता है।

उपभोक्तावादी संस्कृति से उपजे संकट ने महिलाओं की गरिमा को बड़ी ठेस पहुँचायी है। वैश्वीकरण और बाजारी शक्तियों के प्रभाव में महिलाओं को केवल एक भोग की वस्तु समझने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। पहले महिला को समाज के लिए एक कोख समझकर उसका शोषण किया जाता था; लेकिन आज उसे एक 'नारी देह' या 'वस्तु' से अधिक महत्व नहीं दिया जाता। अश्लीलता आधुनिक जीवन का मंत्र बन गया है। महिलाएँ बाजारी शक्तियों के दबाव में अपनी देह के प्रदर्शन के लिए बाध्य हैं। यह काया प्रदर्शन विज्ञापन, प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और फिल्मी दुनिया का अभिन्न अंग बन गया है। फैशन शो नारी देह–प्रदर्शन के बिना चल ही नहीं सकते हैं। इंटरनेट के प्रभावाधीन अश्लीलता सभी सीमाओं को पार कर गई है। कुछ महिलाएँ धनोपार्जन एवं लोकप्रियता संग्रहण के लिए स्वेच्छा से इस अपसांस्कृति मार्ग पर चल रही हैं। भले ही बच्चों एवं परिवारजनों की उपेक्षा हो। वैश्वीकरण और बाजारीकरण के प्रभावाधीन भारत पश्चिमी संस्कृति से चमत्कृत हो रहा है। परिणामस्वरूप स्थापित मानव मूल्य खतरे में है। आयातित संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय पारिवारिक संबंधों और यौन संबंधों में जबर्दस्त परिवर्तन हुआ है, जो एक शुभ लक्षण नहीं है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने एक व्यक्तव्य में कहा था, ''संस्कृति का विकृत होना आत्मघाती होना है।'' निस्संदेह उत्तर संस्कृति पर पड़ रहे प्रभावों से मूल सांस्कृतिक मूल्यों और मानवीय सोच में परिवर्तन हो रहा है और एक विशेष प्रकार की अपसंस्कृति तेजी से विकसित हो रही है, जिसमें आचरण, मर्यादा और नैतिकता के लिए जगह नहीं है। संवेदनशीलता संवेदनशून्यता के ढाँचे में ढल रही है। जीवन शैली और विचारों में अस्वस्थ बदलाव हो रहे हैं। स्थानीय और पारंपरिक जीवन–पद्धति और वेशभूषा को पिछड़ा और असभ्य माना जाता है। यह एक प्रकार का सांस्कृतिक आक्रमण है, जो अपने से तकनीकी और आर्थिक रूप से कम विकसित समाज और देश को अपने ढंग से जीने का अधिकार नहीं देना चाहता। यदि वैश्वीकरण सांस्कृतिक गुलामी का नाम है तो पश्चिमीकरण पश्चिमी मूल्यों से युक्त वह मानवीय अस्तित्व है, जो अपने मूल और स्वाभाविक परिवेश से कटा हुआ है।

यह कहना भी निराधार नहीं है कि विकसित एवं विकासशील देशों के मानव समाज को एक नया खतरा लीले जा रहा है और वह है 'शहरी साम्राज्यवाद' का खतरा, जो उत्तर संस्कृति पर प्रभाव बनकर एक अलग किस्म का मानवीय संकट पैदा कर रहा है। जगजाहिर है कि भारतीय दर्शन का विकास वनों में, कंदराओं में, नदियों, झरनों के किनारों पर हुआ। इस दर्शन के आधार पर जिस जीवन–पद्धति और संस्कृति का विकास हुआ, वह ग्रामीण समाज और कृषि को आधार बनाकर फली–फूली। इस संस्कृति की विशेषता यह रही कि इसमें संयम के साथ आगे बढ़ने का विधान स्वीकार किया गया। इसमें भोग और त्याग, अंतर और बाह्यी, व्यष्टि और समष्टि के बीच एक ऐसा संबंध कायम किया गया, जो एक–दूसरे को संतुलित करता था। इसके प्रतिकूल पाश्चात्य संस्कृति का विकास शहरों में हुआ। यह संस्कृति जिंदा रहने के लिए आखेट को अनिवार्य समझती थी। उसमें एक को बचाने के लिए दूसरे का विनाश अनिवार्य मान लिया गया। परिणाम यह हुआ कि उस संस्कृति ने विनाशों के विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास किया। जिस क्षेत्र में यह संस्कृति पनपी, जब उसी क्षेत्र में उसके लिए पैर पसारने का ठौर न रहा, तब उसने आखेट के नए–नए क्षेत्र खोजे। इसी खोज के दौरान पाश्चात्य संस्कृति भारतीय प्राच्य संस्कृति के संपर्क में आई। उसका फैलाव न केवल पूर्व की ओर ही हुआ, बल्कि वह सभी दिशाओं में भागी। अधिकांश संस्कृतियाँ जो उसकी चपेट में आयीं, वे नष्ट हो गयीं। अफ्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों की उन प्राचीन संस्कृतियों के अब केवल नाम बाकी हैं। एशिया की सम्पन्न संस्कृति को भी उसने रौंदा। लेकिन इस विनाश लीला में वह पूरी सफल नहीं हुई।

इधर मानवीय अंतर्द्वन्द्वका संकट बड़ल प्रबलता से उभरा है। आज पश्चिमी संस्कृति अपने विकास के जिस दौर में है, उसमें उसका अंतर्द्वन्द्वबहुत उग्र हो गया है, जिसके प्रभाव से उत्तर संस्कृति अछूती नहीं रह गई है। अब पाश्चात्य दर्शन और जीवन शैली उन सवालों का जवाब दे सकने में असमर्थ है, जो उसके अंतर्द्वन्द्वके दौरान उभरे। उसने जितना लंबा रास्ता तय किया, उसके बाद व्यक्ति और समाज को शीलता और संतोष प्रदा करने के बजाय वह अशांति और असंतोष की ऐसी आग जलाती जा रही है, जिसमें जलकर भस्म हो जाने के भय में व्यक्ति भयभीत है। आत्मविनाश की जो विशाल शहरी शतमंजिली प्रयोगशालाएँ उसने खड़ी कर दी हैं, वे उस संस्कृति को ही नहीं, बल्कि उन सभी संस्कृतियों को नष्ट कर देना चाहती हैं, जो इस ग्रह के विभिन्न कोनों में अपने–अपने ढंग से फूलती–फलती रहना चाहती है।

यह सच भी छनकर सामने आ गया है कि जिस अमेरिकी समाज एवं संस्कृति ने दूसरे की संस्कृति को प्रभावित करने के प्रयास किये, वह स्वयं एक बड़े द्वद्वका शिकार है। यौन शिक्षा, मुक्त यौन संबंध, वर्जित चीजों का सेवन एवं अश्लील प्रदर्शनों के परिणामों एवं दुष्परिणामों को झेलकर आज वही अमेरिका प्रकृति, शाकाहारी भोजन, स्वास्थ्य सचेतनता, नैतिकता एवं सादगी भरे जीवन की ओर लौट रहा है। भारतीय संस्कृति के महाजल में जाने कितनी बाहरी संस्कृतियों की जलधाराएँ आकर गिरती रहीं; लेकिन वे सभी इस विशाल सांस्कृतिक समुद्र में समा गयीं। भारतीय संस्कृति का तना एक है, जड़ें भी भारतीय मिट्टी में है। इसकी शाखाओं पर बैठनेवाले प्रवासी सांस्कृतिक पक्षी रैनबसेरा तो कर सकते हैं; लेकिन इसे अपीन संपदा नहीं बना सकते।

इसे सुखद ही कहा जाएगा कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावाधीन उग्र होते संकट को देखकर इसके अनुयायी अब स्वीकार करने लगे हैं कि असीम आर्थिक और भौतिक विकास एक थोथी कल्पना है। नीत्शे की तर्ज पर एक अमेरिकी विद्वान ने अपनी घोषणा में 'डेथ ऑफ मनी' अर्थात् 'धन की मृत्यु' को व्यंजित किया है। लोगों को महात्मा बुद्ध, महावीर और गाँधीजी याद आने लगे हैं, मोह को त्यागकर संयम, सादगी और संतुलन पर वे विचार करने लगे हैं। उत्तर संस्कृति पर पड़े प्रभावों और इनसे उपजे खतरों ने भारत के सामने भी पैनी चुनौतियाँ और गूढ़ प्रश्न उपस्थित किए हैं। हम संकट के उभरे प्रश्नों का उत्तर तब तक प्राप्त नहीं कर सकते, जबतक हम स्वयं उत्तर में रहना आरंभ नहीं करते। हमें तबतक प्रश्नों के तनाव और टकरावपूर्ण जिंदगी जीने की बाध्यता रहेगी, जबतक हम प्रश्नों का उत्तर और संकट का समाधान खोज नहीं पाते। इस ग्रह की माँग भी है कि हम सब संयम और सीमा में रहना स्वीकार करें और सभी को जिंदा रहने और अपनी इच्छानुसार जीने का अधिकार दें। यह मानने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि 21 वीं सदी संस्कृतियों के संघर्ष की सदी है। संयम और दिखावे पर आधारित संस्कृतियों में जमकर आपसी टकराव होगा। लेकिन यह भी सत्य है कि इस नई सदी में संयम और सादगी पर आधारित संस्कृति की ही जीत होगी। फिर भी पाश्चात्य प्रभावों के खतरों, अंतर्द्वन्द्वों, अमर्यादित प्रदर्शनों और संबंधों की कृत्रिमताओं के प्रति सचेत रहने और अपने चिंतन को सही रखने में बेहद जरूरत है।

आलेख

बेनीपुरी साहित्य में अभिव्यक्त साम्प्रदायिक सद्भाव

पूनम कुमारी
बाघा,वार्ड नं. 24
सुहृदयनगर, बेगुसराय

बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के साथ ही गाँधीवाद का भी बेनीपुरी के सोच पर गहरा प्रभाव था। यह सत्य है कि भेदभाव की अनुभूति मिटाने पर ही नये समाज की स्थापना हो सकती है। संसार में विभिन्न धर्म हैं; किन्तु इन धर्मों के मूल में कल्याणकारक भावनाएँ निहित हैं। विश्व में मानवधर्म ही सर्वोपरि है, जिसपर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व आधारित हैं–'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।'

आजादी के बाद देश में होनेवाले साम्प्रदायिक दंगों के संदर्भ में बेनीपुरी ने साम्प्रदायिक सद्भाव को अपने रेखाचित्र में ऐसी सहज मार्मिकता के साथ उकेरा है कि ये रचनाएँ अपनी मानवीयता के कारण अविस्मरणीय बन गई हैं। राजनीतिज्ञों ने अपनी सत्ता–लोलुपता की पूर्ति के लिए दोनों मजहबों को लड़ाया है; लेकिन दोनों ही संप्रदाय की सामान्य जनता के हृदय में आज भी वही भाईचारा और मानवीय रिश्ते कायम हैं। रजिया का यह अनुभव हमारे लिए, दोनों संप्रदायों के विवेकशील नागरिकों के लिए एक गंभीर चुनौती ही नहीं, एक संदेश भी है–''जब हसन पान लाने चला गया, रजिया ने बताया, किस तरह दुनिया बदल गयी है। अब तो ऐसे भी गाँव हैं, जहाँ के हिन्दू–मुसलमानों के हाथ से सौदे भी नहीं खरीदते। अब हिन्दू चूड़ीहारिनें हैं, हिन्दू दर्जी है। इसलिए रजिया ऐसे खानदानी पेशेवालों को बड़ी दिक्कत हो गयी है। किन्तु रजिया ने यह खुशखबरी सुनाई, मेरे गाँव में यह पागलपन नहीं और मेरी रानी (बेनीपुरीजी की धर्मपत्नी) तो सिवा रजिया के किसी दूसरे के हाथ से चूड़ियाँ लेती ही नहीं।[1]

सांप्रदायिक घृणा के गहन अंधकार में रजिया ही नहीं, सुभान खाँ भी बंधुत्व और प्रेम की आशा के प्रदीप हैं। सुभान खाँ मेहनत से पैसे कमाना तथा खुदा के नाम पर कुछ जमाकर खर्च करना अपना धर्म मानते थे। ईश्वर की अनुकम्पा से उनका घर स्वजन–परिजन से भरा–पूरा था। उन्होंने स्वेच्छा से एक मस्जिद बनवाई थी। इनके मन में हिन्दुओं और मुसलमानों में कोई भेदभाव नहीं था। उनका जीवन हिन्दू और मुसलमान–दोनों के लिए था। उनका विचार था कि इंसान–इंसान में अंतर माननेवाला व्यक्ति खुदा का वंशज नहीं हो सकता। सुभान खाँ की चारित्रिक विशेषता को स्पष्ट करते हुए लेखक ने एक घटना की चर्चा की है–एक बार मुसलमानों ने मस्जिद में गो–हत्या की योजना बनाई। हिन्दुओं में इस सूचना से उत्तेजना हुई। स्थिति गंभीर हो गयी। मुसलमान, सुभान खाँ के यहाँ गये। उन्होंने इस योजना के विरुद्ध अपनी भावना व्यक्त की। प्रतिरोध के रहते हुए भी सुभान खाँ के प्रयास से कोई अप्रिय घटना घटित नहीं हुई।

गाय की कुर्बानी देनेवाले मुसलमानों के सामने चट्टान बनकर खड़े सुभान खाँ धर्मदूत ही नहीं देवदूत बन जाते हैं–''मैं मुसलमान की हैसियत से कहता हूँ, मैं गाय की कुर्बानी न होने दूँगा, न होने दूँगा। पहले मेरी कुर्बानी हो लेगी, तब गाय की कुर्बानी हो सकेगी।2 स्पष्ट है कि धर्म के मर्म को समझनेवाले सच्चे मुसलमान और हिन्दू हिंसा से खुदा या ईश्वर को प्रसन्न करने की क्रूरता नहीं करते। सुभान खाँ–जैसी रचना विरल है, जो अंधकार के सागर में आलोक–स्तंभ के समान मार्गदर्शन कर सके।

'सुभान खाँ' एक खुदापरस्त, दीन को माननेवाला, हिन्दू–मुस्लिम भेदभाव से दूर सच्चा गरीब मुसलमान है। पेशा राज का, पर दिल खुदा का और दीन को निछावर। गरीब की यह एक मुराद थी–हज करना और मस्जिद बनाना। मस्जिद बनवाकर रहा यह बूढ़ा। पर उस मस्जिद में कुर्बाना के सवाल पर उसने अपने को कुरबान कर देना तय किया, इसलिए कि हिन्दू–मुसलमान के बीच दंगा और रक्तपात न हो। यह वह जमाना था, जब हिन्दू– मुसलमानों के बीच पृथक निर्वाचन का विषबीज नहीं बोया गया था और हिन्दू की होली और मुसलमानों के मुहर्रम में दोनों जातियों के बड़े–बूढ़े, बच्चे–जवान दिल खोलकर भाग लेते थे। पर देखते–देखते ही हिन्दु–मुसलमानों का संबंध कटु हो गया।

बेनीपुरी ने लिखा है–जमाना बदला। मैं अब शहरों में ही ज्यादातर रहता। और शहर आए दिन हिन्दू–मुस्लिम दंगों के अखाड़े बन जाते थे। हाँ, आये दिन! देखिएगा, एक ही सड़क पर हिन्दू–मुसलमान चल रहे हैं, एक ही दुकान पर सौदे खरीद रहे हैं, एक ही सवारियों पर जानू–ब–जानू आ–जा रहे हैं, एक ही स्कूल में पढ़ रहे हैं, एक ही दफ्तर में काम कर रहे हैं कि अचानक सबके सिर पर शैतान सवार हो गया। हल्ला, भगदड़, मारपीट, खून–खराबी, आगलगी–सारी खुराफातों की छूट। न घर महफूज, न शरीर, न इज्जत। प्रेम, भाईचारे और सहायता के स्थान पर घृणा, विरोध और नृशंसा हत्या का उल्लंग–नृत्य।3

सुभान खाँ ने मस्जिद में गाय की कुर्बानी का विरोध किया। तनतने की हालत में मस्जिद में आए। नमाज पढ़ी। फिर तसबीह लेकर मस्जिद के दरवाजे की चौखट पर मेरी लाश पर ही कोई भीतर घुस सकता है–कहकर बैठ गये। उनकी आँखें मुँदी हैं; किन्तु आँसुओं की झड़ी उनके गाल से होती, उनकी दाढ़ी को भिंगोती अजस्र रूप से गिरती जा रही है। हाथ में तसबीह के दाने हिल रहे हैं और होंठों पर जरा–जरा जुंबिश है–नहीं तो उनका समूचा शरीर संगमरमर की मूर्ति–सा लग रहा है : निश्छल, निस्पन्द। धीरे–धीरे मस्जिद के नजदीक लोग इकट्ठे होने लगे। पहले मुसलमान, फिर हिन्दू भी। अब गाय की कुर्बानी का सवाल दादा की आँसुओं की धारा में भँसकर न जाने कहाँ चला गया था। वह साक्षात् देवदूत से दीख पड़ते थे। देवदूत थे। देवदूत– जिसके रोम–रोम से प्रेम और भाईचारे का संदेश निकलकर वायुमंडल को व्याप्त कर रहा था।4 इस तरह इनकी सच्चाई के आगे सबको झुकना पड़ा।

आज जब धर्म और सम्प्रदाय राजनीति के खिलाड़ियों के शतरंज की प्रमुख मोहरें हैं, ऐसे में बेनीपुरी द्वारा वर्णित मित्र एवं वकीलों के संस्मरण गर्म रात में ताजा ठंढी हवा के झोंके के समान हैं। प्रोफेसर अब्दुल बारी की चर्चा में उनके भाव के साथ भाषा की बानगी देखते बनती है–''आज बारी साहब हममें नहीं हैं। किन्तु क्या बिहार अपने इस सपूत को कभी भूल सकेगा?प्रो. अब्दुल बारी वैसे मुसलमानों में से थे, जिनका राष्ट्रप्रेम उनके धर्म के भी ऊपर था। पठानी खून था उनमें, पाँच हाथ के लंबे–तगड़े जहाँ खड़े होते, सबसे ऊँचा उनका सिर होता। शाहाबाद के रहनेवाले थे–शेरशाह और कुँवर सिंह की बहादुरी के प्रतीक। उनके ऐसा

मजदूर नेता भी बिहार ने पैदा नहीं किया।''5 यहाँ बारी साहब के विषय में चर्चा के साथ अनायास ही उनके सुभान खाँ की स्मृति प्रत्यक्ष हो जाती है। उनकी चर्चा में भी ऐसा ही श्रद्धाभाव है।

साम्प्रदायिकता के हश्र पर बेनीपुरी ने 'पत्रकार जीवन के पैंतीस वर्ष' में स्पष्ट लिखा है–''मैंने देखा था, राजनीति को मजहब और जाति–पाँति किसी तरह भ्रष्ट रखते हैं। बेचारे गाँधी जी को इक्कीस दिन तक अनशन करना पड़ा था तो भी हिन्दू– मुस्लिम दंगे शांत नहीं हो सके थे। अपने बिहार में देखा और जो लोग अंग्रेजों से लड़ने में बड़े–से–बड़ा बलिदान करने को प्रस्तुत थे, वे भी अपने दिमाग से जाति–पाँति की कलुषित विचारधारा को अलग नहीं कर सके थे। सभाओं में राष्ट्रीय गुणगान करना और घरों में जातीयता के दाँव–पेंच खेलना मुझे इससे बढ़कर गंदा कुछ और नहीं मालूम होता था।

यही नहीं, मैंने यह भी देखा कि यह मजहब, जाति–पाँति का नारा सरकारी पदों के लिए या कौंसिलों ओर बोर्डों की सीटों के लिए ही बुलंद किया जाता है। अतः मन–ही–मन यह भी तय कर लिया, इनसे दूर–दूर ही रहने की कोशिश करूँगा।5

साम्प्रदायिकता के कारण देशभक्ति की भावना के मंद पड़ने, फिर प्रज्वलित होने का जिक्र बेनीपुरी ने 'राजनीति के तूफान में किया है–जातीय कलह के साथ ही साम्प्रदायिक कलह भी जोरों पर था, हिन्दू–मुसलमानों के खुलकर छुरे चल रहे थे। देश में कितनी ही जगह पर भीषण दंगे हो रहे थे। कोहाट के दंगे के कारण गाँधीजी ने उनतीस दिनों का अनशन किया था। थोड़े दिनों तक लगा दोनों का दिल फिर मिले। लेकिन देश का दुर्भाग्य इतने सस्ते छोड़नेवाला न था। मर्ज बढ़ता गया ज्यों–ज्यों दवा की। बिहार में इस साम्प्रदायिक कलह के दुष्परिणामों में एक था–मौलवी शफी साहब का कांग्रेस से अलग हो जाना। शफी साहब का चुंबकीय व्यक्तित्व था। अपने सहकर्मियों को बहुत ही प्यार करते, उनसे भाईचारे का व्यवहार रखते। उनके त्याग का भी क्या कहना?उनके घर में कई शाम तक मकई की रोटियों पर ही गुजारा करने की बात हम जानते थे। उनके मन में सांप्रदायिकता का लेश भी नहीं था, लेकिन इस प्रतिक्रिया की लहर में उनके ऐसे त्यागी–तपस्वी आदमी के पैर भी स्थिर नहीं रह सके। कांग्रेस से अलग होकर उन्होंने कांग्रेस के खिलाफ जेहाद शुरू किया। मुस्लिम कांग्रेस नाम की संस्था कायम की और सरकार की ओर से मुसलमानों के रहनुमा मुकर्रर किए जाने पर राउंड टेबुल कान्फ्रेंस में भी गए। मौलवी शफी साहब का कांग्रेस से हटने में हिन्दू कांग्रेस नेताओं की सांप्रदायिकता और संकुचित मनोवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ था।

विशुद्ध भाव से देश–सेवा करने की भावना लोगों में दिन–दिन कम हो रही थी। देशभक्ति का निर्धूम दीया बहुत ही कम नौजवानों के दिल में जल रहा था। चारों ओर धुँआ–धुँआ था, जिसमें आदमी को साँस लेना भी मुश्किल हो रहा था।

''लेकिन यह धुँआ कबतक?धुएँ के बाद चिनगारियाँ चमकती ही हैं, भाटे के बाद फिर ज्वार आता ही है। प्रतिक्रिया के दौर का अंत होना ही तय था। स्वभावतः ही नौजवानों के दिलों में पहले–पहल नवजागरण की शक्ति संचरित हुई। देश में युवक आंदोलन की सरगर्मियाँ दिखाई पड़ने लगीं। 'हिन्दुस्तानी सेवादल' के नाम से कांग्रेस का स्वयंसेवक आंदोलन डॉ. हार्डिकर के नेतृत्व में विकास पाने लगा। चरखा संघ भी अब एक जीवितजागृत आंदोलन हो चला था। पहले कह चुका हूँ, कुछ नौजवानों ने चरखे की जगह बम पकड़ा। तीन–चार वर्षों में ही उनके अस्तित्व और विश्वास का पता चलने लगा। यों ही कुछ नौजवान समाजवाद की ओर आकृष्ट हो मजदूरों का क्रांतिकारी संगठन करने लगे। इन्हीं को लेकर युक्त प्रान्त में दो मुकदमे ऐसे चले, जिसमें युवकों का ध्यान तुच्छ साम्प्रदायिक भावना की सतह से उठाकर जाँनिसारों और बलिदान की ओर आकृष्ट किया। उनमें पहला था–काकोरी षड़यंत्र केस और दूसरा मेरठ षड़यंत्र केस। काकोरी केस के दो प्रधान अभियुक्त थे–रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला। कहाँ हिन्दू–मुस्लिम का झगड़ा?ये सब फिजूल चीजें हैं।7

बेनीपुरी ने आगे लिखा है–गाँधी इरविन समझौते के बाद तुरंत ही कराँची कांग्रेस हुई। दो घटनाओं ने इस कांग्रेस में बड़ी उत्तेजना और उदासी ला दी थी। एक थी भगत सिंह को फाँसी और दूसरा श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी की शहादत। गणेश जी 'प्रताप' (कानपुर) के प्रतापी संपादक थे, हिन्दी संसार में उनकी बड़ी धाक थी, युक्त प्रांत में अनेक प्रभाव का मुकाबला सिर्फ जवाहरलाल ही कर सकते थे। भगत सिंह की फाँसी के दूसरे ही दिन कानपुर में हिन्दू–मुस्लिम दंगा शुरू हो गया। इस दंगे को शांत करने के लिए विद्यार्थी जी खाली हाथ लोगों को लाख मना करने के बावजूद समझा–बुझाकर अपने मुसलमान भाइयों को मना लेने की गरज से मुसलमानों के महल्ले में गये। वहाँ गए, लेकिन लौटे नहीं। बड़ी मुश्किल से उनकी अधजली लाश मिल पाई। इस घटना से सारे देश के साथ कराँची कांग्रेस पर भी मातम ढा दिया। विद्यार्थी का बलिदान अपूर्व था, अलौकिक था। हाल ही में किसी लेखक ने लिखा है, जब–जब देश में हिन्दू–मुस्लिम दंगे की खबर मिलती है, गाँधी बार–बार गणेशशंकर जी की याद करते हैं, जबतक कुछ ऐसे लोग नहीं निकल आएँगे, जो अपनी जान को हथेली पर लेकर हँसते–हँसते अपने भाइयों के पागलपन की वेदी पर अपने को कुर्बान कर दें, तबतक शायद साम्प्रदायिकता की राक्षसी की यह रक्त–पिपासा शांत नहीं होगी।8

'बलदेव सिंह' शब्दचित्र में बेनीपुरी ने बीते दिनों की स्मृति ताजा कर सांप्रदायिक सौमनस्य के वातावरण पर ही बल दिया है, जहाँ कोई भेदभाव नहीं था–''उन दिनों हिन्दू–मुसलमानों की तनातनी नहीं थी। दोनों दूध–चीनी की तरह घुले–मिले थे। हिन्दू की होली में मुसलमानों की दाढ़ी रंगी होती, मुसलमानों के तजिये में हिन्दू के कंधे लगे होते।9

1. बेनीपुरी ग्रंथावली, भाग 1 (रजिया : माटी की मूरतें) संपादक सुरेश शर्मा, 2013, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 136
2. वही, पृ. 186
3. वही, पृ. 184–185
4. वही, पृ. 186
5. डॉ. श्रीनारायण प्रसाद सिंह : क्रांतिकारी बेनीपुरी, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी : जीवन, सृजन और चिंतन (संपादक डॉ. प्रभा बेनीपुरी, पृ. 237
6. बेनीपुरी ग्रंथावली, भाग 4 (राजनीति : मुझे याद है) संपादक सुरेश शर्मा, 2013, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 58–59
7. वही, पृ. 222–223
8. वही, पृ. 237
9. बेनीपुरी ग्रंथावली, भाग 1 (रजिया : माटी की मूरतें) संपादक सुरेश शर्मा, 2013, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 139

लघुशोध

रेणु की कहानियों में ग्राम्य–जीवन

स्मृतिशेष डॉ. छोटेलाल बहरदार
पूर्व प्राचार्य, शंकर चौक
ततमाटोली, पूर्णियाँ
मो. 8809422194

फणीश्वरनाथ रेणु ग्राम्य–जीवन के कुशल चितेरा के रूप में सर्ममान्य है। उपन्यास हो या कहानी–रेणु कभी गाँव को नहीं भूलते। यदि उनके संपूर्ण कथा साहित्य का अवलोकन करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रेणु की आत्मा गाँवों में ही बसती है।

उपन्यास के क्षेत्र में उन्हें सर्वाधिक ख्याति 'मैला आँचल' के लिए मिली और कहानी के क्षेत्र में 'तीसरी कसम' उर्फ मारे गए गुलफाम को लेकर। दोनों महान् कृतियाँ ग्रामीण परिवेश एवं ग्राम्य संस्कृति पर आधारित हैं तथा रेणु की सूक्ष्म पकड़ एवं स्वाभाविक चित्रण की परिचायिका हैं। आखिर ग्राम्य–जीवन का इतना सफल एवं स्वाभाविक चित्रण उन्होंने कैसे किया?इसका सर्वाधिक प्रमुख कारण है–उनका गाँव में पैदा होना तथा लंबे समय तक ग्राम्य–जीवन को अंगीकार करना। रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 को पूर्णियाँ जिले (अब अररिया जिला) के एक पिछड़े ग्राम हिंगना औराही में हुआ था। इसी गाँव की मिट्टी में वे पले–बढ़े। यहाँ रहकर उन्होंने ग्राम्य–जीवन को न केवल देखा, वरन् पूरी तरह जीया। चाहे कृषि कार्य हो या पशुपालन, हर तरह का ग्रामीण जीवन से युक्त कार्यों को उन्होंने स्वयं किया। गाँव के लोगों के रहन–सहन, सोच, विश्वास, धारणा, पेशा, चिंतन, सुख–दुख, आकांक्षा, भाषा एवं शिल्प–सबको उन्होंने बहुत नजदीक से देखा–परखा। वे एक तरह से ग्राम्य–जीवन एवं संस्कृति से इस प्रकार अविभाज्य रूप से जुड़ गये कि कथा लेखन के क्षेत्र में आने के साथ ही उन्होंने ग्रामीण परिवेश एवं पात्रों को अपना कथ्य बना लिया।

ग्राम्य–जीवन पर प्रेमचंद ने भी बहुत अच्छा लिखा है, लेकिन रेणु ने प्रेमचंद से हटकर एक अभिनव प्रयोग किया है। रेणु ने अद्‌भुत शिल्प का प्रयोग किया है, जिससे उनकी आँचलिकता एकदम मुखर होकर आई है। भारत यायावर ने ठीक ही लिखा है–''रेणु प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के सबसे प्रमुख कथाकार हैं। इनकी प्रमुखता का सबसे बड़ा कारण है–ग्रामीण जीवन को अपने कथा–क्षेत्र का आधार बनाते हुए भी प्रेमचंद के कथा–शिल्प से अपने को विलगाना।'' यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि ग्रामीण जीवन में प्रचलित जिस भाषा, संस्कृति एवं सोच को उन्होंने अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्ति प्रदान की है, उस सूक्ष्म स्तर तक प्रेमचंद न पहुँच सके। ग्रामीण जीवन की समस्याओं को प्रेमचंद ने बहुत प्रबल रूप में उठाया है, लेकिन जो स्वाभाविकता एवं सूक्ष्मता रेणु में है, वह प्रेमचंद में नहीं। इस अंतर को दर्शाते हुए भारत यायावर ने लिखा है–''प्रेमचंद और रेणु दोनों के पात्र निम्नवर्गीय–हरिजन, किसान, लोहार, बढ़ई, चर्मकार, कर्मकार आदि हैं। दोनों कथाकारों ने साधारण पात्रों की जीवन–कथा की रचना की है, पर दोनों के कथा–विन्यास, रचना–दृष्टि और ट्रीटमेंट में बहुत फर्क है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में इन उपेक्षित और उत्पीड़ित पात्रों का आर्थिक शोषण या उनकी सामंती और महाजनी व्यवस्था के फंदे में पड़ी हुई दारुण स्थिति का चित्रण है, जबकि रेणु ने इन सताए हुए शोषित पात्रों की सांस्कृतिक सम्पन्नता, मन की कोमलता और रागात्मकता तथा कलाकारोचित प्रतिभा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।'' रेणु ने ग्रामीण जीवन जी रहे पात्रों की समस्याओं का भी चित्रण किया है और उनके उन्मूलन की भी इच्छा प्रकट की है। उन्होंने स्वयं लिखा है–''मैंने जमीन, भूमिहीनों और खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को लेकर बातें कीं। जातिवाद, भाई–भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा ही नहीं किया था, इसे समूल नष्ट करने की आवश्यकता पर भी बल दिया है।'' आगे वे फिर लिखते हैं–''अपनी अन्य कहानियों में मैंने निम्नवर्ग, पिछड़े लोगों, भूमिहीनों, खेतिहर मजदूरों तथा समाज के ऐसे लोगों का चित्रण किया है, जिन्हें 'हरिजन' कहकर गौरवान्वित तो कर दिया गया, किन्तु वे आजादी के बाद भी बे–जमीन, पिछड़े और अछूत एवं आक्रांत होते रहे। शोषण तो कभी बंद नहीं हुआ, बल्कि सारी विकृतियाँ दिन दूनी रात चौगुनी होकर समाज को ग्रसती रहीं।'' शायद इसलिए अज्ञेय ने उन्हें 'धरती का धनी' कहा और निर्मल वर्मा ने लिखा–''बिहार के छोटे भूखंड की हथेली पर उन्होंने समूचे उत्तरी भारत के किसान की नियति रेखा को उजागर किया।'' प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने प्रेमचंद से उन्हें विलग करते हुए दर्शाया–''निस्संदेह इन (विभिन्न अंचलों या जनपदों के लोकजीवन को लेकर लिखी गई) कहानियों में ताजगी है और प्रेमचंद की गाँव पर लिखी गई कहानियों से एक हद तक नवीनता भी।''

रेणु ने अपने संपूर्ण जीवनकाल में लगभग तिरेसठ कहानियाँ लिखीं। इनकी सारी कहानियाँ ग्राम्य–जीवन पर आधारित नहीं हैं। रेणु का बचपन गाँवों में बीता, पर बाद में वे पटना में ही मुख्य रूप से रहने लगे। इस प्रकार उनका संपर्क नागरी जीवन से हुआ और उन्होंने नागरी जीवन की त्रासदी को भी नजदीक से समझा। गाँव की अनपढ़, अशिक्षित तथा असंस्कृत जिंदगी से सर्वथा भिन्न शहरी जीवन को भी अनेक कहानियों में दिखाया। फिर भी यह तथ्य है कि उनकी अधिकांश और महत्वपूर्ण कहानियाँ मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन से ही जुड़ी हैं।

रेणु ने ग्राम्य–जीवन को किस तरह चित्रित किया है, इस प्रश्न के उत्तर में मुख्य रूप से निम्नांकित बातें ध्यातव्य हैं– ग्रामीण परिवेश का चित्रात्मक वर्णन, ग्राम्य संस्कृति का बेबाक चित्रण, ग्रामीणों के रहन–सहन, सोच, धारणा, अंधविश्वास, धर्म– कर्म, राजनीतिक स्थिति, आर्थिक स्थिति ग्रामीणों के बीच प्रचलित भाषा, मुहावरा, अभिव्यक्ति का ढंग, गाँव की बदलती स्थिति–इन सबका बहुत स्वाभाविक तथा मार्मिक वर्णन।

गाँवों की दुर्दशा के मुख्यतः दो कारण हैं–गरीबी और अशिक्षा। अधिकांश ग्रामीण परंपरागत कृषिकार्य से जुड़े हैं, लेकिन उनके पास जमीन नहीं है। लंबे समय से वे जमींदार और साहूकार के शोषण के चक्र में पीसे जाते रहे हैं। इसलिए अधिकांश ग्रामीण या तो लघु किसान हैं या मजदूर। कुछ लोगों को कृषिकार्य की विफलता ने जीविकोपार्जन के लिए 'परदेश' जाने के लिए विवश किया है। अशिक्षा ने उन्हें अनेक अंधविश्वासों, टोटकों, देवी–देवताओं, पूजा–व्रतों, तंत्र–मंत्र आदि की ओर ढकेला है। अनेक कुप्रथाओं के शिकंजे में वे आज भी फँसे हैं। उनके सोचने का दायरा आज भी संकीर्ण है। गाँव के लोगों में इन कारणों से कई तरह की मानवीय कमजोरियाँ भी विद्यमान

हैं। एक ओर लोककला एवं लोकगीत का सुवास है, तो दूसरी ओर 'सेक्स' का अंतरंग खेल भी। रेणु ने इन सभी चीजों को बहुत सूक्ष्मता से देखा–परखा है और पूरे ग्राम्य–जीवन को उसकी समग्रता में विस्तार से चित्रित किया है। चाहे ग्रामीणों का रहन–सहन हो या पेशा हो या सोच हो–कोई ऐसा पक्ष नहीं है, जिसे रेणु ने अपनी कहानियों में दिखाया नहीं है।

रेणु ने ग्रामीण परिवेश को इतना जीवन्तता से चित्रित किया है कि वर्णन को पढ़ते ही एक–एक दृश्य मानसिक बिम्ब के रूप में उभर आता है और हम गाँव के निकट पहुँच जाते हैं। उन्होंने 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' कहानी में किसी गाँव के भादों की अँधेरी रात का वर्णन करते हुए लिखा है–''भादों की रात। तुरंत बारिस बंद हुई है। मेढक टरटरा रहे हैं। साँप ने बेंग को पकड़ा है, बेंग की दर्द भरी पुकार पर दिल में दया आने के बदले, भय मालूम होता है। आसपास की झाड़ियों में फैला हुआ अंधकार और भी खौफनाक हो जाता है।'' गाँव में झाड़ियों के कारण चारों ओर अनेक तरह के सर्प आदि विषैले जीव रहते हैं। वर्षा ऋतु में मेढकों का टर्राना स्वाभाविक है। जब कोई साँप किसी मेढक को पकड़ लेता है तो उसके मुँह से निकलनेवाली वेदनायुक्त आवाज किसी को भी भयभीत कर देती है। इस दृश्य को वही देख–समझ सकता है, जिसने कभी गाँव में रहकर उसे देखा है। शहर में ऐसे दृश्य सुलभ नहीं। रेणु की यही विशेषता है कि वे परिवेश को पूरी समग्रता से पकड़ते हैं। कभी गाँव में एक खास तरह की सुगंध बिखरी रहती है, जब धान के खेतों में लहराते धान फूलों से लदे रहते हैं। रेणी ने 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी में इसे दर्शाया है–''नदी के किनारे धान–खेतों में फूले हुए धान के पौधों की पवनिया गंध आती है। पर्व पावन के दिन गाँव में ऐसी ही सुगंध फैली रहती है।'' इसी गंध को उन्होंने 'लाल पान की बेगम' कहानी में भी दिखाया है–''चाँदनी कार्तिक की।.. खेतों से धान से झरत फूलों की गंध आती है। बाँस की झाड़ी में कहीं दुद्धी की लता फूली है।'' कुछ गाँवों के आसपास पहाड़ और जंगल भी होते हैं। रेणु ने एक ऐसे ही स्थल का वर्णन 'तीन बिन्दियाँ' कहानी में किया है–''तराई के जंगलों के बीच थोड़ी–सी खुली जगत्, जिसको 'ग्लेड' कहते हैं अंग्रेजी में। चाँदनी जहाँ लंबे–लंबे शाल–वृक्षों की फुनगियों पर टँगती नहीं रहती, श्यामल–मसृण घास पर बिछ जाती है। पास ही बहती हुई पहाड़ी नदी, जो कलकल–कलकल नहीं करतीं। हवा फुसफुसा कर बात करती है। चाँदनी चैत की। प्रकाश में एक ठूँठ विस्मित खड़ा है।'' यहाँ प्रकृति सजीव प्राणी बन गई है और रेणु उसके एक–एक कार्यकलाप को बहुत सूक्ष्मता से देख रहे हैं। प्रकृति के कार्यकलाप ही नहीं, रेणु प्रकृति के बीच रहनेवाले लोगों के कार्यकलाप को भी उसी बारीकी से देखते हैं और महसूस करते हैं। इसी कहानी में गाँवों में दिन–रात श्रमरत नारियों के विभिन्न कार्यों को उन्होंने इस तरह दिखाया है–''धान कूटती हुई, चक्की चलाती हुई, ढोर चराती हुई, सुंदरियों की देह की नमकीन गंध, धान के खेतों की, पोखर और घाट पर पानी भरती हुई सुंदरियों के आँचल की गंध...सुगंध किसी वनफूल की सुरभिमय गीतों की गायिका ने मेरी घ्राणशक्ति तेज कर दी है।' रेणु ने ग्रामीण परिवेश की सुगंध को केवल नाक से ही महसूस नहीं किया है, वरन् आँख से भी देखा है। रेलगाड़ी से गुजरते समय जब अपना गाँव दिखाई पड़ता है, तो एक–एक दृश्य आँख के सामने कौंध जाता है। 'तीर्थोदक' कहानी में इसी दृश्य को उन्होंने इस प्रकार दिखाया है–''भागते हुए बाग–बगीचे, ताड़ का पेड़, पुराना शिवाला, बजरंगी बाबू के दालान का हिस्सा।' वर्षा ऋतु के आते ही गाँव का वातावरण बदल जाता है। रेणु ने इसी को चित्रित किया है। 'अच्छे आदमी' कहानी में–..रात से ही अदरा लछत्तर (आर्द्रा नक्षत्र) चढ़ा है। सूरज उगा है या नहीं, पता नहीं चलता। बादल हल्की पुरबैया के झोंके पर उमड़े आ रहे हैं। दूर फुहिया वर्षा में पेड़ की पाँतियाँ छिप रही हैं। सामने खुला हुआ विशाल मैदान। हरियाली पर बिछी हुई पिच रोड। नई सड़क।'' यदि गाँव के चित्रण के सिलसिले में वहाँ अधिकता से पाये जानेवाले पशु–पक्षी का वर्णन न हो तो दृश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। रेणु की दृष्टि इन चीजों पर भी पड़ी है। उन्होंने 'रोमांसशून्य प्रेमकथा की एक भूमिका' कहानी में एक पक्षी के रूप–गुण का वर्णन इस प्रकार किया है–'आज वह हल्दी चिरैया फिर आई है। बरसात भर यह रोज इसी तरह समय–असमय आएगी और किसी पेड़ की डाली पर भींगती हुई या पंख सुखाती हुई सुरीले स्वर में एक लंबी पंक्ति दुहराएगी। संस्कृत श्लोक की कड़ी–काकस्य परिवेदना! स्पष्ट हू–ब–हू, पता नहीं क्या बोलती है! पवित्रा को अचरज होता है, यहाँ के लोग इस 'पाखी' का नाम नहीं जानते।'' जाड़े के प्रारंभ में लोग तरह–तरह का कृषिकार्य करते रहते हैं, उस समय के परिवेश का चित्रण करते हुए रेणु ने 'विघटन के क्षण' कहानी में लिखा है। 'एक चदरी भर सरदी पड़ गई। अगहनी धान के खेतों में अब हल्की लाली दौड़ गयी है अर्थात् अब दोनों में दूध सूख रहा है। आलू के पौधों में पत्तियाँ लग गयी हैं। सुबह–सुबह गोभी की सिंचाई कर रहे हैं सभी।'' रेणु कहीं भी रहे, उन्हें गाँव सदा खींचता रहा है। इसी कहानी में आगे वे गाँव के इस दृश्य को इस प्रकार रूपायित किया है–''वह...दूर से ही दिखलाई पड़ता है, गाँव का बूढ़ा इमली का पेड़। वह रहा बाबा जीन–पीर का थान...वह रही चुरमुनियाँ रानीडीह की ऊँची जमीन पर.. लाल माटीवाले खेत में... अक्षर–सिंदूर बिखेरे हुए हैं। हजारों गोरैया–मैना सूरज की पहली किरण फूटने के पहले ही खेत के बीच कचर–पचर कर रही है।'' 'बीमारों की दुनिया में' कहानी में रेणु ने जो कुछ कहा है, वह उसका आत्मकथ्य प्रतीत होता है–''और मेरा जन्म किसी 'काफी हाउस' के इर्द–गिर्द नहीं, बल्कि खलिहान के पास ही एक झोंपड़ी में हुआ है, जहाँ जन्म से लेकर मौत तक लड़ाइयाँ–ही–लड़ाइयाँ लड़नी पड़ती हैं...हमारी जिंदगी हिन्दुस्तान की जिंदगी है। हिन्दुस्तान से मेरा मतलब है असंख्य गरीब, मजदूर, किसानों के हिन्दुस्तान से। हम अपनी मिट्टी को पहचानते हैं, हम अपने लोगों को जानते हैं।'' मिट्टी की यही पहचान उन्हें कभी शहरी नहीं होने दिया, मिट्टी का मोह सदा गाँव की ओर खींचता रहा। 'एक कहानी का सुपात्र' कहानी का छोटेलाल एक बार कहता है–''जी करता है, उड़कर चला जाऊँ।'' कहाँ पूछे जाने पर वह उत्तर देता है–''और कहाँ? गाँव।'' वस्तुतः रेणु भी पटना में रहकर सदा गाँव की ओर भागते रहे; क्योंकि ग्रामीण परिवेश ने उनपर जादू कर रखा था। यही कारण है कि जहाँ भी अवसर मिला, उन्होंने कहानियों में ग्रामीण परिवेश को उसके सही रूप में चित्रित किया है।

गाँव के लोगों का जीवन–स्तर सामान्यतया निम्न होता है। वे कैसे घरों में रहते हैं, क्या खाते हैं, उनके जीवन–निर्वाह का स्रोत क्या होता है–इन बातों का खुलासा रेणु ने अपने अनेक कहानियों में किया है। उन्होंने 'रखवाला' कहानी में एक दीन–हीन परिवार के निवास–स्थल के बारे में लिखा है–''छोटा–सा झोंपड़ा पहाड़ी की ओट से छनकर आती हुई सूर्य की किरणों में छोटा–सा सरकंडे का झोंपड़ा सोने के झोंपड़े की तरह चमक रहा था। झोंपड़े के इर्द–गिर्द केले, नारंगी, नासपाती के दरख्त, फल–फूल और हरे–पीले पत्तों से लदे हुए। झोंपड़े के सामने एक अमरूद का पेड़, खूँटे से बँधा एक बछड़ा था। पेड़ के नीचे बैठी वह, जंगली बेंतों और बाँस की पतली–पतली तीलियों से डोको बना रही थी।'' इसी प्रकार 'इतिहास, मजहब और आदमी' कहानी में उन्होंने एक अत्यन्त ही गरीब परिवार के घर की स्थिति को इस प्रकार दिखाया है–''उसने झोंपड़ी में एक बार निगाह दौड़ाई–चारों ओर गंदगी फैली हुई थी। कपड़ों के नाम पर दो–चार चौथड़े इधर– उधर फेंके हुए थे। तीन–चार मिट्टी के पुराने बर्तन–सर्दी, सिल, नमी और बदबू।'' यही दारिद्र्य से युक्त जिंदगी आम ग्रामीण लोगों की रही है,

जिसे रेणु ने अनेक कहानियों में दिखाया है। गाँवों में बाल बढ़ाना भी फैशन माना जाता है, जो लोगों को स्वीकार्य नहीं। 'टौन्टी नैन का खेल' कहानी में उन्होंने लिखा है–''सेमापुरिया मेला की तरह माथा मुड़ाकर रहो तो ये बहुत खुश रहेंगे। जरा–सा थोबड़ा केश बढ़ाकर, थोड़ी–सी बगली छँटाकर सिर में तेल डाते ही इनकी आँखों में लाल मिर्च की बुकनी पड़ जाती है। लुच्चा हो गया, आवारा है वगैरह। सुमरचन्ना बाबड़ी नहीं रखता है, डोमन लौआ से जब वह केश छँटाता है तो गाँव के नौजवानों को एक सप्ताह के लिए हँसने का मसाला मिल जाता है।... हल जोत दिया है, अब खेसाड़ी बोना बाकी है।'' इसके अलावा गाँव के निवासियों में अनेक बुरी आदतें भी घर कर जाती हैं। बीड़ी–सिगरेट पीना भी आम है। इसी कहानी में वे लिखते हैं–''रे सुमरचन्ना! इधर आओ इधर! कहाँ से आ रहे हो? बीड़ी पिलाते जाओ।'' आगे वे लिखते हैं–''सुमरचन्ना को घेरकर सभी बैठे हुए हैं। बीच में मोटरमार सिगरेट का पाकिट खुला हुआ है। ताश की गड्डी पड़ी हुई है। सभी सिगरेट पी रहे हैं।'' गाँव के लोगों का मुख्य पेशा खेती है, लेकिन कुछ लोग अन्य तरह से भी पेट पालते हैं। 'रसप्रिया' कहानी में उन्होंने पँचकौड़ी मिरदंगिया के बारे में लिखा है–''पंद्रह साल से वह गले में मृदंग लटकाकर गाँव–गाँव घूमता है, भीख माँगता है। दाहिने हाथ की टेढ़ी ऊँगली मृदंग पर बैठती ही नहीं है, मृदंग क्या बजाएगा।'' इस प्रकार कुछ लोग गाड़ीवानी कर गुजारा करते हैं। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी का नायक हीरामन भी यही करता है–'पिछले बीस साल से गाड़ी हाँकता है हीरामन। बैलगाड़ी। सीमा के उस पार, मोरंग राज नेपाल से धान और लकड़ी ढो चुका है। कंट्रोल के जमाने में चोरबाजारी का माल इस पार से उस पार पहुँचाया है।'' केवल हीरामन ही नहीं, इस कहानी का धुन्नीराम, लहसनवाँ, पलटदास, लालमोहर आदि भी गाड़ीवानी ही करते हैं।'' उनके खान–पान के बारे में रेणु ने लिखा है–''बासा पर भात चढ़ा हुआ है। हें–हें–हें हमलोग एकहि गाँव के हैं। गौवाँ–गरामिन के रहते होटिल और हलवाई के यहाँ खायेगा हीरामन।'' गाँव के बहुत गरीब परिवार के लिए रोज भात खाना भी संभव नहीं। 'लाल पान की बेगम– कहानी में बिरजू की माँ शकरकंद उबालकर बैठी मन–ही–मन कुढ़ रही थी अपने आँगन में। जब उसकी बेटी चंपिया दुकान से छोवा गुड़ा लेकर आती है तो उसका छोटा भाई बिरजू उसे भी खाने के लिए बेचैन है–''धूल झाड़ते हुए बरतन से टपकते गुड़ को ललचाई निगाह से देखने लगा था। दीदी के साथ वह भी दुकान जाता तो दीदी उसे भी गुड़ चटाती जरूर। वह शकरकंद के लोभ में रहा।'' ग्रामीणों के लिए जाड़े की रात बहुत कष्टकर होती है; क्योंकि ओढ़ने के लिए कुछ खास होता नहीं। रेणु ने इसी कहानी में लिखा है–''बिरजू ने बहन की कथरी में हिस्सा बाँटते हुए चुक्की–मुक्की लगाई। जाड़े के समय इस तरह घुटने पर ठुड्डी रखकर चुक्की–मुक्की लगाना सीख चुका है।'' बिरजू की माँ की यह आशा भी अधूरी रह गई कि कभी उसे खाने को जिलेबी मिली या कभी सौ रुपये का नोट देखती। वह कहती है–''कोल्हू के बैल की तरह खटकर सारी उम्र काट दी इसके यहाँ, कभी एक पैसे की जिलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने। पाट का दाम भगत के यहाँ से लेकर बाहर–ही–बाहर बैल हट्टा चले गए। बिरजू की माँ को एक बार नमरी लोट देखने भी नहीं दिया आँख से।'' गाँव के पुरुष यदि बीड़ी–सिगरेट पीते हैं तो औरतें हुक्के की शौकीन होती हैं। रेणु जी ने इसी कहानी में लिखा है–''फुआ को तंबाकू मिल जाए, तो रात भर क्या, पाँच रात बैठकर जाग सकती है। फुआ ने अँधेरे में टटोलकर तंबाकू का अंदाज किया...ओ–हो! हाथ खोलकर तंबाकू रखा है बिरजू की माँ ने।'' पहरावे के बारे में भी इस कहानी में चित्रण है–''चंपिया ने छींट की साड़ी पहनी और बिरजू बटन के अभाव में पैंट पर पटसन की डोरी बाँधने लगा।

रेणु ने 'ठेस' कहानी में गाँव के लोगों के खान–पान का अच्छा चित्रण किया है। सिरचन एक ब्राह्मण–पुत्र से कहता है–''तुम्हारी भाभी नाखून से खोंटकर तरकारी परोसती है और इमली का रस डालकर कढ़ी तो हमें कहार–कुम्हारों की घरवाली बनाती है। तुम्हारी भाभी ने कहाँ से बनाई। सिरचन को खाने में क्या पसंद है, इसे दर्शाते हुए माँ कहती है–''आओ सिरचन! आज नेनू मथ रही थी तो तुम्हारी याद आयी। घी की (खखोरन) डाड़ी के साथ चूड़ा तुमको बहुत पसंद है न!'' इस कहानी के नायक सिरचन के जीविकोपार्जन का साधन क्या है, इसे कहानीकार ने इस रूप में दिखाया है–''मोथी घास और पटरे की रंगीन शीतलपाटी, बाँस की तीलियों की झिलमिलाती चिक, सतरंगे डोर से मोढ़े, भूसी–चुन्नी रखने के लिए मूँज की रस्सी के बड़े–बड़े जाले, हलवाहों के लिए ताल के सूखे पत्तों की छतरी–टोपी तथा इसी तरह के बहुत–से काम हैं, जिन्हें सिरचन के सिवा गाँव में और कोई नहीं जानता।

नाच–गान, पर्व–त्योहार आदि का संकेत दिया गया है, जिससे वहाँ का सांस्कृतिक कलेवर उजागर होता है।

गाँवों में अशिक्षा भी है, अज्ञानता भी। वहाँ जो थोड़े–बहुत पढ़े–लिखे हैं, सभी शहर की ओर पलायन कर गए हैं या करते जा रहे हैं। आर्थिक लाचारी ने बहुत सारे विपन्नों को शहरों की ओर ठेला है। इसे उन्हीं की कई कहानियों में दिखाया है। 'भित्ति की मयूरी' कहानी की फुलपतिया गाँव छोड़कर जाना नहीं चाहती, यद्यपि शहर में उसे यश और पैसा–दोनों प्राप्त होने का सुयोग हाथ लगा है। 'सिरपंचमी का सगुन' कहानी में माधो की अनपढ़– गँवार है, वह अपने बेटे से कहती है–''बबुआ! तू फाल–खुदाल छोड़, सिलेट–पेंसिल धर। हमलोग बैल होकर रहे। बैल की बुद्धि।'' इस तरह वहाँ भी एक तरह की जागृति आ रही है, लोग शिक्षा के महत्त्व को समझने लगे हैं। 'एक कहानी का सुपात्र' कहानी का छोटेलाल शहर आया है अपने भाई के पास; लेकिन उसे न शहरी सुख अच्छा लगता है और न सभ्यता–संस्कृति। वह कहता है–''जी करता है उड़कर चला जाऊँ।'' पूछने पर उत्तर है–''और कहाँ?गाँव।'' इसी बात पर रेणु ने 'अपने गाँव और पटना के बीच' संस्मरण में कई बार स्वीकार किया है–''मैं नगरवासी नहीं हो सका।'' आगे वे फिर गाँव के बारे में जोड़ते हैं–''हर दो–तीन महीने जहाँ बताकर मेरा रचनाकार मन संतुष्ट होता था और आनंद पाता था। फसल की कटने के समय या आम के मौसम में दिल्ली या बम्बई या कोई भी नगर मुझे अपने गाँव से दूर नहीं रख सका। रवीन्द्रनाथ की सभी रचनाओं में वह कहानी जिसे मैं सबसे अधिक पसंद करता हूँ–'घर की वापसी' है। मैं अपने को स्फटिक में पहचान पाता हूँ।...धान के खेत, पेड़, पखेरू मेरे पैरों को सम्मोहित कर उतना ही रोक रहे हैं, जितना ही मैं गाँव से दूर होता चला गया।

वस्तुतः रेणु की आत्मा गाँवों में बसती थी। इसलिए वे ग्राम्य–जीवन के विविध रूपों से गहराई से परिचित थे, जुड़े थे, अतएव कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, उन्होंने अपनी कहानियों में ग्राम्य–जीवन के विभिन्न पहलुओं को बहुत ही स्वाभाविक एवं विश्वसनीय रूप से प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अनेक कहानियाँ शहरी जीवन से संबंधित लिखी है, परंतु उनकी प्रसिद्धि इन कहानियों पर आधारित हैं, वे ग्राम्यजीवन से जुड़ी कहानियाँ ही हैं। तीसरी कसम उर्फ गुलफाम मारे गये, ठेस, पंचलैट, सिरपंचमी का सगुन, भित्ति की मयूरी, टौंटी नैन का रेल, लाल पान की बेगम, तीर्थोदक, संवदिया जैसी उनक अमर कहानियाँ ग्राम्य–जीवन से ही जुड़ी हैं।

अंत में रेणु जी ने ग्राम्यजीवन की न केवल तस्वीर खींची है, वरन् उसका एक्स–रे किया है–अंदर तक की। विशेषताएँ चाहे गुण हों या अवगुण–उन्होंने उजागर कर दिया है। वस्तुतः ग्राम्य– जीवन के अद्‌भुत एवं अद्वितीय रचनाकर रहे हैं।

शोधपरक आलेख

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्

सुभाषचन्द्र झा
पूर्व बिहार प्रशासनिक सेवा
सरकार के विशेष सचिव, क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार
भागलपुर प्रमंडल, भागलपुर–812002
मो0–9431208428

वह जो प्रेम का एक संबंध है, वह जो एक अहोभाव है, वह आदमी की ताकत में नहीं कि उसे मिटा दे, अगर हो जाए और परमात्मा के स्वभाव में नहीं कि उसे मिटा दे। प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है, जो कहा न जा सके, जिया जा सके, भोगा जा सके, अनुभव किया जा सके, पर कहा न जा सके। अनुभव सागर जैसा है, अभिव्यक्ति लहर–जैसी है। थोड़ी–सी खबर लाती है, पर बहुत अनंतगुना पीछे छूट जाता है, जरा–सी झलक लाती है, लेकिन बहुत शेष रह जाता है। सभी शब्द चाहे वेद के हों, चाहे कुरान के, चाहे बाइबिल के–शब्दमात्र सीमित हैं और प्रेम का अनुभव विराट है। जो कहा है, बहुत छोटा है; जो कहना चाहते थे, बहुत बड़ा है। बड़े भाव से भरा है, पर शब्द नहीं है। शब्द बड़े थोड़े हैं, कहने को बड़ा विराट है और प्रेम विराट से भी विराटतर है। प्रेम को जाननेवाला, जानने में खो जाता है, पिघल जाता है, बह जाता है, बोलनेवाला बचता नहीं। जब बोलने योग्य कुछ होता है जीवन में तो बोलनेवाला बचता नहीं। जबतक बोलनेवाला होता है जीवन में, तो कुछ बोलनेयोग्य नहीं होता। जितनी होती है गहरी समझ, उतना ही प्रगाढ़ होने लगता है। जो पाया है, कहा न जा सकेगा।

मनुष्य पैदा ही होता है प्रेम की किसी ऊर्जा से। सारे जगत का खेल चलता है–प्रेम की किसी ऊर्जा से। पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण भी उसका प्रेम ही है। ऋण और धन विद्युत का आकर्षण विद्युतीय प्रेम है। तारों के बीच का संबंध चुम्बकीय प्रेम है। अणु–परमाणु जिससे गुंथे हैं–टूटकर बिखर नहीं जाते, वह भी प्रेम की ही गाँठ है। अस्तित्व परिवार है। परिवार को जोड़नेवाले सेतु और धागे का नाम ही प्रेम है। प्रेम से सब निकलता है–पदार्थ ही नहीं, परमात्मा भी। परमात्मा प्रेम की आत्यंतिक निर्यात है–अंतिम खिलावट, आखिरी ऊँचाई, संगीत की आखिरी छलांग और प्रेम से शुरुआत होती है। प्रेम के अभाव में परमात्मा कोरी लफ्फाजी है, शाब्दिक जाल है, तर्क का ऊहापोह है, वाद–विवाद है–सार कुछ भी नहीं।

परमात्मा प्रसाद देता नहीं, हमें मिलता है। बिना दिये मिलता है। प्रेम में हम चकित, अवाक, रहस्यपूरित रह जाते हैं। उस घड़ी में हृदय भी रुक जाता है, विचार ठिठक जाते हैं, सोच– विचार की सारी क्षमता खो जाती है। हम पहली दफा निर्बोध शिशु की भाँति हो जाते हैं, कोरे कागज। किसी से प्रेम हो जाता है, तब कोई ठीक–ठीक बता नहीं सकेगा कि किसलिए हो गया?सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है।

....कामनारहित है। प्रेम की कोई कामना नहीं है। प्रेम गुणरहित ही होता है। प्रेम न तो राजसिक होता है, न सात्विक होता है, न तामसिक होता है। प्रेम गुणातीत और संसार के पार है। जैसे कमल सरोवर के पार, उठता है सरोवर से, उसी कीचड़ से, फिर भी पार होता है। प्रेम ऐसे ही संसार के तीनों गुणों से अतीत है। प्रेम की कोई कामना नहीं है। प्रेम यह नहीं कहता कि मुझे कुछ दो। प्रेम कहता है बस प्रेम काफी है, इसके पार और कोई माँग नहीं है। प्रेम बस प्रेम से ही तृप्त है। अगर प्रेम में कुछ और माँगा तो वह प्रेम नहीं, कुछ और होगा–कामना होगी, वासना होगी, लोभ– मोह होगा।

...प्रतिक्षण बढ़ता है। जो प्रेम घटने लगे, वह काम रहा होगा। काम प्रतिक्षण घटता है। काम का स्वरूप है, जबतक अपना कामपात्र न मिले, बढ़ता हुआ मालूम होता है। एक पुरुष एक स्त्री को चाहता है, वह न मिले तो कामवासना बढ़ती जाती है, उबलने लगती है, सौ डिग्री पर ज्वर चढ़ जाता है, भाप बनने लगता है, सारा जीवन दाव पर लगा मालूम पड़ता है; मिल जाए, उसी दिन से घटना शुरू हो जाती है।

काम का लक्षण यह है, जबतक न मिले, तबतक बढ़ता है, मिल जाए, घटता है। प्रेम का लक्षण यह है, जबतक न मिले, तबतक पता ही नहीं कि बढ़ना क्या है, जब मिलता है, तब बढ़ता है। प्रेम सदा दूज का चाँद है, पूर्णिमा का चाँद कभी होता ही नहीं, बढ़ता ही रहता है; ऐसी कोई घड़ी नहीं आती, जब घटे। मिलन हुआ–सदा का हुआ। ...विच्छेदरहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, अनुभवस्वरूप है। लेकिन हमारे जीवन का ढाँचा ही आज प्रेम के विपरीत है।

प्रेम दान है। प्रेम कोई भिक्षा नहीं है कि किसी से माँग ली। लेकिन हम प्रेम करते ही नहीं। हम प्रेम माँगते हैं, देते नहीं। प्रेम वस्तु नहीं है। प्रेम भाव है। प्रेम का कहीं कोई साधन होता है?कोई टेकनीक?कामवासना की दृष्टि अभाव पर रहती है, जो पास नहीं है, उसी को देखती है। प्रेम के क्षण में जीवन स्व स्फूर्त मालूम देता है। प्रेम देता है, काम माँगता है।

प्रेम अपूर्व उन्मत्तता है, आँखें सदा नशे से सराबोर रहती हैं। मन सदा एक अपूर्व बेहोशी में डूबा–खोया रहता है। जीवन साधारण गति नहीं रह जाती, नृत्य हो जाता है। जीवन से गद्य खो, पद्य का जन्म होता है। किसी और ही आयाम में प्रवेश हो जाता है। होशियारी से कहीं कोई डूबता है?हिसाब रखकर कहीं कोई प्रेम में गया है?गणित को तो छोड़ जाना पड़ता है पीछे। तर्क के तो पार जाना होता है। बुद्धि तो बेईमानी है, चालाकी है। बुद्धि तो कुशलता है, गणित है। प्रेम इस तरह के गणित को स्वीकार नहीं करता। प्रेमी का सिर झुकता है तो फिर उठता नहीं, अहंकार खो जाता है। मगर हम तो वहाँ जीते हैं, जहाँ गणित है, हिसाब– किताब है। साफ–सुथरी रेखाएँ हैं। हम सिर्फ एक काम करें। प्रेम, बस इतना ही याद रखें, फिर शेष सब अपने आप हो जाएगा। हम प्रेम करें–सब नियम पूरे हो जाते हैं और हम सब नियम पूरे करें और प्रेम को छोड़ दें, तो सिर्फ धोखे में है। बिना प्रेम के कोई नियम पूरा नहीं होता। बिना प्रेम के सारे नीति अनीति हैं। सारा आचरण सिर्फ दुराचरण को छिपाने की व्यवस्था है। प्रेम के अतिरिक्त कोई आचरण नहीं। प्रेम में हिसाब–किताब की दुनिया डाँवाडोल हो जाती है। क्योंकि प्रेम के क्षण में हम वस्तुओं से ऊपर उठते हैं और व्यक्तित्व दृष्टि में जाता है, तब वस्तुएँ साधनरूप हो जाती हैं और हम प्रेम के लिए उनका उपयोग करते हैं, लेकिन वे हमारा उपयोग नहीं कर पातीं। इसलिए प्रेमी अनुगृहीत होता है देकर। वस्तुएँ तो पड़ी रह जाएँगी, प्रेम साथ जाता है।

प्रेमियों की आँखें एक–दूसरे पर नहीं होती, एक साथ किसी और चीज पर होती हैं। कामियों की आँख एक–दूसरे पर होती है और किसी चीज पर नहीं होती। प्रेमी किसी और तीसरी चीज को देखते हैं अपने से पार। प्रेम का कोई गंतव्य है, काम का कोई गंतव्य नहीं है। काम अपने आप में समाप्त हो जाता है। प्रेम अपने से पार जाता है। जो पार ले जाए, जो अतिक्रमण कराए, हो हमें हमसे ऊपर देखने की सुविधा दे, वही प्रेम है।

काम ऐसे हैं जैसे पिंजरे में बंद पक्षी, कहीं जाता नहीं, वहीं पिंजरे में ही उछल–कूद करता रहता है, वहीं दलन–चलन करता रहता है। बस पिंजरा उसकी सीमा है। प्रेम ऐसे हैं, जैसे कबूतर उड़ते हैं आकाश में, फिर अपने घर में वापस लौट जाते हैं। पिंजरों में बंद नहीं है। न लौटें तो कोई उन्हें

बुलाता नहीं है, कोई पकड़ने नहीं जा सकता, अपने से लौट आते हैं।

प्रेम को जान लिया, वस्तुएँ व्यर्थ हो जाएँगी। वस्तुएँ देने योग्य हो जाती हैं, पकड़नेयोग्य नहीं रह जातीं। जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम सब दे देना चाहते हैं। इसलिए कंजूस प्रेम नहीं कर पाते। कृपणता और प्रेम एक साथ नहीं जी पाते। कृपण तो प्रेमी भी नहीं हो सकता। जब हम प्रेम करते हैं, तत्क्षण हमारी पकड़ वस्तुओं से उठ जाती है, हम भेंटकर सकते हैं, दान दे सकते हैं और हम देकर प्रसन्न होते हैं, उदास नहीं और जो हमसे ले लेता है, हम उसके अनुगृहीत होते हैं कि उसने हल्का किया। वस्तुतः प्रेम को समझने के लिए सब समझ छोड़नी पड़ती है; क्योंकि शुद्ध सोना इतना नाजुक है कि उसके आभूषण नहीं बनते और जब प्रेम ही बचता है, तब प्रेम शुद्ध है।

शरीर के साथ जुड़ी है कामवासना। कामवासना स्थूल है। शरीर शरीर को माँगता है, शरीर अपने से विपरीत शरीर को माँगता है; क्योंकि एक किनारा अधूरा है, दूसरे किनारे की चाह होती है। पुरुष स्त्री को माँगता है, स्त्री पुरुष को माँगती है, ताकि जीवन की सरिता बीच में बह सके, दो किनारे जुड़ जाएँ। पुरुष अकेला है, स्त्री अकेली है। शरीर के तल पर शरीर की माँग है, शरीर से मिलन की आकांक्षा है। क्षणभर का मिलन हो भी जाता है। क्षणभर को शरीर शरीर में डूब जाते हैं और खो भी जाते हैं, मगर उससे पीड़ा मिटती नहीं, गहन हो जाती है। उस मिलन के बाद बड़ा गहरा विषाद हो जाता है; क्योंकि मिलन के बाद गहरा बिछोह होता है। मिलता कुछ भी नहीं, ऐसा लगता है। उल्टा खो गया। स्थूल एक–दूसरे में विलीन नहीं हो सकते। स्थूल की सीमा है। स्थूल अपनी सीमा को छोड़ नहीं सकता, अन्यथा स्थूल न रह जाएगा।

प्रेम हैं मन जैसा और मन का। प्रेम की माँग शरीर की माँग से ऊपर है। कामवासना है शरीर जैसी और शरीर की। शरीर खरीदा जा सकता है, मन खरीदा नहीं जा सकता, शरीर जड़ है। मन थोड़ा–थोड़ा चेतन है, इसलिए इतना नीचे नहीं उतरा जा सकता कि खरीद–बेच की जा सके। मन प्रेम माँगता है, कोई जो अपना सर्वस्व देने को तैयार है, बिना शर्त अपने को किसी को दे देना चाहता है, मन की माँग प्रेम की है। जब दो मन मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम प्रेम है। जब दो शरीर मिलते हैं, तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है। शरीर और शरीर के मिलन से जो रस पैदा होता है–क्षणभंगुर उसका नाम है काम। अंधेरी रात में क्षणभर को बिजली चमकती है, फिर अंधेरा और अंधेरा हो जाता है।

मन तरल है आज किसी से प्रेम किया, कल किसी और के प्रेम में उड़ सकता है। मन का कोई बहुत भरोसा नहीं है। आत्मा की कोई सीमा नहीं। शरीर की सीमा है ठोस। मन की सीमा है तरल। प्रेम थोड़ा दूर तक जाता है। काम में शरीर और शरीर का मिलन होता है–स्थूल का स्थूल से; मन में–सूक्ष्म का सूक्ष्म से; आत्मा से निराकार का निराकार से।

ऊर्जा का एक रूप है काम, ऊर्जा का दूसरा रूप है प्रेम, ऊर्जा का तीसरा रूप है भक्ति। भक्ति और काम के बीच में प्रेम है। प्रेम के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं बचती। काम में तो बोला ही नहीं जा सकता; क्योंकि काम एक छोर है, भक्ति दूसरा छोर है। प्रेम में थोड़ा–सा काम शेष रहता है, कामवासना में भी प्रेम का थोड़ा–अंश है और प्रेम में भी कामवासना का थोड़ा–सा अंश है। कामी कामवासना में पड़ता है; कामवासना में पड़ने के कारण थोड़े–से प्रेम का आविर्भाव हो जाता है। प्रेमी प्रेम करने डूबता है, प्रेम में डूबने के कारण कामवासना आ जाती है। कामी काम के कारण प्रेम करने लगता है। प्रेमी प्रेम के कारण काम में उतरता है। मगर कामी का प्रेम गंदा होगा। प्रेमी का काम बड़ा मधुर व प्रीतिकर होगा।

अब प्रेम के साथ एक नियम है कि हो तो हो, न हो तो किया नहीं जा सकता; क्योंकि प्रेम ऐसी घटना है कि हमारे हाथ में नहीं है और बाकी घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है, जो हमारे हाथ में है। प्रेम में हमारा होना डूबता है। शरीर तो वही रहता है, मन बदल जाता है, अहंकार गिर जाता है। किसी नये का जन्म होता है। कोई और ही हममें आविष्ठ हो जाता है, जो हमसे अपरिचित है। आँख में किसी और ही ऊर्जा की लहर होती है, पैर में किसी और ही नृत्य की गति होती है, हृदय में किसी और ही गीत की गुनगुन होती है। हम वही नहीं रह जाते, जो प्रेम के पहले थे, वह हमारी ईकाई, वह अकड़, वह अस्मिता डूबेगी, गलेगी, जलेगी, राख होगी। इसलिए तो हमने बहुत तरह के इंतजाम कर लिये हैं प्रेम की विपरीत। विवाह वही तो है। जिनका प्रेम से कोई संबंध नहीं है। विवाह प्रेम से हो तो यह समझ में आता है। विवाह कर दो और प्रेम करो। प्रेम में खतरा मालूम होता है, खतरा है। जिस ढंग का जीवन हम जीते हैं, वह प्रेम के विपरीत है।

उपनिषद् कहती है, पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। यह प्रेम गुण–रहित है, कामना–रहित है, प्रतिक्षण बढ़ता है, विच्छेद–रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और अनुभवस्वरूप है। निश्चित ही प्रेम ऐसी आग है, जो न तो कोई लगा सकता है, न बुझा सकता है। न लगे तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। लग जाए तो बुझाने का कोई उपाय नहीं है। प्रेम ऐसी स्वाभाविक घटना है, जो अपने से घटती है और किसी के किये कुछ नहीं हो सकता।

प्रेम तो जब घटता है घटता है, हमारे घटाए न घटेगा और हमारे घटाये घट जाए तो वह प्रेम दो कौड़ी का होगा, वह हमसे नीचा होगा, छोटा होगा। हमारा ही कृत्य हमसे बड़ा कैसे होगा?कोई कृत्य कर्ता से बड़ा नहीं हो सकता। वह तो अभिनयमात्र से ही होगा। प्रेम तो अपने से घटेगा। वह घटना है।

हम जिंदगी में कमाते नहीं, गँवाते हैं–बड़ी अजीब सौदा करते हैं। प्रेम अपने सुख की तलाश है। प्रेम में पड़ते ही सब औपचारिकता खो जाती है, सब शिष्टाचार खो जाता है। दूसरे में कुछ दिखाई पड़ने लगता है, जो अबतक कभी किसी में दिखाई न पड़ा था।

प्रेम वस्तु नहीं है–प्रेम भाव है। प्रेम कोई भिक्षा नहीं है कि किसी से माँग ली और प्रेम कोई आज्ञा भी नहीं है कि किसी को दे दी कि करो प्रेम। लेकिन हम प्रेम करते ही नहीं। हम प्रेम माँगते हैं, देते नहीं। प्रेम एकमात्र तत्व है है संसार में, जो संसार के विपरीत है। संसार में होकर भी जो संसार में नहीं है; क्योंकि प्रेम के क्षण में न तो प्रेमी रह जाता, न प्रेयसी रह जाती। प्रेम ही रह जाता है। दूसरा अपने जैसा मालूम पड़े, तभी प्रेम। अगर दूसरा दूसरे जैसा मालूम पड़ता रहे तो काम। प्रेम में पतझड़ आता ही नहीं, प्रेम में एक ही ऋतु है वसंत।

स्त्री प्रेम न कर पाए तो उसके भीतर कुछ अनखिला ही रह जाता है। स्त्री एक बार प्रेम कर लेती है तो जैसे सदा के लिए प्रेम कर लेती है, एक पुरुष उसके लिए सदा के लिए हो जाता है। पुरुष इतनी जल्दी एक में नहीं डूबता। पुरुष की आकांक्षा और स्त्रियों पर घूमती ही रहती है, वह लाख उपाय करे; लेकिन उसकी नजर भटकती ही रहती है। स्त्री जब भी किसी के प्रेम में पड़ती है तो वह पहले ही विवाह का सोचने लगती है और पुरुष जैसे ही किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता है, वह विवाह से बचने की सोचने लगता है। पुरुष टालता है। स्त्री आतुर होती है; क्योंकि स्त्री का प्रेम एकोन्मुख है, एकांत है। पुरुष का प्रेम छितरा–बिखरा है। स्त्री के लिए प्रेम ही उसका एकमात्र काम है। उसे कुछ और नहीं करना है। प्रेम न हो स्त्री के जीवन में तो बिल्कुल सूनी रह जाती है।

एक बार स्त्री किसी के प्रेम में पड़ जाए, फिर उसके लिए संसार

में कोई दूसरा पुरुष रह नहीं जाता। पुरुष मात्रा पर जाता है, स्त्री गुण पर। स्त्री का प्रेम मौसमी फूलों जैसा नहीं है, समय लगता है। स्त्री बातें कहती नहीं, अनुभव करती है। स्त्री चुप रहती है, कहना क्या है! जो है, है। बात इतनी बड़ी है कि कही नहीं जा सकती। मगर क्षणभंगुर है पुरुष का प्रेम। उफान आता है उसमें, ज्वार आता है, लेकिन भाटे के आने में देर नहीं लगती। जब स्त्री–पुरुष प्रेम में पड़ते हैं तो स्त्री चुप होती है, पुरुष बोलता है; क्योंकि वह बोल–बोलकर उसकी आभा पैदा करता है, आभास पैदा करता है। स्त्री चुप्पी से बोलती है। एक बार प्रेम में पड़ गयी तो वह सदा के लिए पड़ गयी। स्त्री अपने को तुममें खो देती है, तुम उसमें अपने को नहीं खोते।

करने योग्य तो एक ही बात है और वह प्रेम है। जिससे प्रेम हो जाए, उससे हम जुड़ जाते हैं। करोड़ों मील का फासला हो तो भी वह हमारे पास ही होता है, हृदय की धड़कन के बिल्कुल पास होता है। प्रेम जोड़ता है। किसी भी स्त्री का प्रेम संबंध कभी औपचारिक नहीं हो सकता, उसमें गहराई बहुत होती है।

और प्रेम की कहीं विधि हुई है?प्रेम का कहीं विधान हुआ है?प्रेम की कोई शर्त हुई है?प्रेम किसी व्यवस्था से नहीं चलता। प्रेम के अपने अनूठे मार्ग हैं। प्रेम के रास्ते पर बुद्धि मार्गदर्शक हो नहीं सकती; क्योंकि बुद्धि गणित है, विज्ञान है, रूखा–सूखा है, डाँवाडोल है और प्रेम में बड़ा काव्य है, संगीत है, हृदय का पवित्र सुर–साज है, सौंदर्य है, भाव है, कला है, बेशर्त समर्पण है। प्रेम में जो जीतने चला, हारा; जो झुका, वही बचा। यहाँ विजित होने को, विजेता होने को दो कहाँ है?

प्रेम कहता है–मुझे स्वीकार कर लो, अंगीकार कर लो, मुझे ले लो पूरा का पूरा, पीछे का कुछ भी बचाए मुझे अपना कर लो, मुझे अपना लो, मुझे मिटा दो मेरी तरह। तुम ही तुम फैल जाओ मेरे ऊपर, तुम्हारा ही रंग मेरा रंग हो। प्रार्थना की तरह पवित्र और फूल की तरह शुद्ध निर्दोष कुँआरी स्त्री जैसा है प्रेम। प्रेम है वहाँ, जहाँ बुद्धि हारने लगती है, हृदय जीतने लगता है।

अगर तुम किसी के प्रेम में हो और कोई पूछे कि तुम क्यों प्रेम में हो?किसलिए प्रेम में हो?क्या पाना चाहते हो?अगर तुम उत्तर दे सके तो तुम्हारा प्रेम गलत तो तुम प्रेम में हो ही नहीं। तुम अगर प्रेम में हो तो कहोगे बस प्रेम के कारण प्रेम में हूँ। पुरुष को स्त्री में एकदम देवी दिखाई पड़ने लगती है। जो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। स्त्री को पुरुष देवता दिखाई देने लगता है। दोनों को एक–दूसरे में कुछ अलौकिक दिखने लगता है।

प्रेम अपने में न बंधन है, न मुक्ति, न कोई संबंध। पिव पिव लगी प्यास। 'व्युत्क्रमात् आपययः तथा दृष्टम्।' विपरीत के बीच लय बहता है। स्त्री बिना पुरुष के नहीं हो सकती। पुरुष बिना स्त्री के नहीं हो सकता। दिन है, बिना रात के नहीं हो सकता। उष्णता बिना शीतलता के नहीं हो सकती। संगीत में स्वर व शून्य का मेल है। स्त्री–पुरुष बड़े विपरीत हैं, भिन्न हैं, इसलिए तो उनमें आकर्षण है। आकर्षण ही दोनों में सौंदर्य का उपादान है।
'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपं।'

तुम क्या कहते हो, यह स्त्री नहीं सुनती। तुम क्या कहना चाहते हो, तुम क्या हो–इसे सुनती है। स्त्री सीधी–साफ है, द्वंद्वको कम जानती है। पुरुष को काव्य समझ में नहीं आता। गणित उसके लिए सीधी भाषा है। इसलिए स्त्री और पुरुष एक–दूसरे को कभी समझ नहीं पाते। इसलिए पति न तो पत्नी को समझ पाता है, न पत्नी पति को समझ पाती है। जब दोनों बातें करते हैं, तो बातें होती ही नहीं। एक कुछ कहता है, दूसरा कुछ सुनता है। दोनों के देखने के ढंग बड़े भिन्न हैं। स्त्री के देखने, सुनने, जानने, समझने, पकड़ने के ढंग बड़े सूक्ष्म हैं, अप्रत्यक्ष हैं। बस, समझाओ नहीं, तुम समझो। दोनों की दिशा अलग–अलग, लक्ष्य भिन्न–भिन्न पर दोनों ऊर्जा पर सवार हैं, दोनों कहीं जा रहे हैं। दोनों पास तो आ जाते हैं, मिलन नहीं हो पाता। निकट तो आ जाते हैं, एक नहीं हो पाते। शरीर से तो करीब आ जाते हैं, मन से मगर दूरी बनी ही रहती है।

प्रेम स्त्री का स्वभाव है। स्त्री के लिए प्रेम उसका सब कुछ है, उसका सर्वस्व है। वह ध्यान भी करेगी तो नाम ही ध्यान रहेगा, ध्यान में भी मूर्ति प्रविष्ट हागी। ध्यान में भी रूप धर लेगा। स्त्री के पास रूप देने की कला है। इसलिए तो गर्भ है उसके पास। निराकार आत्मा उतरती है और स्त्री के गर्भ में रूप ले लेती है। मूर्ति का जन्म हो जाता है। वह निराकार का आकार बनाने में कुशल है। उसके पास कुछ है, जिससे निराकार आकार बन जाता है, आत्मा प्रविष्ट हो जाती है और देह धरकर बाहर आती है। जब प्रविष्ट होती है आत्मा स्त्री के गर्भ में, तब अरूप होती है। स्त्री उसे रूप देती है, आकार देती है, रेखाएँ देती है, देह देती है। स्त्री के अस्तित्व में ही देह देने का ढंग छिपा हुआ है। ध्यान भी करेगी तो गर्भ में भगवान रूप ले लेंगे।

पुरुष और स्त्री बड़े विपरीत हैं, इसलिए तो उनमें आकर्षण है। स्त्री का धर्म रूप का, रंग का, रस का, गंध का, स्वाद का, उत्साह का, उत्सव का, समर्पण का, शरणागति का। स्त्री ने चाहा ही नहीं निराकार को कभी, जिससे छाती न लग सके, जिसे भर आँख देख न सके, जिसके हाथ–में–हाथ न दे सके, जिसे सुन न सके, जिससे बोल न सके–ऐसे निराकार में उसका कोई झुकाव नहीं। स्त्री चाहती है तुम साकार, सगुण साकार होकर आओ। तुम रूप धरकर आना, ताकि देख ले। तुम बोलो, सहलाओ।

स्त्री तो सपनों में जीती है, मगर सपनों को साकार कर लेती है। तुम क्या कहते हो, कम सुनती है। क्या कहना चाहते हो, पहले सुन लेती है। तुम शब्दों में क्या कह रहे हो, इसकी फिकर नहीं करती। आँखें क्या कह रही हैं, हाथ–पैर क्या कह रहे हैं–वह पहले सुन लेती है। स्त्री को देखने, पकड़ने के ढंग बड़े सूक्ष्म हैं। जो स्त्री के पास जाता है, केवल देह से जाता है और उसकी आत्मा कहीं और भटकती है, उसके चित्त में और हजार तरंगें–विचार उठ रहे हैं, तो झुक तो रहा है स्त्री के सामने, मगर पीछे अकड़, अहंकार से भरा है। जो फूल को मसलते हैं। खुशबू उनके वश की बात नहीं। जब तुम किसी स्त्री को प्रेम करते हो, तो वह अधिक सुंदर हो जाती है। जब कोई स्त्री तुम्हें प्रेम करती है, तो तुम अधिक प्रसादपूर्ण हो जाते हो। अचानक तुम्हारा सारा अनाड़ीपन चला जाता है। तुम अधिक स्वच्छन्द हो जाते हो–तुम एक रात में बदल जाते हो। यदि कोई स्त्री तुम्हारे प्रेम में पड़ जाती है, वह तुम्हारी तरफ ध्यान देने लगती है, तुम महत्वपूर्ण हो गये। अब वे आँखें तुम्हारा इंतजार कर रही हैं। तुम्हें उन दो आँखों को तृप्त करना है, उनकी खुशी तुम्हारे पर निर्भर हो गई है। तुम इस दुनिया में बगैर कारण के नहीं हो, तुम्हारी जरूरत है। अचानक एक महिमा, एक महत्ता चारों तरफ पैदा हो जाती है, तुम आभा से घिर जाते हो।
क्षणे क्षणे यन्ननतामुषैति पदैव रूपं रमणीयतायाः।

स्त्री और पुरुष के बीच आकर्षण सौंदर्य का मुख्य उपादान है। यह आकर्षण आंतरिक भी होता है। प्रथमतः व्यक्ति की शारीरिक सुंदरता व कांति का प्रभाव पड़ता है। फिर मन की सुंदरता का समावेश भी शारीरिक सौंदर्य में हो जाता है। इसलिए सौंदर्य सदा परिवर्तित होता रहता है। स्त्री उसके साथ यौन संबंध नहीं बना सकती, जिसके साथ प्रेम और जड़ाव का अहसास न हो। स्त्री के लिए प्रेम में प्रथम ही अंतिम है। स्त्री के लिए प्रेम ही उसका सत्य है और सत्य का आग्रह नहीं होता, सत्य का सिर्फ निवेदन होता है। पुरुष याद कर भी सब रास्ते नहीं नाप सकता और न ही सभी सागरों की गहराई ही छू सकता है और सभी घाटों से उतर नहीं सकता और नहीं सभी नावों से यात्रा कर सकता है।

समीक्षा

चुप्पियों के बीच : जनसरोकार की ग़ज़लें

नीरज नीर
अशोकनगर, राँची
8789263238

हिन्दी ग़ज़लें माशूका की जुल्फों के पेंचों खम से दूर आम आदमी के दुख–तकलीफ, उसकी हँसी और आये दिन दृष्टिगत होनेवाली जिंदगी की विसंगतियों से अपना नाता जोड़ती है। हिन्दी ग़ज़लों का जनसरोकार बड़ा है। समाज की निस्संगता, जद्दोजहद, रिश्तों में आए बिखराव, भरोसे का टूटना, राजनैतिक प्रपंच आदि हिन्दी ग़ज़लों के न केवल विषय वस्तु बने हैं, बल्कि बहुत ही खूबसूरती से दर्ज भी हुए हैं।

हिन्दी साहित्य में ग़ज़लों को पर्याप्त महत्व नहीं दिये जाने के बावजूद हिन्दी ग़ज़लों में अच्छा काम हो रहा है और ऐसे ही अच्छा लिखनेवालों में एक नाम है डॉ. भावना कुमारी का, जिनका अभी हालिया प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह है 'चुप्पियों के बीच'। यह ग़ज़ल संग्रह वर्तमान के हिन्दी ग़ज़लों के मिजाज के अनुरूप है एवं बेहतरीन बन पड़ा है। हिन्दी ग़ज़लें सामान्य रूप से उर्दू बहरों के अनुसार ही लिखी जा रही है। भावनाजी के इस ग़ज़ल संग्रह में सम्मिलित ग़ज़लें, ग़ज़लों के व्याकरण के मापदंड पर भी खरी उतरती है। इनकी ग़ज़लें शिल्प और कथ्य दोनों ही लिहाज से उत्तम हैं और इसलिए जब उस्ताद शायर दरवेश भारती यह कहते हैं कि डॉ. भावना आज की महिला ग़ज़ल लेखन में सबसे अधिक सफल ग़ज़लकारा हैं तो उनकी बात बहुत अतिशयोक्ति नहीं लगती है।

डॉ. भावना समाज की नब्ज पकड़ती है एवं हवा हवाई बातों के बदले ठोस धरातल पर अपनी बातों की बुनियाद रखती है। उनके शेरों में कुछ कड़वे मगर जरूरी प्रश्न उभरते हैं, जो जन सामान्य के भी प्रश्न हैं और यही उनकी ग़ज़लों के जनसरोकार को स्थापित करते हैं। कुछ अंशआर देखें–

नदियाँ सूखी, पर्वत समतल, क्या बोलूँ
मैं हूँ या फिर सब हैं पागल क्या बोलूँ
अफसरशाही, सत्ताधारी सब डूबे
घूस बनी है ऐसी दलदल क्या बोलूँ?

ग़ज़लों के बारे में कहा जाता है कि ग़ज़लें लिखी नहीं जाती, बल्कि कही जाती हैं और जब कोई बात कही जाती है तो उसका ध्वन्यात्मक प्रभाव सुननेवाले के मन पर पड़ता है। इसलिए ग़ज़लों के बारे में यह जरूरी है कि जब पाठक इन्हें पढ़े, तो वही प्रभाव उसके मनोमस्तिष्क पर पड़ना चाहिए। इस संग्रह की ग़ज़लें इस लिहाज से अपना काम बड़े ही सलीके से करती है।

वर्तमान समय विडम्बनाओं का समय है। कथनी और करनी में घोर अंतर का समय है। हिन्दी साहित्य, राजनीति का पिछलग्गू बना है। आत्मवंचना प्रगतिशीलता की वाहक बनी है। प्रपचंकों के झूठ और जालसाजी के आगे सत्य कराहता दिखता है। ऐसे में इन पंक्तियों की सजीवता एवं धार को देखिए–

खुद को यूँ झूठलाना छोड़
हरदम शोर मचाना छोड़
अँगना दिल का है सीधा
टेढ़ा नाच दिखाना छोड़
दरिया का रस्ता हूँ मैं
मुझको ओस चटाना छोड़।

डॉ. भावना की ग़ज़लें संश्लिष्ट जीवनानुभवों की धारदार अभिव्यक्ति है। समाज एवं राजनीति की गहरी समझ से लबरेज उनके अशआर बड़ी ही सूक्ष्मता एवं चतुराई से वर्तमान के नंगेपन को उजागर कर देती है।

पतली जीभ की मोटी चमड़ी हद है यार
चोर सिपाही हैं अब समधी हद के यार
जंगल के महलों की दूरी खत्म हुई
जोगी भोगी की है चलती हद है यार।

हाशिए पर रह गए समाज की अकूत क्षमता, उनकी संभावनाओं को दर्शाती हुई उनकी ग़ज़लें उनकी हौसला आफजाई भी करती है। सकारात्मकता से उमगती उनकी ग़ज़लों में परिवर्तन के लिए आह्वान तो है, पर छद्म किताबी क्रांति का कोई भ्रम नहीं है। यह शेर देखें–

हौंसले की चोट से वह पत्थरों को तोड़ दे
ठान लें तो फिर सितारे तोड़ लाते हाशिये।

डॉ. भावना की ग़ज़लों के माधुर्य में एक कसक एवं सम्मोहन है। वे बड़ी बात भी सरलता से कह देती है। हिन्दी ग़ज़लों की यह खास विशेषता रही है कि वे अतिबौद्धिकतावाद की शिकार नहीं रही है और इनकी ग़ज़लें भी इसका अपवाद नहीं है। वे अपनी बात बोधगम्यता पर असरदार तरीके से करती हैं। कुछ अशआर देखें–

बड़ी बिल्डिंग, बड़ी सड़कों के ही किस्से सुनाती है
शहर की तितलियाँ जब गाँव में भूले से आती हैं
पुआली के बिछावनों पर यूँ जाते नींद है आई
कि जैसे रातभर पारियाँ कोई लोरी सुनाती है
पुरानी पीढ़ियों की आँख में भी सुकून दिखता
चलाकर साइकल जो बेटियाँ पढ़ने जाती हैं।

भावना की ग़ज़लें आज के यथार्थ को ज्यों–का–त्यों पाठकों के सामने रखती है एवं भला–बुरा का निर्णय उन्हें ही करने देती है। इनकी ग़ज़लें कहीं भी उपदेशात्मक नहीं होती और न ही कहीं अपने विचार थोपती प्रतीत होती है। अच्छी ग़ज़लों की एक विशेषता यह भी होती है कि वे समाज के रिश्तों में दरकने की ग़ज़लकारा कितनी खूबसूरती से चंद शब्दों में बयाँ कर देती हैं, देखिये–

बेटे कैसी मिसाल देते हैं
माँ को घर से निकाल देते हैं।

कुल मिलाकर 'चुप्पियों के बीच' जो किताबगंज प्रकाशन से प्रकाशित होकर आयी है एक पठनीय ग़ज़ल संग्रह है एवं डॉ. भावना इसके लिए बधाई के पात्र हैं।

आलेख

घनानन्द की काव्यभाषा

सर्वेश सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
मो.–9415435154

अपने इतिहास में, घनानंद की काव्यभाषा के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं–''इनकी–सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलम्भ शृंगार ही अधिकतर इन्होंने लिखा है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं।''

कहना न होगा कि घनानंद की कविता के बारे में शुक्लजी ने ये बातें सिर्फ चलते–चलते ही लिख दी हैं। हालाँकि 'विशुद्ध, सरस, शक्तिशालिनी, प्रौढ़ता और माधुर्य' जरूर ऐसे आधार हैं, जिनपर काव्यभाषा को परखा जा सकता है। पर ऐसा शुक्लजी ने अपने इतिहास में और अन्यत्र भी, विस्तार से कहीं किया नहीं है।

फिर भी, घनानंद की कविता का असर शुक्लजी के मन पर बहुत गहरा है। यह उनकी कविता की ही ताकत थी कि शुक्ल जी ने शायद अनचाहे ही उनके लिए ये उदात्त वाक्य लिखे–''प्रेम की पीर' ही को लेकर इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''

घनानंद को लेकर शुक्लजी के चेतन–अवचेतन में यह सम्मोहन और आत्मविभाजन आश्चर्य का विषय नहीं। यह शायद उसके युगीन बोध की सीमा भी थी। बहुत ऐहिक कविता उस समय के आलोचकों में लज्जा जगाती थी। इसके शिकार कई कवि हुए, केवल घनानंद ही नहीं। वैसे ही शुक्लजी की आलोचना के लक्ष्य कुछ दूसरे थे। उनकी निगाहों में तुलसी बसते थे। एक हद तक वे धर्मभीरु आलोचक थे। लोकमंगल और लोकधर्म उनके सिद्धांत थे। स्वर्णकलश वे सह सकते थे, मांसल वक्ष नहीं, भले ही सहज नैसर्गिक प्रेम की महानतम कविताओं को समुंदर में फेंकना पड़े।

घनानंद को लेकर शुक्लजी की ये मान्यताएँ वर्षों तक हिन्दी के आलोचनात्मक चेतना का संस्कार बनी रहीं। वे अब भी हैं। जबकि ध्यान से देखें तो घनानंद की कविता का जो मूल्यांकन उन्होंने किया है, वह व्यवस्थित नहीं है। उनकी भाषा को उन्होंने चलते–चलते निपटा दिया। ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाले कवि के लिए उनके इतिहास में मात्र चंद शब्द हैं। जबकि मुझे ऐसा लगता है कि यदि शुक्लजी इस कविता का गंभीर मूल्यांकन करते तो इतिहास की दिशा, आलोचना की प्रकृति और उसके स्वरूप का मिज़ाज कुछ और ही होता।

हालाँकि तथ्य यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शुक्लजी या उस समय के अन्य आलोचक की यह सीमा औपनिवेशिक वैचारिक सम्मोहन की वजह से बन भी गयी। थी। साम्राज्यवादी शक्ति हिन्दुस्तान के उस किसी भी विचार या भाव को सामने नहीं आने देना चाहती थी, जिसमें हिन्दुस्तानियों के मन में जीवन के प्रति तीव्र मोह का संकेत हो। वे उन्हें अध्यात्म और धर्म की भूल–भुलैया में घुमाये रखना चाहते थे, ताकि यह जाति विरोध में उठ न खड़ी हो। यह दरअसल, अवचेतन के स्तर पर चल रहा औपनिवेशिक दुश्चक्र था, जिसके शिकार तत्कालीन बुद्धिजीवी और साहित्यकार बने। घनानंद जैसे कवि इस धुँधलके में खो गये। उनका उचित मूल्यांकन तब नहीं हो पाया।

आश्चर्य है कि एक विशाल साहित्य के रचयिता को यूँ वर्षों तक उपेक्षित रखा गया। जरा उनकी भाव संपदा पर नजर दौड़ायें। उनके इन ग्रंथों का पता लगता है–सुजानसागर, विरहलीला, कोकसागर, रसकेलिवल्ली और कृपाकन्द। इसके अतिरिक्त इनके कवित्त सवैयों के फुटकल संग्रह डेढ़ सौ से लेकर सवा चार सौ कवित्तों तक मिलते हैं। कृष्णभक्ति–संबंधी इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ छत्रापुर के राजपुस्तकालय में है, जिसमें प्रियाप्रसाद, ब्रज व्यवहार, कृपाकन्दनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृन्दावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, रसबसन्त इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं। इनकी 'विरहलीला' ब्रजभाषा में, पर फारसी के छंद में है। उचित ही उनके बारे में यह उक्ति प्रचलित है–

नेही महा, ब्रजभाषाप्रवीन और सुन्दरताहु के भेद को जानै
योग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानै
चाह के रंग में भीज्यो हियो, बिछुरे मिले प्रीतम सान्त न मानै
भाषाप्रवीन, सुछन्द सदा रहै सो घन जू के कवित्त बखानै

खैर, यह सब देख ही शायद इधर घनानंद की कविता के पुनः मूल्यांकन की जरूरतें बढ़ी हैं। उस बहाने रीतिकाल को भी नये नजरिये से देखने का प्रयास हो रहा है। हालाँकि ये कोशिशें नई नहीं हैं, किन्तु पहले की दृष्टियों में नवीनता नहीं है। शुक्लजी के इतिहास ने जो दायना बना दिया था, उसे लाँघने का साहस लोग पहले नहीं कर पाये। इसलिए यह पुनर्मूल्यांकन जरूरी भी है; क्योंकि यह आलोचना की प्रकृति, साहित्य के स्वरूप और इतिहास की दिशा से भी जुड़ा हुआ है।

विशेषकर स्वातंत्र्योत्तर आलोचना में घनानंद को लेकर राग बढ़ा। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, लल्लन राय और रामदेव शुक्ल के अध्ययन इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। उसका कारण कविता और साहित्य के प्रति नयी दृष्टि से था। पूर्व में शुक्लजी आदि ऐहिक कविता को परखने का दावा भर करते थे, पर विश्लेषण का उनका शिल्प पुरातन था। धर्म और कर्मकांड से प्रभावित उनकी आँखों में कविता का खुलापन खटकता था। जबकि नयी दृष्टि ऐहिक कविताओं को उनकी पूरी मांसलता के साथ परखने में तत्पर हुई। इस प्रसंग में आलोचक नंदकिशोर का अद्यतन अध्ययन विशेष उल्लेखनीय हैं अपनी पुस्तक 'रीतिकाव्य' में उन्होंने सूची रीतिकविता को फिर से परखने की कोशिश की है। घनानंद का मूल्यांकन भी उन्होंने सार्थक कसौटियों पर करने का प्रयत्न किया है। अपनी इस पुस्तक में उन्होंने घनानंद पर एक पूरा अध्याय लिखा है। बेहद सर्जनात्मक भाषा में वे लिखते हैं–

''घनानंद को केवल प्रेम और पीर का कवि या प्रेम के पपीहे या ब्रजभाषा प्रवीण कहना अपर्याप्त है। जरूरत है इस बात को कि कविता में उनकी निजस्वता पर उँगली रखी जाए और यथासंभव उसका कारण बतलाया जाए।''

नवलजी ने इस पूरे अध्याय में घनानंद की कविता का वास्तविक अर्थ निकालने की कोशिश की है। यह कोशिश स्तुत्य भी है। पर मुझे लगता है कि उनके विवेचन में पहले से बनी धारणाओं का उपयोग ज्यादा है, जबकि घनानंद की कविताओं और उनकी भाषा से निकलकर आनेवाले भाव और मुहावरे अछूते रह गये हैं। इसीलिए प्रस्तुत आलेख में घनानन्द की काव्यभाषा के संक्षिप्त निदर्शन की एक कोशिश की गयी है। शायद इससे उनकी कविता की शक्ति और उसकी प्रासंगिकता थोड़ा और उभरकर सामने आए।

वास्तव में घनानंद की काव्य प्रतिभा अर्जित है, प्राप्त नहीं। यह बात उन्हें उनके समकालीन कवियों से नितांत भिन्न बनाती है। ऐसा नहीं कि

औपचारिक काव्यकला की उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त थी, बल्कि सच यह था कि कविता की दुनिया में जब वे आये तो ज्ञान त्यागकर आए। कहें कि वे ज्ञानमार्ग से नहीं आए, अपितु प्रेममार्ग से आए। यही दरअसल वह अवतरण है जो एक कवि को आधिकारिक और प्रामाणिक बनाता है। उनकी यह प्रसिद्ध पंक्ति उनके समय लिखी जा रही कविता पर एक तीखी टिप्पणी है। बल्कि यह किसी भी समय में, किसी शास्त्र के अनुकरण पर लिखी जा रही कविता पर एक वजनदार आरोप है। यह हिम्मत उनसे लगभग दो सालों बाद हिन्दी में आये कवि निराला ने फिर दिखाई और लिखा–'मैंने मैं शैली अपनायी।' यह द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता पर एक तीखी टिप्पणी थी। बड़े कवियों को इतिहास शायद ऐसे ही मिलता है।

इसलिए शुक्लजी, शायद अनायास ही पर सही जगह, उँगली रख रहे थे कि घनानंद की कविता सर्वप्रथम एक ताकतवर और आधिकारिक पद्य के साथ–साथ विश्वसनीय भाषा है। आप इस पद्य और भाषा को उपेक्षित नहीं कर सकते। यहाँ तक कि उनकी ध्वनियों तक में आपको अर्थों की विकट गूँज सुनाई देगी, अनुभव का एक घना रचाव नजर आएगा। भाषा की ताकत, दरअसल उसके छंदों या उदात्त वाक्यों में ही मात्र नहीं होती, बल्कि वह इसमें होती है कि जीवन का अर्थ घनत्व उसमें कितना है और यह अर्थ जीवन के वास्तविक अनुभव से कितना एकमेक है। यही वह ताकत और आधिकारिकता है, जिसके बल पर घनानंद यह लिख सके–''रावरे रूप की रीति अनूप, नयो–नयो लागै, ज्यौं ज्यौं, निहारियै।' प्रेमभाव के इस सातत्य का वर्णन साहित्य में बहुत नहीं मिलते। बहुत पहल विद्यापति ने लगभग इसी भाव का एक छंद लिखा–'जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।'

उधर एक अर्थ में कभी शुक्लजी ने यह भी बिल्कुल सही ही कहा था कि घनानंद ब्रज के वैभव के कवि थे। एक तरफ सूरदास ने जहाँ ब्रज की भक्ति और किंचित् प्रेम में सानकर उसे बड़ा किया, तो वहीं घनानंद ने प्रेम की सृजनात्मक शक्ति भर उसे आधिकारिक और परिपक्व भाषा बना दिया। ब्रजभाषा को जैसे उन्हीं जैसे कवि की ही प्रतीक्षा थी।

भाषा की यह शक्ति, आधिकारिता और विश्वसनीयता ही उनकी कविता को उस मंजिल पर लाकर खड़ा कर देती है, जिसे प्रामाणिक कविता कहते हैं। यह कविता अधूरी नहीं होती, भाव भंग नहीं होती, विचार भ्रष्ट नहीं होती, अनुकरण धर्मी नहीं होती। इसके अर्थ का प्रकाश अद्वितीय होता है। इसके अनुभव अपरिचित होते हैं; क्योंकि ये कवि के जीवन से गहरे जुड़े होने के प्रतिफल होते हैं। पर कविता का अर्थ और जीवन का यह अनुभव एक–दूसरे से अपरिचित नहीं होते। वे परस्पर पूरक होते हैं। उनका प्रभाव समग्र होता है। यही दरअसल, अर्थ और अनुभव का अद्वैत है, जिसे हर बड़ी कविता की भाषा अर्जित करना चाहती है। सच कहें, तो रीतिकाल के पूरे परिवेश में घनानंद के जैसे बहुत कम ही कवि हैं, जिनकी भाषा में अर्थ और अनुभव का ऐसा अद्वैत मिलता है।

अर्थ और अनुभव की ऐसी एकरूप भाषा से घनानंद की पूरी कविता भरी पड़ी है, किन्तु उसका एक ही उदाहरण काफी है और वह उदाहरण अत्यन्त त्रासद है। शायद यह झूठ हो, गढ़ी गई बात हो, पर कथाओं पर विश्वास भी तो जमता है। कथा यह है कि संवत् 1796 में जब नादिरशाह की सेना की सिपाही मथुरा तक आ पहुँचे, तब कुछ लोगों ने उनसे कह दिया कि वृंदावन में बादशाह का मीर मुंशी रहता है, उसके पास बहुत–कुछ माल होगा। सिपाहियों ने इन्हें आ घेरा और 'जर जर जर' चिल्लाने लगे। घनानंद ने इसे उलटकर 'रज रज रज' कह तीन मुट्ठी धूल उनपर फेंक दी। उनके पास सिवा इसके और था ही क्या?सैनिकों ने क्रोध में आकर इनका हाथ काट डाला। इसके बाद कहते हैं कि मरते समय इन्होंने यह कवित्त पंक्तियाँ अपने रक्त से लिखीं–

बहुत दिनान की अवधि आस–पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को
कहि–कहि आवन संदेस मनभावन को
गहि गहि राखति ही दै–दै सनमान को
झूठी बतियानी को पत्यानि तें उदास ह्वै के
अब ते घिरत घनआनंद निदान को
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान
चाहत मिलन ये संदेशो लै सुजान को।

मृत्यु के समय प्रेम की तितीक्षा का ऐसा रूपक, अनुभव को उकेरती भाषा के साथ, मुझे और कहीं खोजने में नहीं मिला और भाषा में अर्थ और अनुभव की जरा एकतानता भी देखिए। अद्भुत है–
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान।

मृत्युबोध को भी भेदती और चुनौती देती एक जबरदस्त भाषा, जिसका सानी, आसानी से नहीं मिलता।

वस्तुतः प्रेम ही वह भूमि है, जिसके घनानंद चितेरे हैं। उनका मन यही रमता है। शुक्लजी ने माना है कि प्रेम के वियोग पक्ष के कवि हैं। यह सच भी है, किन्तु इस वियोग की उदात्तता की जड़ें संयोग में छिपी हुई हैं। संयोग के इस पक्ष में उनकी भाषा जीवन के राग और मोह का अद्भुत चित्र उपस्थित करती है। सुजान हित का पहला ही छंद देखें–
रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे
दिठी थकी अनुराग छकी मति लाज के साज समाज विसारे
एक अचंभौ भयो घनआनंद हैं नित ही पल पाट उघारे
टारे टरे नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन मोह के तारे।

जाहिर है कि ऐसा तीव्र राग ही बाद में सान्द्र वियोग में तब्दील हो जाता है, किन्तु वियोग की प्रभुता को ठीक से समझने के लिए यह भी समझ लें कि घनानंद का यह संयोग व्यभिचारी प्रकृति का नहीं है। समय और समाज उसमें उपस्थित है। उनका प्रेम ऐकान्तिक नहीं है, वरन् अंतर–क्रियात्मक है। सुजान के प्रति प्रेम भावना समाज और संसार को भी सुंदर बनाती है। आश्चर्य है कि उनकी भाषा यहाँ भी वही रागात्मक तेवर अपनाए रखती है। वृंदावन भूमि के प्रति उनके प्रेम की भाषा की यह बानगी देखें–
गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो सदा
सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहि रे
अद्भुत अभूत महिमण्डन, परे तें परे
जीवन को घन छायो रहत निरंतर ही
सरस सुदेस सो पपीहापन बहि रे
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे।

संयोग में बेतरह लिप्तता, जाहिर है, नश्वर जीवन में वियोग के अतल गहराई में ले जाएगी। किन्तु घनानंद की कविता वियोग के इस सागर में भी निराशा के गह्वर में नहीं है। उसकी भाव उच्चता देख मनोविज्ञान के आधुनिक सिद्धांतों पर से भी विश्वास उठ सकता है। वैसे यह मौजूँ भी है। कवियों की इसी अंतर्दृष्टि की ओर लक्ष्य करके एक प्रसिद्ध मनस्तत्त्ववेत्ता ने कभी कहा है कि भावों या मनोविकारों के स्वरूप परिचय के लिए कवियों की वाणी का अनुशीलन जितना उपयोगी है उतना मनोविज्ञानियों के निरुपण का नहीं।

घनानंद का वियोग वर्णन अद्वितीय है। उन्होंने न तो बिहारी की तरह विरहताप को बाहरी माप से मापा है, न बाहरी उछल–कूद दिखायी है, जो कुछ हलचल है वह भीतर की है, बाहर से वह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज की आग की तरह तपना है, न उछल–उछलकर भागना है। उनकी 'मौनमधि पुकार है।'

वियोग की इसी सेज पर उनकी भाषा का औदात्त देखते ही बनता है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था, वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गयी थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ–साथ जिस रूप में चाहते थे, उस रूप में मोड़ देते थे। उनके हृदय का योग पाकर भाषा की नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखायी पड़ी। जब आवश्यकता होती थी, तब ये उसे बँधी प्रणाली पर से हटाकर अपनी नयी प्रणाली पर ले जाते थे। भाषा की पूर्व अर्जित शक्ति से ही काम न चलाकर इन्होंने उसे अपनी ओर से नयी शक्ति प्रदान की है। घनानंदजी उन विरले कवियों में हैं, जो भाषा की व्यंजकता बढ़ाते हैं। अपनी भावनाओं के अनूठे रूप–रंग की व्यंजना के लिए भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करनेवाला हिन्दी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ। भाषा के लक्षक और व्यंजक बल की सीमा कहाँ तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर फैलाया। एक घनानंद ही ऐसे कवि हुए, जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगायी। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोगवैचित्र्य की जो छटा दिखाई पड़ी, वह अभी तक अप्राप्त ही है।

दरअसल, भाषा का लाक्षणिक प्रयोग घनानंद के अभिव्यंजना शिल्प का प्रमुख गुण है। कवि ने इसके बल पर अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता बढ़ा ली है। इसमें वक्रता और असाधारणता का चमत्कार भर दिया है। साथ ही बिम्बयोजना के काव्य– सौंदर्य की योजना भी कर ली है। लक्षणा, शब्द के प्रसिद्ध अर्थ में दूसरे अर्थ के आरोप से बनती है। उससे प्रसिद्ध अर्थ (वाच्यार्थ) के अतिरिक्त आरोपित अर्थ भी प्रतीत होने लगता है। 'रस निचुरत मीठी मृदु मुसकान में', 'अंग–अंग तरंग उठै दुति की' प्रयोगों में नायिका की मुसकान ऐसी मोहक है, जैसे किसी रसीली वस्तु में से रस टपकता हो और नायिका के अंगों में यौवन का सौंदर्य जल की तरंगों के समान लहरा रहा है आदि आरोपित अर्थ प्रतीत होते हैं। दोनों प्रयोगों में 'रस निचुरत', 'तरंग उठै' क्रियापदी द्वारा आरोप किया गया है। दोनों स्थलों पर बिम्ब भी बनता है और व्यंग्यार्थ की प्रतीति से भाव के प्रेरण की क्रिया उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार लक्षणा के द्वारा कवि ने अभिव्यंजना का क्षितिज बहुत विस्तृत कर लिया।

घनानंद की अभिव्यक्ति में पद–पद पर लक्षणा का प्रयोग हुआ है। मुहावरों की प्रचुरता भी लक्षणा के प्रसंग में ही प्रयुक्त है। मुहावरे रूढ़ा लक्षणा का रूप ही हैं। कवि की अभिव्यक्ति में विरोध का चमत्कार लक्षणा और मुहावरों के प्रयोग से ही आया है।

लक्षणा में वाच्यार्थ पर लक्ष्यार्थ का आरोप है। इस स्थिति में वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ के साथ–साथ प्रतीति का विषय बनता और कहीं उसका त्याग हो जाता है। इसी को जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था कहा जाता है। स्वार्थ अर्थात् वाच्यार्थ का जहत् अर्थात् त्याग अजहत् अर्थात् त्याग का न होना यानी प्रतीत होना। घनानंद के लाक्षणिक प्रयोगों में लक्ष्यार्थ के साथ–साथ वाच्यार्थ की प्रतीति को लेकर विरोध प्रतीत होता है।

क. जतन बुझे हैं सब जाकी झर आगें
ख. जीव सूक्यौ जाय त्यौं त्यौं भीजत सरवरी
ग. उघरौ जग छाय रहे घनआनंद चातक लौं तकिये अब तौ
घ. यौं उघरे घनआनंद छाय कैं हाय परी पहचानि पुरानी
ङ. अचिरघ खानि उघरे हू लाज सौं ढके।

इन प्रयोगों में लक्षणा और उसके बल पर विरोध का चमत्कार व्यंग्य हुआ है। जतन बुझना अर्थात् यत्नों का निष्फल होना, जीव का सूकना अर्थात् पीड़ित होना, सरवरी का भीजना अर्थात् रात का ढलना, उघरौ जग अर्थात् संसार का हट जाना, छाय रहे घनआनंद अर्थात् आनंद के बादल (परम सत्ता या प्रिय) दृष्टि में बने रहना आदि में रूढ़ा लक्षणा अर्थात् मुहावरों का प्रयोग है।

लक्षणा के प्रयोग से वास्तव में बिम्बविधान बड़ी सफलता के साथ होता है। आरोपित वस्तु अर्थात् अप्रस्तुत वस्तु प्रस्तुत का चित्र खड़ा कर देती है। लक्षणा का काव्य में दुहरा लाभ होता है– बिम्बविधान और चमत्कार की व्यंजना। घनानंद ने दोनों लाभ उठाये हैं। सबल लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा संश्लिष्ट चित्र की योजना नीचे लिखे सवैया में देखने योग्य है–

'झलकै अति सुंदर आनन गौर छके दृग राजत काना छ्वै
हँसि बोलनि में छवि फूलन की बरषा उर ऊपर जात है ह्वै
लट लोट कपोल कलोल करें, कल कंठ बनी जललावलि द्वै
अंग–अंग तरंग उठे दुति की परि है मनौ रूप अबै धर च्वै।'

पद में 'झलकै', 'छके दृग', 'छवि फूलन की बरसा', 'लट लोल कपोल कलोल करें', 'तरंग उठे दुति की', 'परि है मनो रूप अबै धर च्वै' लाक्षणिक प्रयोग है। इसी तरह अभिधा मूला व्यंजना के ये उदाहरण देखें–

क. 'जो दुखदेखति हौं घनआनंद रैनि दिना बिन जान सुतंवर
जानें वेई दिनाराति बखानै लैं जाय परै दिन रात को अंतर'
ख. 'इत बाँट परी सुधि रावरे भूलनि, कैसें उराहनौ दीजिये जू'
ग. 'जौ कीहूँ जान लखैं घनआनंद तौ तन नेकुन औसर पावत
कौंन वियोग भरे अँसुवा जो संजोग में आगेड़ धावत'
घ.' यौं घनआनंद रैनि दिना नहिं बीतत, जानियै कैसे बिताऊँ।'

काव्यभाषा की यह बहुस्तरीयता घनानंद की कविता में भरी पड़ी है तथा उसपर गहन शोध की जरूरत है। सच कैं तो वियोग के उनके कवित्त हिन्दी की शब्द–संपदा में अर्थ का जो प्राण फूँकते हैं, वही बाद की प्रेम कविता की थाती बनती है।

वस्तुतः कोई भी भाषा सर्वप्रथम समाज में पड़ी एक आम भाषा ही होती है। कविता वह तभी बनती है, जब उसमें कवि के व्यक्तित्व की आँच और जीवन के अनुभवों का ताप मौजूद हो। घनानंद इस दृष्टि से, जैसा कि मैंने पहले कहा–एक आधिकारिक कवि हैं। बाह्य प्रभाव उनमें ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेंगे। जो है सब उनका है। इसीलिए आत्माभिव्यक्ति उनके कहने का जादू है। वह अपने सुख–दुःख, विचार, अनुभूति आदि को अपना व्यक्तित्व बनाकर ही व्यक्त करते हैं। उनके कवित्त प्रायः उत्तम पुरुष की भाषा में ही व्यक्त हैं–

'इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि, कैसे उलाहनौ दीजिये जू
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मनभाई सुकीजिये जू
घनआनंद जीवन प्रान सुजान, तिहारियै बातनि जीजिये जू
तिन नीके रहौ, तुम्हें चाड़ कहा, पै असीस हमारियौ जीजिये जू।'

(प्रिय, हमारे बाँट अर्थात् हिस्से में याद करते रहना आया है और आपके हिस्से में भूल जाना। ऐसे में आपको उलाहना भी कैसे दें! अब तो भाग्य ने जो दिया है, वह मैंने सिर चढ़ाकर आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया है। अब आपको जो अच्छा लगे, वह करो। घनानंद सुजान, मेरे तुम प्राणों के भी प्राण हो। मैं तुम्हारे बातों के सहारे ही जीवित हूँ। तुम्हें तो किसी बात की चाहना नहीं है, फिर भी हमारी यह आशिष स्वीकार करो कि आप सदा प्रसन्न बने रहें।)

प्रेम का, चाहे वह संयोग मं हो या वियोग में, संभवतः यही लक्ष्य है। इसे व्यक्त करने में घनानंद की भाषा, भावों से कहीं भी पीछे नहीं है। भाषा ब्रज की है, पर इसने कितने हिन्दी कवियों को शब्द और उसके प्रयोग के शिल्प दिये हैं, इसकी शिनाख्त अब जरूरी है।

जीवनी साहित्य

विलक्षण व्यक्तित्व 'स्टीव्ह जोब्झ'

डॉ. अनंत वडघणे
हिन्दी विभागाध्यक्ष
डॉ. अ. साहब महा वि. मराठवारा, माहाराष्ट्र
मो. 8554006708

आसमान के नक्षत्र एवं तारे यह,
अगर मेरा भविष्य तय करते हो,
तो मेरे बाहु एवं दिमाग का क्या उपयोग

स्वामी विवेकानंद के इस वाक्य में मनुष्य को बदलने में भविष्य या हस्तरेखा की नहीं, बल्कि अपने कार्यकुशल बुद्धि एवं मेहनत की आवश्यकता है। इस बात को जिसने अपने जीवन में उतारा, वह व्यक्ति कामयाबी के उच्च शिखर पर पहुँचा है, जिनमें हम कुछ लोग देखते हैं, जिन्होंने साहित्य, कला, विज्ञान, राजनीति, उद्योग आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपने कामयाबी की मिसाल खड़ी की है। अपने आचाट मेहनत के बल पर सफलता की दिशा में मार्गक्रम किया है। डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का एक सुवासित है कि 'जो नींद में देखे जाते हैं, वे सपने पूरे नहीं होते, बल्कि जो हमारी नींद हराम करते हैं, वह सपने साकार होते हैं।' ऐसे ही अपने सपनों का साकार रूप देने के लिए नींद हराम करनेवाले कर्म पुरुष है स्टीव्ह जॉब्झ। जिन्होंने शून्य से शुरुआत कर दुनिया को नामांकित एप्पल, नेक्स्ट जैसे कंपनियों की स्थापना की और कंप्यूटर, लैपटॉप, मोबाईल क्षेत्र में क्रांति लायी। जो आज दुनिया के प्रसिद्ध कंपनियों में अपना अलग स्थान रखती है। ऐसे कर्मयोगी युगपुरुष का जीवन भी अनेक पड़ावों की उपज है। जो केवल हमें आदर्श ही नहीं, बल्कि जीवन जीने की ऊर्जा प्रदान करता है। कर्मयोग का पाठ पढ़ाता है। बाजारीकरण के समय में नैराश्य से ऊपर उठकर व्यक्तित्व की पहचान कराता है। ऐसे व्यक्तित्व के जीवन को हमारे सामने प्रभाविता से लाने का कार्य जीवनी साहित्य करता है। इस जीवनी में स्टीव्ह जॉब्झ के जीवन को बड़ी बारीकी से उभारा है।

स्टीव्ह जॉब्झ का जन्म 24 फरवरी, 1955 में हुआ। जो बिन ब्याही माता–पिता की संतान है। इस कारण कुछ ही दिनों बाद ही उन्होंने अपने बेटे का क्लारा और पॉल इस दाम्पत्य को गोद दिया। इस कारण स्टीव्ह जॉब्झ का लालन–पालन इन्होंने ही किया। पॉल पुरानी गाड़ियाँ खरीदकर उसे ठीक–ठाक बनाकर बाजार में बेचते थे। इसी कार्य में उन्हें पुरानी गाड़ियों के गोदामों में जाकर सामान इकट्ठा करना पड़ता था। इसलिए वस्तु को एक–दूसरे से जोड़ने का कार्य उन्हें वहीं से सीखने को मिला। गाड़ियों से जुड़ी कुछ इलेक्ट्रॉनिक्स वस्तुओं की जानकारी पिता पॉल को थी। स्टीव्ह जॉब्झ कहता है कि ''उन्हें इलेक्ट्रॉनिक्स संदर्भ में पूर्ण ज्ञान न होने पर भी स्वयंचलित गाड़ियों की दुरुस्ती में लगनेवाले अन्य इलेक्ट्रॉनिक्स का ज्ञान उन्हें था। उसका प्राथमिक ज्ञान मुझे उन्होंने ही दिया।''1 स्टीव्ह जॉब्झ बचपन में बहुत उद्दंड स्वभाव का था। इस कारण स्कूल में भी अलग–अलग शरारतें नित करता, जिसके कारण उसके गुरु भी तंग आ गये थे। जैसे इस समय मैं और रिक फॅरेनटिनो नाम का खास मेरा दोस्त, हम मिलकर अलग–अलग तरह की शरारतें कर उलझन में फँसते थे। कभी–कभी हम 'आपके घर के पशुओं–पक्षियों को स्कूल में लाने का दिन' इस तरह की सूचना सूचनाफलक पर लगा देते थे, जिसके कारण बच्चे अपने घर के सभी पशुओं को स्कूल में लाते।''2 इस तरह स्कूल में कोई–न–कोई कार्य करते जिससे स्कूल के अध्यापक भी परेशान होते थे। किन्तु एक अध्यापिका उसकी उद्दंता को अध्ययन में बदलने में सफल हो गयी। यथा–''एक दिन उन्होंने मुझे स्कूल छूटने के उपरांत गणित का वर्कबुक दिया और वह घर ले जाकर उसमें के गणित हल करने को कहा। मैं पूरी तरह परेशान हुआ, तब उसने बहुत बड़ा लालीपॉप और पाँच डालर्स ऐसा इनाम तुझे दूँगी। तब दो दिनों में वह गणित मैंने हल किये। कुछ महीने ऐसे ही चलता रहा, उसके बाद मुझे किसी प्रलोभन की आवश्यकता नहीं रही। वह कहता है कि मुझे और सीखना था और मेरे अध्यापिका को खुश करना था।''3 इस तरह एक प्रभाव गुरु के कारण स्टीव्ह जॉब्झ को सही रास्ता मिल गया और गणित के प्रति रुचि बढ़ती गयी। आगे स्नातक में प्रवेश लिया, किन्तु माता–पिता के समस्त जीवन में इकट्ठा की पूँजी का अपव्यय और शिक्षा के बाद निश्चित धैर्यपूर्ति की संभावना न देखकर शिक्षा को ही वहीं पर छोड़ दिया। जैसे–''मेरे रात–दिन मेहनत करनेवाले माता–पिता की पूरी आयु की जमापूँजी मेरी शिक्षा पर खर्च हो रही थी। मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है, इसकी मुझे कल्पना नहीं थी और कॉलेज की शिक्षा मुझे मंजिल प्राप्त करके देगी, इसकी कोई गुंजाइश नहीं थी। पूरे जीवनभर इकट्ठा किया धन को मैं खर्च कर रहा था, इसलिए मैंने शिक्षा को अलविदा कहा।''4 उसके पश्चात् स्टीव्ह जॉब्झ 'अतारी' इस व्हिडियो गेम्स बनानेवाली कंपनी में नौकरी करने लगे, किन्तु स्टीव्ह जॉब्झ का व्यक्तित्व एक जगह स्थिर रहनेवाले व्यक्तियों में नहीं था। वहाँ परवे आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हुए और भारत में अपने गुरु 'कारोली बाबा' की खोज में निकल पड़े; किन्तु वह आने के पूर्व गुजर चुके थे। अतः दिल्ली, हरिद्वार जैसे स्थलों पर घूमते रहे, जहाँ उन्होंने यहाँ की संस्कृति का गहराई से अध्ययन किया। वे भारत के संदर्भ में कहते हैं कि ''मैं जब भारत गया, तब जो सांस्कृतिक झटका लगा, उससे बड़ा झटका फिर से अमेरिका जाने के बाद लगा। भारतीय गाँवों के लोग अपने जैसे बुद्धि का उपयोग नहीं करते, उनका लगाव आंतरज्ञान की ओर अधिक होता है और उनकी क्षमता दुनिया के अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है। मेरे मतानुसार–अंतःप्रेरणा यह शक्तिशाली बातें हैं। बुद्धि से बलशाली! इसका मेरे कार्य पर बहुत परिणाम हुआ।''5 इस तरह भारत एवं यहाँ की आध्यात्मिकता ने उन्हें गहरे रूप में प्रभावित किया।

स्टीव्ह जॉब्झ ने अपने मित्र वॉझनियॅक को साथ लेकर 'एप्पल' कंपनी की स्थापना की, जो आज कंप्यूटर, लेपटॉप, मोबाईल जैसे क्षेत्रों में विश्वविख्यात है। ऐसे स्टीव्ह जॉब्झ का जीवन भी अत्यन्त साधारण किन्तु संघर्ष एवं दुनिया में कुछ नया करने की चेतना से भरा हुआ है। अपने अचाट इच्छाशक्ति और उसके प्रति लगन की दास्तान का सच्चा रूप इस जीवनी में हमें दिखाई देता है। एप्पल इस इलेक्ट्रॉनिक्स कंपनी के एप्पल नामकरण के संदर्भ में लिखा है कि ''अब खुद का उद्योग शुरू करना ही तो कंपनी के लिए नाम जरूरी होता है, उस समय जॉब्झ 'आल वन फर्म' को देखने गया था। जहाँ वह 'शेप' के पेड़ की कटाई का कार्य करता था।.. 'मॅट्रिक' जैसा

तकनीकी नाम या 'एक्झेक्यूटेक' जैसा नाम या साधारण 'पर्सनल कंप्यूटर्स' इस तरह के नाम उनके सामने आए। दो दिन में नाम रखना था और कागजात बनवाने थे। अंत में जॉब्झ ने नाम तय किया 'एप्पल कंप्यूटर'।''6 इस तरह कंपनी को एप्पल नाम दिया गया। यह कंपनी शुरुआती दौर में 'लॉस आल्टॉ' के अपने घर में शुरू की थी। उस कंपनी को जब पहला आर्डर मिला था। उसके संदर्भ में लिखा है–''ॲपल–1 50 बोर्ड्स 30 दिन में बनवाकर दिये तो ही नगद रकम मिलनेवाली थी। जितने लोग मिले उन सभी को काम पर लगाया गया। जॉब्झ, वॉझ के साथ–साथ डॅनियल कोटके आश्रम छोड़कर आयी, उसकी प्रेमिका एलिझाबेथ होम्स और जॉब्झ की गर्भावस्था की बहन पॅटी। पॅटी के विश्राम का कमरा, खाने का टेबल और गैरेज इन सबका रूपांतर कार्याशाला में हुआ।''7 इस तरह स्टीव्ह जॉब्झ ने अपने घर से कंपनी की शुरुआत की, जिसने 1977 में आते–आते 2500 कंप्यूटर का विक्रय और 1981 में 210000 तक विस्मयकारी आंकड़ा पार किया। इस तरह छोटी–सी कंपनी दुनिया के मशहूर कंपनी में एक बन गयी।

स्टीव्ह जॉब्झ काम के प्रति सजग थे। हर कार्य में समर्पण होना चाहिए, यह सदैव प्रयत्न उनका रहता था। उनके स्वभाव को लेकर उनके साथ कार्य करनेवाले ॲटकिन्सन कहते हैं कि ''सही रूप में देखें तो उसे तालमेल की बात जँचती नहीं थी। सबको जी जान से काम करना चाहिए, इस बात का वह सदा आग्रही था। जब कोई अपनी तरफ सौंपा हुआ कार्य ठीक ढंग से नहीं करता तो वह व्यक्ति उसे बेमतलबी लगता था।''8 उनके पास व्यक्ति को पहचानने की कला अद्‌भुत थी। कार्यकुशल व्यक्ति को पहचानकर उसकी प्रतिभा को कार्य में उतारने में वह सिद्धहस्त थे। साथ ही कोई व्यक्ति दिखावटी हो तो भी उसे सहजता से पहचानते थे। जैसे–''लोगों के मन की बात जानने की, उसकी मानसिक बलस्थान और कमजोरी पहचानने की गूढ़ क्षमता उसमें थी। किसके पास सचमुच ज्ञान है और कौन केवल दिखावटी है, यह उसे सहज रूप में समझ आता था।''9 इसी के साथ समय को वे बहुत महत्व देते थे। इसलिए कंप्यूटर में भी उपभोक्ता को अधिक–से–अधिक सुविधा मिले और उस कंप्यूटर की कार्यप्रणाली भी तेज हो, यह आकांक्षा उसकी रहती थी। यथा–''मॅकइनटॉश ऑपरेटिंग सिस्टम' का काम करनेवाला 'लेरी केन्यन' इंजीनियर के काम के संदर्भ में कहा कि आपने जो कंप्यूटर बनाया है, वह शुरू होने में अधिक समय लेता है। जॉब्झ फलक के पास गया और एक गणित लिखाकर बताया कि अगर 50 लाख लोग 'मॅकइनटॉश' का उपयोग करते हो और हर दिन हर एक को शुरू करने हेतु दस सेकेंड अधिक लगते हैं, तो उसके कुल घंटे वर्ष को 300 दस लक्ष। इसका अर्थ इस कंप्यूटर का उपयोग करनेवाले व्यक्ति इतना समय बचा सकते हैं। मतलब वे साल में कम–से–कम सौ लोगों की जिंदगी बचाने जैसा है।''10 इसके अलावा उसने वस्तु निर्मिती में सरलता, सहजता, नवीनता, समाज उपयोगिता जैसी बातों पर भी काफी ध्यान दिया। वे अपनी कंपनी में कार्य करनेवाले हर व्यक्ति को भी इन तत्वों को आत्मसात करने का आग्रह रखता था। वह कोई भी वस्तु बनाने के पूर्व उस वस्तु के बारे में विभिन्न अंगों से विचार करते, उसकी बाहरी बनावट से लेकर अंदरी कार्यप्रणाली तक सभी बातों का ध्यान रखते थे। उनके इसी आग्रह के कारण कई बार कंपनी के अन्य सदस्यों के नाराजगी का भी कारण बनना पड़ा और एप्पल से भी उसे निष्कासित किया गया। पर उन्होंने अपने कार्य को मनचाहा रूप देने हेतु 'नेस्ट' जैसी नई कंपनी शुरू की और कार्यशक्ति को मृत रूप दिया।

उन्होंने जीवनभर दुनिया को कुछ अलग देने का प्रयास किया। लेखक वाल्टर आईसेक्सन ने कहा कि 'एक ऐसे क्रिएटिव व्यवसायी थे, जिनके परफेक्शन के लिए जुनून ने इस छह उद्योगों में क्रांति ला दी : पर्सनल कंप्यूटर, कार्टून फिल्म, संगीत, टैबलेट और डिजिटल पब्लिशिंग।''11 उनके इसक कार्यकुशल व्यक्तित्व को लेकर 'माइक्रॉसॉफ्ट' कंपनी के अध्यक्ष बिल गेट्स कहते हैं–''दुनिया में किसी एक व्यक्ति द्वारा इतना जबर्दस्त प्रभाव डाले जाने की मिसालें दुर्लभ ही होती हैं, जैसा कि स्टीव्ह जॉब्झ ने डाला। उनके योगदान का प्रभाव अपनेवाली कई पीढ़ियाँ भी महसूस करेंगी। विलक्षण थे स्टीव जॉब्झ। वे सामान्य वैज्ञानिकों, तकनीक विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं, विद्वानों, अन्वेषकों, आविष्कारकों, उद्यमियों में नहीं गिने ज सकते। वे तो यह सब कुछ थे, बल्कि उससे भी कहीं अधिक एक भविष्यद्रष्टा। हर कोई उनके जीवन से कितना कुछ सीख सकता है। तकनीक में वे शीर्ष पर पहुँचे, डिजाइन में उनका कोई सानी नहीं था।''12 ऐसे ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति को कई पुरस्कारों में सम्मानित किया गया, जिनमें 1982 में टाइम मैगजीन ने उनके द्वारा बनाये गए एप्पल कंप्यूटर को 'मशीन आफ दि इयर' का खिताब दिया। सन् 1985 में उन्हें अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा 'नेशनल मेडल आफ टेक्नोलॉजी' 2007 में फार्चून मैगजीन ने उन्हें उद्योग में सबसे 'शक्तिशाली पुरुष' का खिताब दिया। 2010 में जॉब्झ फोरब्स पत्रिका में उन्हें अपना 'पर्सन आफ दि इयर' चुना और मार्च 2012 में, वैश्विक व्यापार पत्रिका फार्चून ने उन्हें शानदार दूरदर्शी, प्रेरक बुलाते हुए हमारी पीढ़ी का सर्वोत्कृष्ट उद्यमी का नाम दिया। जॉन कार्टर और ब्रेव नामक दो फिल्में जाब्झ को समर्पित की गयी है।

इस तरह ज्ञान प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांति लानेवाले युगपुरुष का 5 अक्टूबर 2011 को देहावसान हुआ, किन्तु आनेवाले कई पीढ़ियें को अपने कार्य के द्वारा मार्गदर्शन करते रहेंगे। उनका जीवन संघर्ष का पाठ है, जो वर्तमान और भविष्य की कई पीढ़ियों को वे पथप्रदर्शक बन सकता है। वर्तमान बाजारीकरण के युग में एक ओर युवक अपने आपको असहाय समझ रहा है, किन्तु अगर स्टीव्ह जॉब्झ के जीवन को पढ़े तो जीवन में कुछ और कर दिखाने की प्रेरणा पा सकता है।

1. स्टीव्ह जॉब्झ, अनु. विलास सालुंके पृ. 45
2. वही, पृ. 21
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 49
5. वही, पृ. 57
6. वही, पृ. 70–71
7. वही, पृ. 75
8. वही, पृ. 132
9. वही, पृ. 131
10. वही, पृ. 133
11. ीजजचरूध्धूणींइंतपदकपंजअण्बवउ
12. ीजजचरूध्धूमांकजपउमेण्बवउध्तबीपअमेध्3592

समीक्षा

हिन्दीकाव्यालोचन : एक अध्ययन

दयानन्द जायसवाल
9931240303

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में डॉ. तपेश्वरनाथ जी का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपनी निष्ठा और लगन के बल पर हिन्दी आलोचना, शोध एवं चिंतन के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनायी है। हिन्दी काव्यशास्त्र तथा भक्ति रसशास्त्र को ऊँचाई के शिखर तक पहुँचाने में इन्होंने सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही समीक्षाओं को समाविष्ट कर अपने 'हिन्दी काव्यालोचन' कृतित्व को एक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत किया है। समय के ऐसे बहाव में इनका प्रवेश हिन्दी काव्यालोचन के क्षेत्र में हुआ, जहाँ घिसी–पिटी परंपरा को पालकर आलोचना की नैया को पार लगा लिया जाता है, लेकिन वहाँ भी इन्होंने अपनी सूझ–बूझ के साथ साहित्य की समीक्षाएँ कीं। ऐसा कहा जा सकता है कि हिन्दी काव्यालोचन में इनका प्रवेश दबे पाँव और बिना किसी शोर–शराबे के हुआ। इस ग्रंथ में इन्होंने भाषा और संस्कृति, भक्तिरसशास्त्र, रीतिकालीन भक्ति शृंगार, भाव, रस, अभिव्यंजनावाद, डॉ. द्विवेदी की कृष्ण–भाव रस–चिंतन धारा, निराला की 'जुही की कली' : कामदी नहीं, त्रासदी तथा मुक्तिबोध की जुबानी में, अपनी काव्य–समीक्षा की वैचारिकी प्रकट की है। साथ ही साथ समीक्षाओं में नूतन बोध की संभावनाओं को कैसे पैदा किया जाए, उस बारे में इन्होंने पाठकों के मन में जिज्ञासा को उद्‌भूत किया है।

काव्यशास्त्र काव्य और साहित्य का दर्शन तथा विज्ञान है। यह काव्यकृति के विश्लेषण के आधार पर समय–समय पर उद्‌भावित सिद्धांतों की ज्ञानराशि है। काव्य, मनुष्य चेतना की महत्तम सृष्टि है। काव्य का लक्षण निर्धारित करना ही काव्यशास्त्र का प्रयोजन है। लक्षण का अर्थ है–'असाधारण अर्थ।' वस्तुतः कोई कृति है या नहीं, यह जानना आवश्यक है कि उसका साहित्यिक दृष्टिकोण क्या है तथा उसका असाधारण धर्म क्या है, जिसमें काव्य 'काव्य' कहलाता है। भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई, यह जानना हमारे लिए महत्वपूर्ण बात है; क्योंकि इसकी उत्पत्ति से हमारे समाज की प्रगति की विकास–यात्रा जुड़ी है। इस संदर्भ में एक बात तो इन्होंने साफ कर दिया है कि यदि भाषा की दैवी उत्पत्ति हुई होती तो सारे संसार की एक ही भाषा होती तथा बच्चा जन्म से ही भाषा बोलने लगता। इससे सिद्ध होता है कि जैसे–जैसे भाषा विज्ञानियों की खोज आगे बढ़ती गई यह अंधविश्वास दूर होता गया। भाषा की प्रथम इकाई अक्षर या वर्ण को माना। हमारी वर्णमाला अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसके उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर कंठ से शुरू होकर ओठ तक आनेवाली जिह्वा की वर्तुलता से उच्चरित वर्णों की ध्वनि तथा स्वर–व्यंजन समूह को वर्णमाला मानकर वैज्ञानिक पद्धति से निर्मित शब्द–अर्थ संहित को भाषा का विकास स्वरूप बताया है। पुनः आचार्यों ने ध्वनि–संचार की सूक्ष्म तरंगों को सहृदय मर्मज्ञों तक पहुँचाने के लिए वाणी के असंख्य प्रकारों की कल्पना की। इस प्रकार इन्होंने भाषागत विस्तृत विवेचन के उपरांत कुछ संस्कृति की भी चर्चा की है कि 'भाषा यदि फूल है तो संस्कृति सुरभि। भारतीय संस्कृति को सामासिक मानी गयी है। हम अपनी परहित कामी, बहुजन सुखाय, उदार संस्कृति या विश्व–मानवतावादी संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं।'

भाषा किसी व्यक्ति, समाज, संस्कृति या राष्ट्र की पहचान होती है। वास्तव में भाषा एक संस्कृति है, उसके भीतर भावनाएँ, विचार और सदियों की जीवन–पद्धति समाहित है। यह परंपराओं और संस्कृति से जोड़े रखने की एकमात्र कड़ी है। याद रखिए, आप किसी भाषा से सिर्फ शब्द भंडार नहीं ले सकते, उसके साथ आपको उसका समूचा संसार, उसकी संस्कृति, उसका संस्कार भी बरबस लेना पड़ता है। भाषा एक सामाजिक व्यवस्था है। समाज ही भाषा के व्यवहार, भाषा के रूप तथा उसकी उच्चारणिक, व्याकरणिक तथा अर्थगत एवं लिपिगत संरचनाओं का नियम निर्धारण करता है। समाज जितना बड़ा होता है, उसकी भाषिक क्षमता भी प्रायः उतनी ही व्यापक हुआ करती है। खासकर हिन्दी भाषा में विश्व की सामाजिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने की क्षमता है।

काव्यशास्त्र में भक्तिरस का उल्लेख लोक विचारधारा और भाव–संपदा के लिए इन्होंने रसशास्त्र में भक्ति को साहसपूर्ण परिवर्तित और समाविष्ट किया है। किसी भी भाषा साहित्य में लक्षण–निर्माण उसके लक्ष्य ग्रंथों के आधार पर होता है। आलोचना रचना की प्रमुख प्रवृत्तियों को लक्ष्य कर ही अपने मानदंड बनाती है। 15वीं से 18वीं सदी के मध्यकालीन साहित्य विपुल भक्तिकाव्य के समानांतर संस्कृत काव्यशास्त्र ऐसी व्यापक और मान्य कसौटी पर बना सका जो भक्तिरससिक्त काव्य–संपदा का सम्यक् मूल्यांकन हो सका है। आप जानते हैं कि रस के समस्त निष्पादक अवयवों के रहते हुए भी पूर्ववर्ती पंडितों ने काव्यशास्त्र में भक्ति को रस न मानकर भाव ही माना है, किन्तु इनका कहना है कि 'निःसंदेह कुछैक कवि ऐसे हैं, जिनका राजदरबार और राम–कृष्ण–दरबार से बराबर का संबंध था। इसलिए उनमें भक्ति और रीति दोनों प्रवृत्तियों की धूप–छाँह मिलती हैं। उत्तर मध्यकाल की इस प्रवृत्ति को सूक्ष्म शृंगारिक स्वरूप शृंगार को केन्द्र मानकर इनके तीन अंतर्वर्ग किये जा सकते हैं–भक्ति शृंगार, स्वच्छंद शृंगार और रीति शृंगार। भक्ति शृंगार के कवि प्रेम दरबारी हैं, जिन्होंने राम–कृष्ण युगल सरकार की लीला केलियों का कुंजविहार के नाम से रसात्मक चित्रण किया है, जिसका साहित्य के इतिहासकारों ने अनदेखी की है। उसी प्रकार स्वच्छंद शृंगार और रीति शृंगार के कवियों में भी प्रेम की अपेक्षाकृत मार्मिक और सघन अनुभूति लक्षित हुई, जिसमें शृंगार से चलकर प्रेम को मधुर रस तक पहुँचाने में यथेष्ट सफलता अर्जित की है। रसखान इसके पुरोधा हैं। कृष्ण इनके प्रेम–देव हैं। इनकी 'प्रेम की पीर' अनोखी और अनन्य है। रीति शृंगारी में कृष्ण इनके शृंगार–नायक हैं। राधाकृष्ण लौकिक रतिभाव के आश्रयालंबन नायक–नायिका हैं। संतों भक्तों की रचनाओं में निजी अंतस् का आवेग है और आराध्य के प्रति प्रेम समर्पणकारी है। एक का आलंबन यदि नर है तो दूसरे का नारायण है। अतएव भक्तिकाव्य की सम्यक् समीक्षा में अपर्याप्त पाये जानेवाले काव्यशास्त्र को छोड़कर इन भक्ति के रसवाद आचार्यों ने नया रसशास्त्र रचा और कुछ पुराने मानदंडों में परिवर्धन–परिशोधन कर उनका काया कल्प किया। रसाचार्य रूपगोस्वामी ने भी प्रेम–सूर्य की किरणों से भाव (रति) की उपमा दी है। यह प्रेमांकुर रीति रसरूप ग्रहण करती है। यह भक्तिरस–चिंतन की प्रारंभिक चेष्टा का सूचक है, जिसे चैतन्य मतवादी रस–चिंतकों से काव्यशास्त्र की रीति से भिन्न रस–चिंतन

को उद्घाटित किया है।

भक्ति भगवान के प्रति भक्त हृदय में जागृत राग भाव है जो साहित्यिक परिवेश में किसी सहृदय व्यक्ति के समक्ष कृतियों में व्यक्त होते हैं और उसकी आंतरिक संवेदना को छू लेते हैं। उसमें अनुभूतियाँ जाग उठती हैं और फिर रचना के आस्वादन से सहृदयों का मन जितना तृप्त–आह्लादित होता है, उसे उतना ही रससिक्त या रसात्मक कहा जाता है। अतः रस भावों की परिपक्व दशा है; हृदयस्थित स्थायी भावों के साथ विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का संयोग होता है, तब भक्ति रस निष्पन्न होता है। इसकी विस्तृत निदर्शना तथा भक्ति रस के आश्रय विवेचन का व्यापक दृष्टांत इसमें उद्धृत है।

कबीर निर्गुण भक्ति साधना को उसके चरम परिणति तक ले जानेवाले संत हैं। इनकी निर्गुण भक्ति दशरथ पुत्र राम रूप के कायल नहीं थे, इनका राम तो कोई दूसरा मर्म रखनेवाला था। इनका मन इस संसार से विमुख होकर ईश्वरोन्मुख रहा। इनकी अंतिम स्थिति आत्मा और परमाात्मा का स्थायी मिलन माना गया है। भक्त और भगवान, साधक और साध्य, जीव और ब्रह्म एक हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य युग की साधना और साहित्य में समग्रतः इस माधुर्य भक्ति का प्रसार हुआ। मधुर प्रेमपरक जिन रूपकों और दाम्पत्य प्रतीकों का सहारा लिया वे अत्यन्त विस्मयकारक रहे।

साहित्य का आनंद काव्य रस है, जिसे भारतीय जीवन दर्शन, साधना–साहित्य की एक महान उपलब्धि कहते हैं। इन्होंने 'भक्तिरस और कबीर पदावली' में जो मानवीय मनोरागों और चित्तवृत्तियों के शीर्ष पर जिस प्रयोजन का संधान किया, वह रसोपलब्धि या आनंदानुभूति है। तत्वदर्शियों का चिंतन ही ब्रह्मानंद का विषय है। ब्रह्म की रसरूपता की पुष्टि भगवद्गीता से भी होती है। इनका मानना है कि भगवान भक्त को अपनी भगवत्ता और सौम्य साक्षात्कार तब कराते हैं, जब वह पुत्र, सखा या प्रिया भाव से उनके चरणों में नतमस्तक हो जाता है। निर्गुण उपासना का अधिक संबंध ज्ञानमार्ग से है; किन्तु जब भक्ति अथवा प्रेम का उद्रेक हृदय में होता है, तब सगुण उपासना ही सामने आती है। यही कारण है कि निर्गुणवादी कबीर सगुणियों की आस्था के पास हैं। इसी आस्था की भित्ति पर उनकी माधुर्य भक्ति है। इन्होंने भक्तिरस के पाँच भावों को दर्शाया है–शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर, जिनके केन्द्र में भगवत् रीति के रूप में कृष्ण या राम–रति स्थायी भाव से विराजमान है। ध्यातव्य है कि यहाँ भाव (स्थायी) और विभाव (आलंबन) दोनों स्थान पर इष्ट विराजमान हैं। अतः यहाँ निर्गुण ब्रह्म को कोई स्थान नहीं है। निर्गुण भगवत् रति के संचारी भावों में प्रधानता से निर्वेद, दैन्य, आवेग, उन्माद, ब्रीड़ा, हर्ष, विषाद, धृति, औत्सुक्य आदि के भाव प्रायः मिल जाते हैं। इनमें निर्वेद, धृति आदि शांत भक्तिरस में, दैन्यादि दासभक्ति में, हर्ष–विषाद आदि सख्य में, औत्सुक्य आदि वात्सल्य में तथा आवेग, उन्माद, विषाद आदि मधुररस में प्रचुरता से प्रयोग होनेवाले संचारी हैं। कबीर की विरहिणी आत्मा भी, मीरा की तरह इस असार–संसार में भटकती रही, पर जब 'पंचरंग चोला' उतर गया तो उसी अविनाशी से मिलकर एकाकार हो गयी। विरह की दशा भी कबीर में ऊहा का स्पर्श नहीं करती, बल्कि विश्वसनीय बनकर हृदय में टीस उत्पन्न करती है। वह 'जल बिनु मछली' की नाईं तड़पती है।

कबीर के प्रेम में इतनी प्रखरता और भावनात्मक पूर्णता है कि उसे रस कोटिक मानने में सहृदयों को विशेष कठिनाई न होगी। इसके अंतर्गत रति के सभी पक्षों की सुंदर व्यंजना मिलती है। आत्मा–परमात्मा के इस प्रेमिल द्वंद्वमें पूर्व राग, मान, संयोग, अभिसार और वियोग सभी पक्षों की सांगोपांग अभिव्यक्ति हुई है। फिर भी काव्यशास्त्र आचार्यों में भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक किसी ने भी भक्तिरस को स्वतंत्र रस की मान्यता नहीं दी।

सन् 1700 से 1900 ई0 की मध्यान्तरित काव्यावधि को ऐतिहासिकों ने रीतिकाल या श्रृंगारकाल की संज्ञा दी है। रीतियुग के परिवर्तित इस वातावरण में भक्तिभाव ही निरस्त हो गया। इस भाव का स्थान रति ने ले लिया। विभाव वहीं राधाकृष्ण रहे; किन्तु अलौकिक प्रेमनायक न रहकर लौकिक काम–नायक रह गये। भक्त कवियों की ऐश्वर्यपरक औसत शिथिलता का चतुर्दिक प्रसार हुआ। साधना की कठोरता में इस शैथिल्य के कारण स्वच्छन्दमार्गी प्रेमी कवियों के लिए यह विशेष आकर्षक और 'शरणभूमि' का काम कर सका। अपितु रसखान हिन्दी के ऐसे कृष्ण भक्त कवि हैं, जिन्हें भक्तिकाल और रीतिकाल की मध्यवर्ती श्रृंखला के रूप में स्मरण किया जा सकता है। कृष्णभक्ति की माधुर्य–भावना को लेकर जहाँ वे मीरा समकक्ष हैं, वहीं अपनी स्वच्छन्द प्रेम–उमंग और भावुकता के कारण घनानंद आदि स्वच्छंदमार्गी प्रतिनिधि कवियों के अग्रणी भी हैं।

इस प्रकार कवियों की अलौकिक भावनाओं और आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा लौकिक और स्थूल काम–वर्णन प्रणाली की पृष्ठभूमि में डॉ. तपेश्वरनाथ जी 'रीतिकालीन भक्ति श्रृंगार : प्रवृत्ति निरूपण' पर सूक्ष्मतापूर्ण प्रकाश डाले हैं। इनका मानना है कि यह अलौकिक–लौकिक भावों का मिलन–बिन्दु है। देवस्वरूप मानवीयकरण कर दिया गया है। तत्कालीन विलासिता के दो प्रमुख अंग–कनक और कामिनी से कवियों का पिंड नहीं छूटा था। कृष्ण–दरबार का राजसी ऐश्वर्य, इनका कनकपक्ष है और सखी सेवित युगल विहार इसका कामिनी पक्ष है। भक्ति श्रृंगार के कवियों ने कृष्णलीला वर्णन की मध्यकालीन रूढ़ियों का त्यागकर रीतिकालीन प्रवृत्तियों का ग्रहण और प्रदर्शन किया। व्यापक और सर्वांगीण मूल्यों का निदर्शन न होने के कारण रीति श्रृंगार को रीतिशास्त्र के व्यापक पृष्ठाधार पर तोलने के क्रम में स्वच्छंद श्रृंगार अंतर्लीन हो गये, वहाँ रीति श्रृंगार में से स्वच्छंद श्रृंगार का दोहन करते समय 'भक्ति श्रृंगार' अंतर्लीन हो गया। रीतिकाल की भूमिका में स्वच्छंद श्रृंगार और रीति श्रृंगार के अतिरिक्त भक्ति श्रृंगार की कल्पना इनकी नितांत निजी और मौलिक है। इसी कारण इतर वर्गों की अपेक्षा 'भक्ति श्रृंगार' के अंतर्गत कृष्ण भावना की इसमें थोड़ी विस्तृत समीक्षा की गई है। यह निर्विवाद है कि कृष्ण के श्रृंगारिक स्वरूप के प्रति रीति कवियों के मन में कोई संभ्रम नहीं था, किन्तु उनके लक्षण ग्रंथों में न तो भक्तिरस का विरोध है और न उसकी पुष्टि ही।

भक्तिरस एवं राष्ट्रवादी प्रासंगिकता पर शुक्लजी की आलोचना एवं वैचारिक सत्यता को भी इन्होंने सामने लाने का प्रयास किया है। इसी वैचारिक पीठिका पर जब आचार्य शुक्ल की समीक्षा दृष्टि का विश्लेषण करते हैं, तो पाते हैं कि शुक्लजी के समीक्षा–सिद्धांतों में व्यक्त परंपरा, प्रयोग–समय, सनातन–व्यष्टि और समष्टि का संतुलित समयोजन हुआ है। चाहे भक्ति–आंदोलन की प्रेरक परिस्थिति का अन्वेषण हो या कबीर के रहस्यवाद का, साहित्य परंपरा की बात हो या जनता की बदलती चित्तवृत्ति का, काव्यशास्त्री रसवाद हो या पाश्चात्य समीक्षा के व्यक्ति–वैचित्र्य का पहलू, अभिव्यंजनावाद हो या वक्रोक्तिवाद, प्रतीकवाद हो या छायावाद,

व्यापक राष्ट्रीयता की भावना हो या विश्वबंधुत्व की सार्वभौम चेतना शुक्लजी उत्तरोत्तर अपने समय के बिन्दु से शाश्वत मूल्यों की व्यापक परिधि में वैचारिक सामंजस्य स्थापित करते चलते हैं। शुक्लजी के विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि ''यदि हमें विवेक बल रहेगा तो चारों ओर से उपयोगी और पोषक सामग्री लेकर और पचाकर अपने साहित्य को पुष्ट और दृढ़ करेंगे। यह वह विवेक बल नहीं रहेगा तो जैसे अनेक प्रकार के विदेशी रोगों ने यहाँ आकर अपना अड्डा जमा लिया है, वैसे अनेक प्रकार की व्याधियाँ आकर हमारे साहित्य को ग्रस लेंगे और उसका स्वतंत्र विचार रुक जाएगा।'' इस प्रकार शुक्लजी ने समस्त चिंतन और लेखन के मर्म में पैठी जो राष्ट्रीयता की भावना है, वह संकीर्ण या साम्प्रदायिक रूप में नहीं है। यह जनव्यापी है। व्यक्ति के स्वाधीन चित्त से निकलकर कुल, समाज, राष्ट्र और विश्व के व्यापक वृत्त में उत्तरोत्तर फैलती गई है। इनकी देशभक्ति के दायरे में यहाँ अधिकांश गरीब जनता थी, जिसके प्रति उनका करुणासिक्त हृदय सदा द्रवित हुआ करता था।

काव्य की आत्मा रस है और कला की आत्मा सौंदर्य है। सौंदर्य के लिए अद्‌भुत तत्त्व–चमत्कार का परितोष अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि हिन्दी साहित्य की व्यापक काल–परिधि में व्याप्त रहा है। इन सबसे संदर्भित 'भाव, रस, साधारणीकरण' पर इन्होंने शुक्लजी, नगेन्द्रजी व अन्य के विचारों का सार भी संगृहीत किया है। रस के व्याख्याकारों में अभिनवगुप्त सर्वप्रमुख हुए। इनसे प्रेरित आगामी आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' में बताया कि आलंबन विभाव से उद्‌बुद्ध, उद्दीपन से उद्दीप्त, संचारियों से परिपुष्ट और अनुभावों से व्यक्त हृदय का स्थायी भाव ही रस बन जाता है। आधुनिक रस चिंतक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस रस दशा को 'हृदय की मुक्तावस्था कहा है। आगे नगेन्द्रजी ने अपने ग्रंथ 'रस सिद्धांत' में गंभीर रसमंथन करते हुए इसके स्वरूप के संबंध में जो सम्यक् समाधान सुझाए हैं, वह इस प्रकार हैं–रसानुभूति भावानुभूति से अलग है। रस अनिवार्यतः आनंदमय होता है। काव्य–संवेदनाएँ जब पूर्ण सामंजस्य हो जाता है तो सुशृंखला आ जाने से वे कटु भी मधुवत् हो जाते हैं। रस–दशा में हृदय मुक्त हो जाता है, इसलिए वैयक्तिक राग–द्वेष शमित होकर समरस बनकर आनंदमय प्रतीत होते हैं। इस प्रकार इन्होंने विभिन्न आचार्यों, विद्वानों के मर्मरस के अतिरिक्त बाह्यांगों के उत्कर्ष– अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य आदि को भी काव्यत्व के प्राण रूप में प्रतिष्ठित करने में उनके विचारों को विस्तृत व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त इसमें इन्होंने शुक्लजी एवं सुधांशुजी की अभिव्यंजनावाद पर भी विस्तृत चर्चा की है। यूँ तो अभिव्यंजनावाद सौंदर्यविधान से भिन्न नहीं है। सुधांशु जी ने क्रोचे की सौंदर्य भावना और शुक्लजी की रसानुभूति को निकट लाने का प्रयास किया है, इसके लिए उन्होंने 'रसानुभूति के तत्व' शीर्षक अगले अध्याय में साधारणीकरण काव्यानुभूति को मनुष्यमात्र की भावात्मक सत्ता पर प्रभावी मानकर रसविधान माननेवाले शुक्लजी की हामी भरी है।

डॉ. तपेश्वरनाथ ने इसके आगे 'डॉ. द्विवेदी की कृष्ण भाव व रस–चिंतनधारा' को संगृहीत कर उनके विचारों को प्रकट किया है। द्विवेदीजी ने तथ्यों का समाहार करते हुए लिखा है–''शताब्दियों की उलटफेर के बाद प्रेम, ज्ञान, वात्सल्य, दास्य आदि विविध भावों के मधुर आलंबन पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण रचित हुए। सब कुछ उसमें परिपूर्ण रूप में देखने की कोशिश की गई है। माधुर्य के अति उद्रेक से प्रेम और भक्ति का प्याला लबालब भर गया। इसी समय ब्रजभाषा का साहित्य बनना शुरू हुआ।'' कहना न होगा कि इस राधाकृष्ण युगल मूर्ति को मधुरोपासना के सहचार में डॉ. द्विवेदी उत्तरकालीन वैष्णव सहजवाद की प्रेरणा मानते हैं।

इस प्रकार तपेश्वर नाथजी ने अपने इस 'हिन्दी काव्या– लोचन' ग्रंथ में काव्यशास्त्र के संप्रदायों एवं भाव, रस, साधारणीकरण, भक्ति रस को उध्येतव्य विषय के रूप में समाविष्ट कर दिया है। इस ग्रंथ में शुक्लजी, द्विवेदीजी, सुधांशुजी तथा मुक्तिबोध के आलोचना ग्रंथों पर लिखे अपने सारे समीक्षकीय आलेख का सार अभिव्यक्त है। अतः हिन्दी जगत् में इस ग्रंथ को लाना इनका सार्थक प्रयास है। मैं इनके प्रति हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ।

दोहे

नववर्ष

प्रो. शरद नारायण खरे
मण्डला, मध्य प्रदेश
मो. 9425484382

सूरज आया इक नया, गाने मंगल गीत
प्रियवर अब दिल में सजे, केवल नूतन जीत

उसकी ही बस हार है, जो माना है हार
साहसवाले का सदा, विजय करे शृंगार

बीते के संग छोड़ दो, मायूसी अवसाद
नवल बनेगा अब धवल, देगा मधुरिम याद

खट्टी–मीठी लोरियाँ, देकर गया अतीत
वह भी था अपना कभी, था प्यारा सा मीत

जाते–जाते वर्ष यह, करता जाता नेह
अंतर इसका जनवरी, भले दिसंबर देह

फिर से नव संकल्प हो, फिर से उत्थान
फिर से अब जयघोष हो, फिर से नव गान

नया सूर्य ले आ गया, नया शौर्य नव ताप
लिये आप आवेग यदि, नहीं बनोगे भाप

नहीं शिथिलता हो कभी, नहीं चरण हो मंद
गिरकर फिर आगे बढ़ो, काम नहीं हो बंद

एक जनवरी आ रही है, सभी लिये उत्साह
बात तभी बन पायगी, बनो वक्त के शाह

दोस्त, मित्र, बंधु, सखा, रखो संग नववर्ष
मिले तुम्हें खुशियाँ 'शरद' मिले सुखद नववर्ष।

कहानी

मिहिर–मेघा

हरिप्रकाश राठी
सी 136, प्रथम विस्तार
कमला नेहरू नगर, जोधपुर, राजस्थान
मो.–9414132483

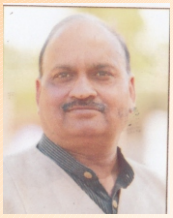

आषाढ़ क्या लगा जड़–चेतन सभी मस्ती में बौरा गये। भोर के घोड़ों को रथ में जोतकर सूर्य ने उसे हाँका ही था कि सामने घूमता हुआ एक आवारा बादल उसके मार्ग में आ गया। नाक–भौं चढ़ाकर सूरज उसे छेड़ता हुआ बोला–''अरे लंपट! सुबह–सुबह यूँ आवारों की तरह क्यूँ डोल रहा है?''

'ऐसा क्यूँ कहते हैं सूर्यदेव! मैं आपको लंपट दिखाई देता हूँ?' बादल ने चिढ़कर उत्तर दिया

'मैंने क्या गलत कहा! आषाढ़ लगते ही तेरे भाव कुछ ज्यादा ही बढ़ जाते हैं। तू लंपट नहीं तो क्या है?जब देखो भू–कामिनी के शिखर स्तनों को चूम–चूमकर उसे उत्तेजित करता रहता है।' सूर्य ने ऊपर के दाँतों से निचला ओठ काटते हुए शरारत की।

'आप कम हैं क्या! पहले तो आप ही तेज तपकर उसके हरीतिमा वस्त्रों को उतारते हैं। नग्न स्त्रियों को देखने की आपकी पुरानी आदत गयी नहीं। मैं तो उल्टे झीना श्वेत वस्त्र डालकर उसकी नग्नता को आवरण देता हूँ।'

'यह लो! अब शराफत तुम्हीं में रह गयी। तूने मुझे और कब नग्न स्त्रियों को छुप–छुपकर निहारते हुए देखा है?'

मुँह अँधेरे जब विरहणियाँ अपने प्रवासी प्रेमियों की याद में अस्त–व्यस्त पड़ी उच्छ्वासें भरती हैं, तब क्या मैं किरणों की दूरबीन से उन्हें देखता हूँ?भोर के समय अपने पतियों के आलिंगन में लिपटी निर्वस्त्र नवब्याहताओं को सर्वप्रथम आप ही रोशनदानों से झाँककर देखते हैं।' बादल ने पलटवार किया।

'तू कम है क्या! तू भी तो उपवनों में गीत गाती हुई हिरणाक्षियों पर बूँदें बरसाकर उन्हें भिंगोता रहता है। तेरी बूँदों के मारे उनके पतले वस्त्र जब उनके बदन से चिपकते हैं तो क्या तू और तेज बरसकर उनके अंगों को नहीं निहारता ?तब तो मैं वहाँ नहीं होता।' सूर्य ने नहले पर दहला दिया।

'यह लो! उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे। मेरे जाने के बाद जब वही हिरणाक्षियाँ पेड़ों की ओट में अपने वस्त्र सुखाती हैं, तब क्या आप नेत्र बंद कर लेते हैं?तब आप ही तप–तप कर उन्हें कहते हैं, 'हे कामिनयो! आराम से अपने वस्त्र सुखा लो। अब आवार बादल तो गया। उन बेचारियों को क्या पता कि आप जैसे अनुभवी बूढ़े युवा बादलों से भी ज्यादा लुच्चे होते हैं।' बादल कौन–सा रुकनेवाला था।

'छोटा मुँह बड़ी बात मत कर! तू जो रात में चाँद के आगे आकर बार–बार चाँदनी का आलिंगन करता है, मैं क्या नहीं जानता। मैं उस समय वहाँ नहीं होता हूँ तो क्या, सुबह चकोर–चकवे मुझे सारी हकीकत बयाँ कर देते हैं।'

बादल के तर्कों से आहत सूरज अब गंभीर होने लगा था, लेकिन बादल को क्या, उसने अपना प्रलाप जारी रखा।

'आप जो नित्य संध्या के लाल गालों को चूमकर उसे अँधेरे बिस्तर पर ले जाते हैं, वह क्या मुझसे छिपा है!' अपने तर्क पर तलवार को बुद्धि की सान पर रगड़ते हुए बादल ने उत्तर दिया।

'पहले अपने गिरेबाँ में झाँक! पावस में चपला दामिनी तेरे आलिंगन से छूटकर भागती है, तब कैसे पागलों की तरह शोर मचाता है। अपनी बीवी तो सँभलती नहीं, दूसरों को उपदेश देता है।' सूरज मूँछें तानकर बोला।

'और चाँद जो आपकी संध्यारानी के पीछे लगा रहता है, उसका भान है आपको?अपनी फूटी तो दिखती नहीं, दूसरों की फूटी निहारते रहते हैं।' बादल से भी रहा नहीं गया।

क्रोधी भला कब सहिष्णु हुए हैं। अब सूरज ने आँखें लाल कर कहा, 'अरे मूर्ख! रास्ते से हट। अभी तो पूरे दिन तपकर मुझे अपनी यात्रा करनी है, सुबह–सुबह ही शकुन खराब कर दिये।'

'क्रोध क्यूँ करते हैं दिनकर! भला मेरी क्या जुर्रत कि आपके रास्ते में व्यवधान उपस्थित करूँ। मैं तो अपने धर्म से बँधा इधर–उधर विचरता रहता हूँ। परमात्मा ने मेरी प्रकृति ही ऐसी बनायी है, तो मैं क्या करूँ?' बादल ने प्रत्युत्तर दिया।

दोनों में युद्ध अब परवान चढ़ने लगा था।

'मुझे धर्म एवं बोध सिखाता है बावले! पहले अपने भीतर तो झाँककर देख! कितना विचित्र चरित्र है तेरा। कभी तू फैलकर लंबा हो जाता है, तो कभी छोटा। कभी मोटा हो जाता है, तो कभी पतला। कभी चींटी की तरह रेंगता है, तो कभी हिरण की तरह भागता है। कभी काला हो जाता है, तो कभी नीला। कभी सफेद तो कभी भूरा। कभी टुकड़ों में बँटकर छोटा हो जाता है, तो कभी टुकड़ों से जुड़कर विशाल। कभी शेर की तरह दहाड़ता है, तो कभी बकरी की तरह मिमियाता है। कभी निराकार की बातें करता है तो कभी तरह–तरह के रूप धरकर साकार हो जाता है। अन्यत्र कहीं भी तेरे जैसा विचित्रवीर्य दिखाई नहीं देता।

'आप कैसी बातें करते हैं प्रभाकर! जगत में सभी अपने– अपने गुणधर्म से विचरते हैं। सबके सृजन के पीछे प्रभु का कोई न कोई अंतर्निहित उद्देश्य अवश्य होगा। आप भी तो सुबह से शाम सबको तपाते रहते हैं, नित्य आकाश को पार कर इधर से उधर जाते हैं। पृथ्वीवासियों से भी पहले आपकी तपन को हम झेलते हैं, हम तो आपको कुछ नहीं कहते।'

'तू कह भी क्या सकता है?इतनी जुर्रत है तुझमें?मेरे ही तेज से उत्पन्न होकर मुझे ही आँख दिखा रहा है?क्या तुझे इतनी भी समझ नहीं कि बैर और प्रीत बराबरी वालों में होती है?'

'बड़ा तो वही है, जो अपने से छोटों को उचित सम्मान एवं आदर दे। यह तो वही बात हुई कि मेरी नाक पर मक्खी कैसे बैठ गई। आप राजा होते तो छींकने पर नाक कटवा देते। खैर, मैं आपसे बहस नहीं करना चाहता। आप अपने रास्ते जाइए, मैं अपने रास्ता जाता हूँ।' बादल ने यह कहते हुए सीधे–सीधे पंगा ले लिया।

'रे दुष्ट, घुमंतु! जगत्साले, तुझमें इतना साहस कहाँ से आ गया। आज तुझे बताता हूँ, तेरी औकात क्या है, घुमक्कड़ की जात! अभी तुझे तपाकर तेरा अस्तित्व समाप्त करता हूँ।'

अपने आत्मसम्मान पर ऐसा कटु प्रहार बादल सहन नहीं कर सका। जाति अवमानना क्षुद्रतम जीव भी सहन नहीं करते।

सूर्य की नीयत जानकर बादल ने तुरंत मोर्चा सँभाला। अपनी बहन हवा से मदद लेकर उसने तुरंत यत्र–तत्र बिखरे अन्य भाइयों को सूर्य की चुनौती बतायी। अपने अस्तित्व एवं जाति अभिमान के लिए सभी एक जुट हो गये। सभी के आपस में मिलने से वहाँ एक विशाल मेघ ने सूर्य को पूर्णतः आवृत्त कर लिया।

क्षुद्र बादल की इतनी हिम्मत। सूर्य ने अपना तेज और प्रखर किया। देखते–ही–देखते वह अंगारे उगलने लगा, पर घनीभूत मेघ की सत्ता पर उसका कोई असर नहीं हुआ, वरन् अब उसने सूर्य के साथ–साथ चलना प्रारंभ कर दिया। सूर्य ने और तपकर बादल को छिन्न–भिन्न करने का प्रयत्न किया, पर उसकी दाल नहीं गली। बादल ने आज उसे जमात की करामात बता दी। सूरज उसका बाल बाँका भी न कर पाया।

कुछ दिन यूँ ही युद्ध चला तो धरती पर त्राहि माम् मच गया। बारिश के बाद किसानों ने अभी–अभी बीज बोये थे। वे याचक आँखों से आसमान की ओर देखने लगे।

सूर्य किरणों के बिना बीज अपने अंतर्घट को फोड़कर कैसे अंकुरित होते? धरती पर सर्वत्र आर्द्रता फैल गई। लोगों के कपड़े तक नहीं सूख पाए। जहाँ–जहाँ पानी बहता, वहाँ–वहाँ कीचड़ फैल जाता।

लोग रपट–रपट कर गिरने लगे। सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई। पृथ्वीवासी आर्त होकर ब्रह्मा को पुकारने लगे।

ब्रह्मा ने अपने अंतर्ध्यान से वस्तुस्थिति का पता लगाया। सूर्य और बादल के युद्ध को जानकर वे हँस पड़े। उन्होंने दोनों को उनके सम्मुख उपस्थित होने का आदेश दिया।

सूर्य ने अपना पक्ष रखते हुए कहा, 'प्रभु! यह क्षुद्र बादल जब देखो, तेरे मार्ग में पड़कर मेरे कार्य में व्यवधान डालता है। मेरे ही तेज से उत्पन्न होकर यह मुझे ही चुनौती देने लगा है।'

बादल ने अपने पक्ष की पुरजोर वकालत करते हुए कहा, 'प्रभु! मैं तो अपने गुणधर्म से बँधा इधर–उधर विचरता हूँ, यह अकारण हमें कोसते हैं। धुआँ होने से राजा की आँख जले तो क्या शहर में लोग रसोई नहीं बनायेंगे।'

दोनों का पक्ष सुनकर ब्रह्मा मुस्कुराकर बोले–''तुम दोनों अकारण एक दूसरे से लड़ रहे हो। तुम दोनों एक दूसरे से अलग नहीं, एक दूसरे के पूरक हो। अगर सूर्य नहीं तपेगा तो बादल कैसे बनेंगे? बादल नहीं बनेंगे, तो वर्षा कैसे होगी? वर्षा नहीं होगी, तो किसान खेत कैसे जोतेगा? खेत जोतने के बाद धूप नहीं पहुँचेगी तो अंकुरण कैसे होंगे? यही नहीं छाया का अर्थ मनुष्य तभी तो न समझेगा, जब वह तपन भोगेगा। तुम दोनों अपरिहार्य हो। तुम दोनों की महत्ता एक दूसरे से है, दोनों एक दूसरे के बिना अधूरा हो। सूर्य का यह अहंकार कि वह अधिक बली है, सर्वथा निरर्थक है। वस्तुतः तुम दोनों एक दूसरे को बल देते हो। तुम्हीं नहीं संसार के सभी जड़–चेतन प्राणियों का अस्तित्व एक दूसरे से है। स्वयं को अपरिहार्य समझनेवाले अंततः संसार के कोपभाजक बनकर विनष्ट हो जाते हैं। जीओ ओर जीने दो की भावना ही सर्वकल्याण कारी है।

शाम गहरी होती जा रही थी। सूर्य को आज बोध मिल गया था। अँधेरा पश्चिमी छोर पर उसे निगलने मुँह फाड़े खड़ा था। बादल भी अब विच्छिन्न होने लगे थे।

ग़ज़लें

मंजरी पाण्डेय
बरईपुर, सारनाथ
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
मो. 9307488087

बचपन में ही मैं कुछ बड़ी हो गई
गोद से छूटकर ही खड़ी हो गई

गाय बकरी पली थी चराने लगी
सानी पानी में ही जब कड़ी हो गई

घाघरा फ्राक में ही सयानी हुई
पढ़ के आते किचन में खड़ी हो गई

माँ का हाथ बँटाना पिता को खिला
उनके जीवन की जैसे कड़ी हो गई

ब्याह जब हो गया पी के घर आ गई
पूछना क्या रहा फुलझड़ी हो गई

दिन बरस बीतते मेरे बच्चे हुए
माँ की पीढ़ी में इक मैं लड़ी हो गई

मंजरी सिम्त दर सिम्त फेंकी गई
खेल खेल गए गेन तड़ी हो गई।

मुद्दत के बाद कोई तो अपना लगा मुझे
दिल को सुकून मिल गया ऐसा लगा मुझे

माँगी कहाँ कहाँ पे मोहब्बत की रोशनी
अपना ही दिल जला तो उजाला लगा मुझे

बिछड़े हुए तो उनसे ज़माना गुज़र गया
दिल के बहुत करीब हमेशा लगा मुझे

तर्के वफ़ा ने प्यार को रहने दिया न प्यार
गम ही किसी के प्यार का तोहफा लगा मुझे

धोखा कदम कदम पे रहा जिंदगी के साथ
चाहा छुवे तो अपना ही साया लगा मुझे

अब नगम–ए हयात को छेड़ें भी किस तरह
साज़े वफ़ा का तार भी टूटा लगा मुझे

छेड़ा गया तो रंज हुआ मुझको 'मंजरी'
हँसता हुआ गुलाब तो अच्छा लगा मुझे

तुमको यकीन हो न हो हमको यकीन है
जिसकी दुआ कुबूल हो वो नामचीन है

शायर हरेक ग्राम पर ताजातरीन है
महफिल में जा के बात वो रखता महीन है

बंदे सभी खुदा के फिर कोई गरीब क्यों
जैसा किया है कर्म बना जायरीन है

बेवज़ कह रहे ग़ज़ल शायर बने फिरे
बा बहर जो कहे हैं ग़ज़ल वो जहीन है

रहता है साथ–साथ मगर दीखता कहाँ
अंदर छुपा है 'मंजरी' पर्दानसीन है।

कहानी

अपना वतन

पद्मा मिश्रा
आदित्यपुर–2
जमशेदपुर (झारखंड)

उकड़ूँ बैठे–बैठे उसके घुटनों में दर्द होने लगा था। जोरों से प्यास भी लगी थी, कंठ सूखा जा रहा था। पानी पीने की कोशिश भी जानलेवा साबित होती, बाहर बरसती तड़तड़ गोलियाँ किसी भी क्षण उसका सीना छलनी कर देती। उस छह फीट लंबे गबरू जवान मंजीत की आँखों में आँसू थे, उसने कभी भी अपने आपको इतना विवश और निरुपाय नहीं पाया था। यही हाल उसके अन्य साथियों का भी था। कंपनी के निचले हिस्से के गोदाम में सिकुड़े सिमटे दस भारतीय युवकों का एक दल भयभीत निराश, हताशा के एक–एक कठिन दौर से गुजर रहा था। मिट्टी की टोंटीवाली मटकी सामने थी, उनके और प्यास बुझाने के बीच की दूरी बहुत मामूली, लेकिन दर्दनाक अंत या हादसे को न्योता देनेवाली थी, फतेह अली के हाथों में गोली लगी थी, उसे बुखार भी हो आया था, बार–बार पानी की रट लगाता और फिर अपनी व साथियों की बेबसी जानकर चुप हो जाता, तभी अनीस ने चुप रहने का इशारा किया, भारी बूटों की आवाज पास आ रही थी, सभी दम साधे पड़े थे। जिंदगी की एक–एक साँस भारी पड़ रही थी। इराकी सैनिक विद्रोहियों की तलाश में यहाँ तक आ पहुँचे थे, पर इस सूने अधजले गोदाम में भी कोई हो सकता है, इससे बेपरवा वे दूसरी ओर निकल गए। सबने राहत की साँस ली, बाहर गहरा सन्नाटा था और अँधेरा भी घिर रहा था। मंजीत ने हिम्मत दिखाई और मटकी तक पहुँचकर दो घूँट पानी पिया, फिर अपनी पगड़ी का एक सिरा फाड़कर पानी से तर किया और वापस लौट आया। फतेह अली के मुँह में पानी की कुछ बूँदें निचोड़ी, तो वह शांत हो गया। भींगे कपड़े से उसका बदन पोंछा और वही टुकड़ा घाव पर बाँध दिया। सभी एक–एक करके पानी पीकर वापस आए, मटकी में पानी बचाना भी जरूरी था, पता नहीं कबतक इस जलालत भरी कैद से मुक्ति मिलेगी। मंजीत ने दीवार से सिर टिका लिया। तीन दिन से भूख–प्यास से बेहाल वह और उसके साथी मारे–मारे फिर रहे थे। तीन साल पहले बड़े उत्साह और जोशोखरोश से उसके दस साथी बगदाद के लिए रवाना हुए थे। एयरपोर्ट तक पहुँचानेवाले गाँववाले भी आए थे। 'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल' से पूरा हवाई अड्डा गूंज गया था। खालसा के वीर सिपाही रोजी–रोटी की तलाश में परदेश जा रहे थे, पर अपना–अपना चैन अपने वतन की धरती के हवाले कर अपनों को सुरक्षा और कुशलता अपने पिंड को सौंप कर वापस घर–परिवार की खुशियाँ लेकर लौटने की उम्मीद देकर। वे सभी मेहनती थे। मंजीत, गुरुदास, अनीस, काके, चरणजीत, दलजीत, मिंकु, सुमिरन, फतेह अली–मेहनत के बल पर पैसा भी कमाया और घर के हालात सुधारे, फिर अचानक आई यह विपत्ति–विद्रोह– हिंसा, रोज सैकड़ों मारे जाते, आते–जाते अपने सामने सड़कों पर पड़ी लाशें देख उनका कलेजा दहल जाता, खून से सड़कें रंगी होती, न जाने कौन, कब आकर मौत का खूनी खेल खेल जाता था। हर वक्त फौजियों के बूटों की टाप–टाप और बख्तरबंद गाड़ियों की आवाजाही उन्हें दहशत में डाल रही थी।

वह मनहूस दोपहर मंजीत आज भी नहीं भूला, जब अच्छे–भले चल रहे कारखाने की मशीनें अचानक बंद हो गई, सभी हैरान–परेशान मजदूर डर से भागने लगे, भगदड़ मच गई। जबतक कोई कुछ समझ पाता, बेतरह गोलियों की आवाज से कारखाना गूँज उठा, तब मंजीत दोपहर की रोटियाँ खा रहा था, आचार का स्वाद मुँह में घुल रहा था, बेबे ने बनाकर दिया था, पर सारा सुख किरकिरा हो गया, जब फतेहअली दौड़ता हुआ आया, उसके हाथों में गोली लगी थी और खून के फौब्बारे छूट रहे थे। उसने अपना पट्टा फाड़कर बाँधते हुए सभी साथियों को आवाज लगाई, वे जबतक निकल पाते, सैनिक अंदर आ चुके थे। वे डर के मारे दीवार से चिपके–चिपके बड़े कमरे की ओर बढ़े, मशीनों की तेल सनी गंध से कमरा महक रहा था, सभी एक जगह बैठ गये हतप्रभ से, ये क्या हो गया? हर वक्त लड़ाई, दंगा–गोलीबारी से बेजार होने पर भी केवल पैसे कमाने की धुन में उन्होंने सामाजिक जिंदगी भी भुला दी थी, ताकि परिवार सुख की रोटी खा सके। कभी किसी झगड़े में नहीं फँसे कि पराये मुल्क में कोई अपना नहीं होता, जबतक नेह का नाता न बने, लेकिन नफरतों, दहशतगर्दी के बीच प्रेम की कोंपलें भी जायेंगे फूटने से डरती हैं। वे फूँक–फूँक कर कदम रख रहे थे। चारो तरफ भगा–दौड़ी मची थी, निरीहों की चीख पुकार भी कभी सुनाई पड़ जाती थीं, पास ही में गोदाम था, नीचे के तले में सभी वहीं दौड़कर चले गए, जोरों से हाँफते फतेहअली को बेहोशी आ गई, पानी छिड़ककर होश में आया। उसके हाथ में गोली अभी भी फँसी हुई थी। मंजीत ने अपने काम करनेवाले पेचकसनुमा हथियार से गोली निकाली थी, खुद भी पसीने–पसीने हो गया था, लेकिन साथी की जान बचाना जरूरी था, फतेह अली दाँत दबाये दर्द सहता रहा, गोली निकलने के बाद आँखें खोल मुस्कुराया, सभी ने चैन की साँस ली। मंजीत ने उसे दर्द सहने के लिए शाबाशी दी, फिर माफी भी माँगी। यादों में खोये मंजीत की आँखें भर आई थीं, अनीस फुस्फुसाया–हम यहाँ कबतक रहेंगे मंजीते?

''रब जाने, लेकिन हम आखिरी साँस तक अपने वतन लौटने की आस नहीं छोड़ेंगे'', सबने हाँ में सिर हिलाया।

गुरुचरण गुस्से में बोल उठा–''कौन है यह बगदादी? आई एस आई एस क्या बला है? हमने क्या बिगाड़ा है इसका? मेहनत करते हैं, किसी पचड़े में नहीं पड़ते, फिर भी मारे जाते हैं?

सद्दाम के देश में शिया–सुन्नी के झगड़े में भारतीय यूँ मारे जायेंगे किसी ने सोचा न था, तेल के अकूत भंडारवाला देश, जो अपनी बेपनाह दौलत और रुतबे के दम पर दुनिया के हजारों नौजवानों को अपने ओर खींच रहा था, नौकरी के लालच में ये नौजवान सिर्फ पैसा कमाने की धुन में खून–पसीना एक कर रहे थे, पर शायद वाले खतरों से अनजान थे–वह सुनहला सपना यहाँ की धरती पर कदम रखते ही मेहनत की रोटी और पसीने को खून बना सड़कों पर बहा देने के दु:स्वप्न में बदल गया था, सोने के देश की जनता आज भी गरीबी का ही जीवन जी रही थी, पैसा तो था, पर आये दिन संघर्षों और जातीपरक विद्रोहों–सांप्रदायिक झगड़ों की भेंट चढ़ जाता, रोटी सिर्फ पेट भर सकती थी, ऐशो–आराम नहीं दे सकती थी।

फतेहअली कराहा–ओह!

क्या हुआ फत्ते? मंजीत ने पूछा

कुछ नहीं यारां, अपने वतन की याद आ रही है, अमीना बिटिया, वह बोल न सका, अबकी ईद पर जाने की तैयारी की थी, अमीना के लिए गुलाबी फ्रॉक खरीद ली थी, पर अब...?

दल का सबसे छोटा सदस्य अठारह वर्षीय मिंकू गा रहा था–'ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछुड़े चमन, तुझपर दिल कुर्बान, माँ का दिल बनकर कभी सीने से लग जाता है तू और कभी नन्हीं–सी बेटी बनकर याद आता है तू, इस मुसीबत में भी वह गा रहा था, अपने साथियों के सुकून के लिए लगे, अचानक सभी सुबकने लगे, मिंकू तो गायक था, अपनी गायकी का कमाल दिखाकर पैसे कमाने आया था, अरबी–फारसी की ग़ज़लें कशिश के साथ गाना उसका शौक था, पर वह क्या जानता था कि एक दिन मुल्क की मिट्टी के लिए भी तरसना पड़ेगा। अनीस ने मिंकू को गले लगा लिया।

तभी लगा जैसे कोई दरवाजे पर हल्के–हल्के दस्तक दे रहा हो, आवाज तेज होती जा रही थी, सबके प्राण कंठ में आ गए थे, जैसे समानेवाले रोशनदान से कुछ–कुछ ऊपर का दृश्य दीखता था, कुछ बंदूकें–वर्दीधारी

सैनिकों की वर्दी का रंग साफ– साफ नजर आ रहा था, लगता था मौत करीब आ गई है, अब नहीं बचेंगे, आवाज सिर्फ सुनाई दी–यहाँ कोई है?जवाब दो, हम मददगार हैं, कोई हैं?

अबकी बार दलजीत उठकर बोला–हाँ, जी हम हैं, हम जिंदा हैं। सबको काठ मार गया, क्योंकि तबतक दलजीत दरवाजा खोल चुका था। सामने दो स्टेनगनधारी सैनिक और सफेदपोश कुछ अधिकारी जैसे लोग थे, वे अंदर आ गये–'डरो मत, हम आपकी मदद करने आए हैं। आपलोग भारतीय हैं?क्या पंजाब से?'

हाँ जी, अबकी मंजीत ने जवाब दिया।

आपकी सरकार आपके लिए चिंतित है, हमलोग कोशिश कर रहे हैं आपको सुरक्षित निकालने की, आप बाहर आइए हमारे साथ, हम आपको सही ठिकाने पर ले चलते हैं।

किसी ने विश्वास नहीं किया। सभी ने हाथ जोड़ लिये दया की याचना में, हमें छोड़ दीजिये साहब, हम चुपचाप अपने वतन चले जायेंगे, हमने किसी का कुछ बुरा नहीं किया।

उन दो अधिकारियों में से एक ने अपना परिचय–पत्र दिखाया, हम दूतावास से हैं, भरोसा रखो हमपर, हम अपने लोग हैं। सभी धीरे–धीरे बाहर आ गये, फतेहअली स्ट्रेचर पर आया, उन्हें एक बहुमंजिली इमारत में ले जाया गया, यह भी एक सुरक्षा थी जो किसी कैद से कम नहीं थी, लेकिन जान बच गई तो एक दिन अपना वतन जा सकेंगे, यह उम्मीद तो बँध गई थी।

उन्हें नान और नमक वाले उबले आलू दिए गए, तीन–चार दिनों से भूखे लड़के उन पर टूट पड़े, मंजीत ने माँगकर फतेह को दूध पिलाया, सब ठीक हो जायेगा फत्ते, अब सो जा। उस समय यह जरा भी नहीं लग रहा था कि वे लोग विभिन्न धर्मों के लोग हैं, सभी बस केवल एक देश व एक माटी के लाल थे, वे केवल भारतीय थे।

उन मददगारों ने उनके ठिकाने का पता पूछा, हम आपका सामान ले आएँगे, आप रात बारह बजे तैयार रहें, लौटने के लिए तब सबके चेहरे पर खुशी छा गई, लेकिन जब सामान मिला तो सबके पासपोर्ट गायब थे, अब क्या होगा, एक हताशा–सी फैल गयी, सबके दिल में घर लौटने की आखिरी उम्मीद भी टूट गई और अपने मददगारों पर फिर अविश्वास की कड़ियाँ जुड़ने लगीं। क्या इन्होंने ही?कौन हैं ये?लेकिन उन मददगारों ने भरोसा दिलाया, आपके डायरेक्ट टिकट की व्यवस्था हो गयी है, आप तैयार रहें, इस कमरे से बाहर न निकलें।

बाहर गोलियों की तड़–तड़ आवाजें धमाके और अंदर विश्वास और अविश्वास की डरावनी दुनिया के बीच एक उम्मीद की छोटी किरण अभी तक रोशन थी। वे रात होने तक संशय में पड़े रहे। रात बीतती जा रही थी, करीब पौने दो बजे वे सभी फिर आए और उन्हें चलने को कहा। दूतावास की विशेष गाड़ी में चुपचाप चलता हुआ ये कारवाँ फिर एक सुनसान मकान के आगे रुका, जहाँ से तीन लोग गाड़ी में चढ़े, वे सभी बीमार लग रहे थे। इस समय सुबह के चार बज रहे थे, मतलब उन्हें चलते हुए दो घंटे हो चुके थे, हवाई जहाज में चढ़ना यानी जिंदगी की ओर एक कदम बढ़ना, मंजीत पागलों की तरह उन अधिकारियों के गले लग फूट–फूटकर रोने लगा–'साहबजी! आपलोग फरिश्ते हो, इंसानियत आप–जैसों से ही जिंदा है।' नहीं चाहिए हमें पैसा, अपनों की गोद में मेहनत की सूखी रोटी भी अमृत–सा स्वाद देती है साहब जी, अब हम समझ गए हैं, इस नफरत और हिंसा से किसी का भला नहीं होना, अपने वतन की मिट्टी पर ही अब हम अपने सपनों के बीज बोयेंगे। जहाज उन्हें लेकर उड़ चला अपने वतन की ओर।

कविता

शापित हैं हम

डॉ. किशोर अग्रवाल
डी.आई.जी. ऑफ पुलिस
रायपुर, चंडीगढ़
मो. 9425212340

शापित हैं हम
कुछ न कुछ लेना पड़ता है जीवनभर
और कोई भी दूसरा जीव–जन्तु खरीदता नहीं
फिर भी
जी जाता है, खुश भी रहता है
शायद....
जिसे देखो वह हमेशा
खरीदता रहता है कुछ न कुछ
जरूरी भी गैर जरूरी थी
बेचने में ऐसे माहिर हैं लोग कि
पानी और कुदरत के दृश्य तक तो
बेच लिये थे
हवा भी बेच रहे हैं अब
उगाने में कम बेचने में ज्यादा लगे हैं
मेहनत से बचकर आराम व मुनाफा ढूँढ़ रहे हैं
खूब खरीदा हमने इन दिनों
जमीर खरीदा, अस्मत खरीदी
लोगों की मजबूरियाँ भी
औरतें व बच्चे भी तिज़ारत से दूर न रहे
डिग्रियाँ खरीद लो, सम्मान पत्र औ पदक खरीदे
विधायक सांसद खरीदे
सत्ता भी
खरीद लिया मैंने नाते–रिश्तेदार
शहर की हवा सुकून चैन और अमन
खबरें खरीद ली खबरची चैनलों सहित
अखबारों की हेडलाइनें व उनकी पॉलिसी
विदेशियों ने खरीद ली हमारी संस्कृति
और पकड़ा दिये
बेशर्मी और बेहयायी के गुब्बारे
जिन्हें फुलाकर हमने टाँग लिया बैठकों में
बेटियों के लिए लड़के खरीदे
व्यापरियों ने खरीद लीं सरकारें
बदले में बेच दिये हमारे सारे अरमान
खरीदते जा रहे हैं हम निरंतर
मैंने खुद अपने लिए बीमारियाँ खरीदीं
जबान होती बेटी के लिए छोटे कपड़े
फास्ट फूड, बेबरेज और डिब्बाबंद खाना
गाँव में पिता ने खरीदा है
अपने लिए चश्मा व बहन के लिए ससुराल
इस खरीदने में मैंने बेच दिया खुद को
अपना चैन सुकून, शौक
अपना भोलापन व छोटी–छोटी खुशियाँ
दूर आ गया हूँ मैं अपने गाँव व घर से
छोड़ आया मैं किवाड़ से लगी माँ
राह निहारती बहन
किन्हीं आँखों में बसी मेरी आँखें
गाँव–गलियाँ व थके हुए पिता
लोग कहते हैं
मैंने पढ़–लिखकर खूब तरक्की की है
बेटा हो तो ऐसा हो...।

कहानी

कुत्सित–मंशा

गोविन्द सेन,
राधारमण कॉलोनी, मनावर, जिला–धार
मध्यप्रदेश, मो.–9893010349

क्रोधित चंपा मैडम ने मदन के पुट्ठे पर पूरी ताकत से दो लात जमाकर उसे अंदर धकेला दिया। तुरंत दरवाजे पर ताला लगाकर उसे भीतर कोंड दिया। दूधिया रंग की चंपा का चेहरा क्रोध से एकदम लालचट हो चुका था। चाबी झटके–से अपने पर्स में डाल वह फनफनाते हुए घायल नागिन की तरह सर्राटे से चली जा रही थी। आसपास के लोगों को समझ ही नहीं पड़ रही थी कि आखिर हो क्या गया है।

मदन खिड़की के पीछे कैदी की तरह खड़ा टुकुर–टुकुर देख रहा था। कुछ समय यूँ ही खड़ा रहा, जैसे उसे कुछ सूझ न रहा हो या किसी की राह देख रहा हो। कोई दरवाजा खुलवाकर उसे छुड़ा ही ले। पर किसकी अड़ी थी, जो आधी रोटी पर दाल लेता?कौन इस फजीतवाड़े में पड़े?कौन नागिन के पिटारे में हाथ डाले?जरा–जरा–सी बात पर चंपा रणचंडी बन जाती थी। पड़ोसी उसका स्वभाव जानते थे। यदि उसे पता चल गया कि बाहर निकालने में मदन की किसी ने मदद की है, तो फिर उस शख्स की फजीहत होनी ही थी। गालियाँ ऐसी देगी की कान के कीड़े झड़ जायेंगे। उसे समझाना भी किसी के वश में नहीं था। इसलिए सभी दब–छिपकर तमाशा देखने में ही अपनी खैरियत समझ रहे थे। देखें, अब आगे क्या होता है?सब साँसें रोके हुए छिप–छिपकर देख रहे थे। चंपा के डर से खुल्लमखुल्ला तमाशा देखने की हिम्मत भी उनमें नहीं थी।

काफी देर तक खड़ा रहने के बाद मदन को यकीन हो गया कि अब बाहर से कोई उसकी मदद करने के लिए नहीं आएगा। वह कमरे में ही चक्कर लगाने लगा, जैसे कोई बदहवाश शेर बंद पिंजरे में चक्कर लगा रहा हो। वह कभी शेर की तरह नजर आ रहा था, तो कभी सियार की तरह और कभी कोंडवाडे में कोंडे गए मूक पशु की तरह निरीह।

मदन पचपन पार का साँवला–सा अधेड़ था। सिर पर पुराने हीरो जैसे बालों का फुग्गा बना होता। वह अक्सर बिना इनर के डार्क रंग की पैंट पहने रहता। हल्के रंग की कमीज की एक चौथाई आस्तीनें ओटी हुई रहती। हमेशा खामोश रहता। खामोशी से उठता, खामोशी से बैठता, खामोशी से चलता और उतने ही खामोशी से अपने शिकार को दबोच लेता, जैसे कोई खामोश बगुला सहसा मछली को चोंच से पकड़ गड़प लेता है। उसके चेहरे पर कभी हँसी देखी ही नहीं गई। कभी मजबूरी में ही हँसता हो तो हँसता हो। जबान से कम ही बोलता था, पर उसकी आँखें जरूरत से ज्यादा ही बोलती थी। स्त्री–देह को देखते ही उसकी आँखों से वासना टपकने लगती टपाटप.. .टपाटप। बगैर किसी शर्म और लिहाज के वह आँखों से ही स्त्री के सभी उभारों को पी जाता। परस्त्री गमन में उसे महारत हासिल थी। कई बार रंगे हाथों पकड़ा भी गया, पर हाथ–पाँव जोड़कर छूट गया। कई बार मार भी खा चुका, पर अपनी आदत से बाज नहीं आता था और शर्म जैसी किसी लिजलिजी चीज को उसने कभी पाला ही नहीं। हाँ, उसने कई भैंसे जरूर पाल रखी थीं। भैंसों का दूध निकालना और बेचना उसका धंधा था। दूध की कई बंदियाँ चल रही थीं। पुरखों की छोड़ी हुई काफी खेती–बाड़ी थी। ब्याज पर भी काफी पैसे चल रहे थे। अपना शौक–मौज पूरी करने के लिए उसे किसी भी तरह की तंगी का सामना नहीं करना पड़ता था।

अपने वासनाजनित शौक के चलते वह अबतक अनेक चारा वालियों को अपने घापे में ले चुका था। उसे तो अब उनकी गिनती भी याद नहीं। मकान के पीछे भैसें बँधती थी। चारावालियों को वह पीछे के दरवाजे से बुला लेता। चारावालियों को चारे के दुगुने–तीगुने पैसे मिल जाते। कुछ को तो चट लग गई, पर कुछ ने उसके घर चारा डालने से ही इंकार कर दिया। मदन चारे से अधिक उनकी उम्र और उभारों को तरजीह देता था और उसी हिसाब से वह चारावाली को चुनता था।

चंपा का पति बलराम एक सरकारी ऑफिस में चपरासी था। खूब दारू पीता। वेतन दारू में उड़ा देता। चंपा उससे रोज झगड़ा करती और कभी–कभी तो पीट भी देती। मदन ने बलराम को ब्याज से पैसे दे रखे थे। वह गाहे–ब–गाहे ब्याज वसूली पर आता था। इस दौरान उसकी नजर चंपा पर पड़ी। वह उसकी नजर में चढ़ गयी। उसके दूधिया रंग और सुगठित उभारों ने उसे पागल कर दिय। चंपा को भी मदन भा गया था। वैसे भी वह अपने पति को अपने काबिल नहीं समझती थी। वह जितनी रूपवान खुद को समझती थी, अपने मुकाबले में वह अपने पति को पासंग के बराबर भी नहीं मानती थी। मदन के चक्कर बार–बार लगने लगे। ब्याज वसूली तो एक बहाना था। बलराम ब्याज चुका नहीं पा रहा था। मदन ने चंपा को ही ब्याज समझ लिया। वह भरपूर वसूली करने लगा था। चंपा को भी लगने लगा था कि अब जाकर उसे अपने काबिल आदमी मिला है। उसे ब्याज चुकाने में मजा आने लगा। बलराम दारू पीकर आगे के कमरे में पड़ा रहता। मदन और चंपा अंदर के कमरे में पड़े रहते। बच्चे स्कूल में रहते। छुट्टी के दिन उन्हें कुछ पैसे पकड़ा कर सिनेमा देखने या किसी अन्य काम से बाहर लगा दिया जाता। इधर बलराम की दारू उतरने ही नहीं दी जाती थी।

पर बात फैलने लगी थी। मदन और चंपा को बलराम काँटे की तरह खटकने लगा। लोग कहते हैं कि वे बलराम की तंबाकू और दारू में कोई धीमा जहर मिला–मिलाकर देते रहे थे और एक दिन बलराम उस जहर के कारण ही मरा था। पर इल्जाम दारू पर ही लगाया गया था कि दारू ने उसके लीवर को गला दिया। दोनों ही पाक–साफ बचे रहे। बलराम की मौत के बाद उन्हें सहसा मनचाहा करने की खुली छूट मिल गई। चंपा को पति की जगह पर अनुकम्पा नियुक्ति मिल गई थी। अपने पति की तरह वह भी चपरासी बन गई और चंपा से चंपा मैडम में बदल गई थी। कोई भी उसे 'ऐ चंपा' नहीं कह सकता। पुकारो तो इज्जत से 'मैडम' कहकर। अक्सर जिन्हें मैडम कहा जाता है, वे उल्टे पल्ले की साड़ी पहनती हैं। पर चंपा पहनती तो सीधे पल्ले की साड़ी ही, पर जब उसे मैडम शब्द से संबोधित किया जाता तो वह खुश हो जाती। सीधे पल्ले की साड़ी में ही मैडम हो जाती। उसके चेहरे पर लालिमा बढ़ जाती। जो लोग मैडम कहकर पुकारते, वे उसे अच्छे लगने लगते। उसका नवांकुरित दर्प तुष्ट और पुष्ट होता।

शहर के भीतर का किराए का पुराना मकान छोड़ उसने एक अपना खुद का अपना मकान एक विकसित होती कॉलोनी में खरीद लिया था। अब यहाँ उसे अधिक आजादी थी। पर बदनामी की छाया तो वहाँ भी आ पहुँची थी। अड़ोसी–पड़ोसी को मालूम पड़ गया था कि यह जो एक आदमी उसके साथ साए की तरह लगा हुआ रहता है, इसका पति नहीं है। वह मदन है, दूध का धंधा करता है।

मदन रोज चंपा के पास आने लगा। ठीक रात के आठ–नौ बजे आता, रातभर रुकता, सुबह साढ़े चार बजे वापस निकल जाता। यह रोज

की दिनचर्या थी। शनिवार–रविवार को चंपा की छुट्टी होती, तब वह दिन को भी धमक जाता। अक्सर वह चंपा के नए बने घर में ही बना रहता। देर रात तक हा–हा, ही–ही होती रहती। पड़ोसियों ने चंपा को दो गुप्त नाम दे रखे थे–गोरे रंग और भैंसवाले से जुड़ होने के कारण 'भूरी भैंस' और झगड़ालू होने के कारण 'रणचंडी'। रात को वह जैसे गली में प्रवेश करता, लोग दबी जबान में कहते–'लो दूधवाला आ गया, भूरी भैंस का दूध निकालने।'

चंपा के अपने पति से दो बच्चे थे–बड़ी लड़की और छोटा लड़का। रूप–रंग की दृष्टि से लड़की माँ पर गयी थी और लड़का बाप पर। लड़की माँ की तरह गोरी–चिट्टी थी, जबकि लड़का बाप की तरह ठिंगना और साँवला। लड़की सयानी थी। उसने इस नए बाप को लगभग स्वीकार कर लिया था। मदन उसे कभी–कभी सलवार–सूट, छोटे–मोटे आभूषण वगैरह दिलवा दिया करता। वह 'बाउजी–बाउजी' कह–कहकर उससे कुछ–न–कुछ झटकने की कला में माहिर हो चुकी थी। पर छोटा लड़का सरल था। कुछ भोला। कुछ भावुक। छोटा होने के कारण उसका नाम ही छोटू पड़ गया था। कुछ बड़ी उम्र के कुत्सित मानसिकता के लड़कों ने उससे दोस्ती गाँठ रखी थी। गाहे–ब–गाहे उसे खाने के लिए गुटका वगैरह दिला दिया करते। कभी–कभी दारू भी चखा देते। दरअसल उनकी नजर बड़ी लड़की पर थी। वे उसके जरिए उस तक पहुँचना चाहते थे। उसके जरिए अपनी कच्ची कामनाओं को अंजाम देना चाहते थे। कुछ लड़के तो उसके घर के आसपास मँडराने लगे थे, जैसे गुड़ के आसपास मक्खियाँ भिनभिनाती हों। लड़की को भी अपने गुड़ होने का एहसास था। एक–दो लड़के को तो कुछ ज्यादा ही तरजीह देने लगी थी। चिट्ठी–पत्री का आदान–प्रदान होने लगा था। तबतक मोबाईल इतना चलन में आया नहीं था। ऐसे ही कुछ लड़के उससे उसकी माँ और नए बाप के बारे में तरह–तरह के सवाल पूछते। उसे यह सब अच्छा तो नहीं लगता, पर क्या करता?

जिस दिन मदन की पत्नी 'कला' ने अंतिम साँसें ली थीं, उस शाम भी वह चंपा के घर में ही जमा हुआ था। उसका एक गंजा–सा शागिर्द उसे खोजते हुए चंपा के घर आया था। तब मदन चंपा के पास ही हा–हा, ही–ही, हो–हो में डूबा था। अजीब था कि बाहर वह जितना खामोश रहता, चंपा और लड़की के सामने उतना ही मुखर हो जाता था। कहते हैं कि पति की चरित्रहीनता ने ही असमय कला के प्राण ले लिये थे, अन्यथा उसे नख में भी कोई रोग न था।

कोई भी क्रिया हो, एक दिन वह नीरस और यंत्रवत् हो जाती है। नवीनता का रस उसमें नहीं रहता। उसमें कुछ नए पेंच निकल आते हैं। एक दिन हराभरा पेड़ भी पत्रहीन हो जाता है। उसमें नए पत्ते निकलने को आतुर हो जाते हैं। पुराने समीकरणों से सर्वथा भिन्न नए समीकरण बनने लगते हैं। भावनाओं की तीव्रता कम होने लगती है। सोचने के कोण बदल जाते हैं। दिल के बजाय दिमाग की रोशनी में संबंधों को तौला जाने लगता है। फायदे– नुकसान का गणित सक्रिय हो जाता है। पानी थम जाता है तो सड़ने लगता है। उन दोनों के बीच भी यही सब हो रहा था। उसके बीच देह का मामला ठंडा पड़ता जा रहा था और पैसे का मामला जोर पकड़ता जा रहा था। दोनों एक दूसरे को तौलने लगे थे। मन ही मन अपना नफा–नुकसान सोचने लगे थे। निज अस्तित्व का बोध होने लगा था। अहंकार अपना फन उठाने लगा। केंद्र से देह खिसक गई थी और वहाँ पैसा आ गया था।

मदन को यह बात तुष्ट करती थी कि वह एक ऊँची जाति की औरत को रख रहा है। चंपा के मन में यह हीनता थी कि वह एक नीची जाति के मर्द की रखैल है। पर वह खुद को यूँ समझाती कि उसके पुरखों ने नीची जाति की अनेक औरतों को अपनी जाँघों और रसूख के बल पर रखा है और वह उन्हीं की वंशज है। चूँकि मदन खुद उसके पास आता है, इसलिए वह उसकी रखैल नहीं है, बल्कि उसने मदन को रखा है। उसने उसे भेड़ बना रखा है। यह सोचकर वह खुद को शंकर से श्रेष्ठ समझती। वह अपनी हीनता को हावी नहीं होने देती।

कुछ दिनों से मदन और चंपा के बीच चिक–चिक चल रही थी। चंपा ने भावों में बहकर मदन को भैंस खरीदने के लिए करीब डेढ़ साल पहले चालीस हजार रुपये दिये थे। अब वह रुपये लौटाने में आनाकानी करने लगा था। उसने अपने भविष्य निधि खाते से ये पैसे निकालकर मदन को दिये थे। मदन चंपा और उसकी बच्चों पर हर माह करीब तीन हजार रुपये खर्च कर रहा था। उसने मन–ही–मन हिसाब लगा लिया था कि वह चालीस हजार तो कब के पूरे दे चुका है। चंपा ने जब पैसे का तकाजा किया तो उसने देने से इंकार तो नहीं किया, पर दिये भी नहीं। बस वह टालाटूली करता रहा। इस महीने नहीं तो उस महीने दे देगा। कभी यह काम है तो कभी वह काम। रोज के बहाने सुनकर वह तंग आ चुकी थी।

कुछ दिनों से चंपा का मूड उखड़ा हुआ था। ऑफिस में भी नए साहब से कामकाज को लेकर तनातनी चल रही थी। उसने झाड़ू लगाने और पानी पिलाने से इंकार कर दिया था। उसकी निगाह में ये छोटे काम थे और उसे ऑफिस के नीची जाति के चपरासी ही करें। वह ऊँचा जाति की थी और ऐसे काम करने से उसकी इज्जत घटती थी। जबकि नए साहब चाहते थे कि चपरासी होने के नाते उसे ये काम भी करने होंगे। पुराने साहब ने उसे इन कामों से मुक्त कर रखा था। केवल फाइल–रजिस्टर वगैरह ही उसे लाने ले जाने होते थे। यही कारण था कि इन दिनों उसका भेजा गरम रहा करता था। इधर मदन भी पैसे देने के मामले में सिर्फ टालमटोल ही कर रहा था। वह पूरी तरह उखड़ गयी।

उस दिन जैसे ही मदन घर में आया, चाय–पानी का पूछे बगैर उसने अपने पैसे का पुरजोर तकाजा किया। मदन के ठंडे रुख से वह हिंस्र हो उठी थी। नतीजतन मदन घर के भीतर डोल रहा था और दरवाजे पर ताला लटका था। उसे घर से बाहर निकालने में मदद करने चंपा के डर से कोई नहीं आ रहा था। हालाँकि सामनेवाला पड़ोसी उसे चक्कर लगाते हुए देख रहा था।

कुछ देर के असमंजस के बाद मदन ने घर से एक पेंचकस ढूँढ निकाला। खिड़की की जाली स्क्रुओं के जरिए लकड़ी की फ्रेम से जुड़ी थी। उसने एक–एक करके सभी स्क्रुओं को खोल दिया। फ्रेम आसानी से निकल गयी। अब वह खिड़की के जरिए बाहर निकल सकता था और वह बाहर निकल आया। दरवाजे पर ताला पहले की है तरह लटका हुआ था।

अभी वह सड़क के मोड़ तक पहुँचा ही था कि सामने उसे फनफनाती हुई चंपा आती दिखी। वह उससे बचने के लिए दाएँ–बाएँ होने लगा था। पर चंपा ने उसे बचकर निकलने नहीं दिया। उसने उछलकर उसके कमीज की कॉलर पकड़ ही ली। दहाड़ने लगी–'ला म्हारा पयसा द भड़वा। का जय रो हिजड़ा। थके जेल म नी सड़ऊँ तो हूँ म्हारा बाप का मूत की नी। भरसा मत रयजे, असी–वसी मत समजजे भड़वा..छिनाल्या...थारी सीड़ी गुँतू थारी।'

मदन ने जैसे–तैसे खुद को छुड़ाया। पर उसकी कमीज के बटन टूट चुके थे। कमीज के पल्ले खुलकर हवा में फरफराने लगे थे। बनियान छाती पर से फट चुकी थी। छाती के बेतरतीब बाल बाहर दिखने लगे थे। कुछ मुक्के और थप्पड़ वह खा चुका था। उसका मुँह झुका हुआ था। उसके सँवरे

बाल बिखरे हुए थे। सिर का फुग्गा बिगड़ गया था। किसी से निगाहें मिलाए बिना वह नीची मुंडी कर निकल गया। लोगों ने भी दबे–छुपे इस दृश्य को देखा, पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। प्रतिक्रिया को सबने अपने भीतर ही समेट लिया।

कुछ ही दिनों के बाद अपने नियत समय पर मदन को चंपा के घर आते हुए पड़ोसियों ने देखा। उसके चेहरे पर शर्म का कोई भी नामोनिशान नहीं था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। उस घटना की छाया तक उसके चेहरे पर नहीं थी। सिर पर पुराने हीरो जैसा बालों का फुग्गा पहले की ही तरह विद्यमान था। उसकी देहभाषा में पहले जैसा आत्मविश्वास देख उन्हें घोर आश्चर्य हो रहा था।

कुछ देर के बाद ही घर से पहले की ही तरह तरह रह–रहकर हा–हा, ही–ही, हो–हो की आवाजें आ रही थीं। लड़की और चंपा की हर्षित आवाजें भी उसमें सम्मिलित थीं। लगता था कि अब मामला सुलट गया है।

लड़की और छोटू दोनों का ही पढ़ने में मन नहीं लगता था। दोनों ही जैसे–तैसे आठवीं–नौवीं करके घर बैठे थे। छोटे दिन भर और देर रात तक इधर–उधर भटका करता। केवल भूख लगने पर ही घर आता। किसी ने समझाया कि कुछ काम क्यों नहीं करता। तब वह एक चायवाले के यहाँ काम करने लगा था। पर बड़ी लड़की बस बनाव–सिंगार में लगी रहती। मदन ने खासतौर से लड़की की माँग पर एक रंगीन टी.वी. लाकर घर में रख दिया था। वह अक्सर उससे चिपकी रहने लगी थी। मदन की निगाह अब इस लड़की की देह पर टिकी थी। अक्सर वह चंपा की अनुपस्थिति में भी घर पर आने लगा था। लड़की को वह बनाव– सिंगार की तरह–तरह की चीजें लाकर देने लगा था।

अपने दोस्तों के हवाले से छोटू को मदन की कुत्सित मंशा की भनक लगी। शक का कीड़ा तबसे ही उसके दिमाग को खाने लगा था। वह टोह लेने के लिए एक दिन दोपहर बाद अचानक घर आया। उस समय माँ ऑफिस में रहती थी और उसकी बहन घर पर ही अकेली रहती थी। दरवाजा भीतर से बंद था। उसने दस्तक दी। दरवाजा खुलने पर भीतर मदन और अपनी बहन को पाकर उसका माथा ठनका। बहन ने नया सूट पहन रखा था। उसे देख दोनों के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उसे यह बहुत अटपटा लगा था। उसे लगा कि दाल में कुछ काला जरूर है।

उस रात जब वह चाय की दुकान से लौटा तो घर में वही हा–हा, ही–ही, हो–हो की आवाजें आ रही थीं। उसने घर में घुसने से पहले रास्ते पर पड़ा एक पत्थर उठा लिया। घर में पहुँचते ही मदन की ओर इशारा करते हुए उसने कहा–'ए बाहर निकल तो...अबी कि अबी..चल।'

'कय हुयगो थके। थारो बाप हे रे, जरा ढंग सी बात कर। चंपा धीरे से बोली।

'चोप्प...कायको म्हारो बाप। थके कय मालम। तु तो अपणी मस्ती मेज मस्त रे। यो तो म्हारो जीजो बणनु चइरो।' छोटे के हाथ में पत्थर था और मुद्रा आक्रामक।

चंपा ने पहले मदन को और फिर अपनी बेटी को घूरकर देखा। दोनों की नजरें झुक गई।

'सुण्यो कि नी टेगड़ा। कय बयरो हे। चल...बाहर निकल अबी।' छोटू फिर गरजा।पर इस बार चंपा चुप ही रही। वह छोटू की बात से सहमत लग रही थी।

मदन मौके की नजाकत देख मुंडी नीची कर घर से बाहर निकल गया।

'इना घर म फिर कदी पांय मेल्यो नी तो थारा टांगड़ा तोड़ न्हाखूँगा।' उसने जाते हुए मदन को चेतावनी दी। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे। वह क्रोध से तमतमा रहा था।

पड़ोसियों की नजर में छोटू सहसा बड़ा हो गया था।

कविताएँ

डॉ. रश्मि नायर
बगाडनगर, थाने, महाराष्ट्र
मो. 8333013526

रिमझिम सावन

झूले–झूलाएँ सावन की हवाएँ
भूले नही भूलाएँ वो नजारे
भरा है गुलशन रंगीन गुलों से
फैली है खुशबू जिनकी हवा में
जैसे बिखेरा हो इत्र किसी ने
तितलियाँ झूमें हर डाल–पात पे
नटखट भँवरे मंडराएँ फूलों पे
शोर पवन का गूँजे हर दिशा में
रिमझिम रिमझिम बरखा बरसे
बिछड़ों से मिलने जियरा तरसे
मदमाता जब सावन आ जाए
संदेश आए तब पिया मिलन के
मुस्कुराएँ अब बिरहनों के चेहरे
साजन संग सजनी झूले सावन में
भर गई खुशियाँ गोरी के आँचल में।

सुनील कु0 पटेल
माणिकपुर, सूर्यगाढ़ा, लखिसराय
9431613832

बेशर्म

मैं बड़ा ही बेशर्म हूँ
मुझे शर्म
बिल्कुल नहीं आती
लेकिन बेशर्म शर्म के
धैर्य का बाँध तब टूटा
जब हिन्दी की कक्षा में
श्यामपट्ट पर
हिन्दी (Hindi) अंग्रेजी में लिखा पाया
तब मेरे अंदर का शर्म शरमाया
बात इतने पर रुक जाती
तो बात बनती
लेकिन हमसे भी बड़ा बेशर्म
जब अपने ही बच्चों को
Puppy (कुत्ता का बच्चा) कहकर बुलाया
मेरे अंदर का शर्म और भी शरमाया
मुझे शर्म के मारे कुछ नहीं भाया
जब मेरे ही सामने
एक अंग्रेजी पसंद व्यक्ति ने
अंग्रेजी स्कूल के बच्चे से
अंग्रेजी में
उसके Father (बाप) का नाम पूछा
बच्चा द्वन्द्वमें पड़ा
और पूछा, कहाँ का?
घर का या स्कूल का?
हूँ न मैं बड़ा बेशर्म?
अन्यथा ऐसी बेशर्मी की बात बताने में
मुझे शर्म क्यों नहीं आई
इतने में शर्म खिलखिलायी
और हम से बोली
बेशर्म तुम नहीं हो।

कहानी

आत्मचेतना

अजीत कुमार, शिक्षक,
उ0वि0 शाहकुंड,
भागलपुर

आज राष्ट्र मीनार के ऊपरी गुंबद पर गुमसुम बैठा था। पवन समय के पास जा पूछा–''भैया! राष्ट्र के मौन का राज बता सकते हैं क्या?''

समय एक लंबी साँस खींच आँखें ऊपर उठा आकाश से बोला–''हे आकाश! राष्ट्र के चुप्पी का कुछ कारण तो बता।'' समय ध्यानावस्था देख आकाश झटपट अपना काम निपटा लेना चाहा। फिर ऊपर झाँका, देखा सूरज लहूलुहान हो लालिमा के चादर में सिमट अंतिम झलक दिखाने को मजबूर था।

संध्या रात्रि को सजाने–सँवारने में व्यस्त थी। अब आकाश निशा संग झिलमिलाते टिमटिमाते शृंगारिक वसनों को पहन सुशोभित हो उठा। चाँदनी भी रूपहली चादर फैला निःस्तब्ध थी।

वसुंधरा अभी भी खामोशी का वसन तान खामोश थी। समय मही को पास बुला बोला–''देखो, भू पुत्र सृजेता को लुटने में निमग्न है। पर वो कान में तेल दे चुप पड़ी सिसक रही है। इसी गलती के कारण राष्ट्र मौन है। मन में कभी क्रोध या फिर विवेकशील बन चुप है।

इन दिनों भू से तब मंडल पर भूत–पुत्रों ने कब्जा जमा और पाने को व्याकुल है, अपने मशीनी ताकत से सर्वत्र छलांग लगाने को उद्यम मचा रहे हैं। इससे सबसे अधिक घायल धरती हुई है। इसी कारण राष्ट्र दुःसाध्य व्रतों का संकल्प कर चुप है।

समय जटिल व्रतों को जान राष्ट्र से कहा–'वत्स! उठो।' राष्ट्र नयन खोल देखा, सीना ताने विकास अपने चमत्कारी कारनामों का करतब कर खुश है। राष्ट्र आश्चर्य से पूछा–''अरे, तुम इतना जल्दी बन–ठनकर कैसे स्मार्ट बन गये।''

विकास आँखें मटका मुँह में गिलेरी करते कहा–''मेरा कमाल तो योजना के हाथों जो ठहरा है।'' फिर सिर नीचे कर कहा–'मगर जलन क्यों?' राष्ट्र पुचकारते हुए कहा–'नोचनी हमें नहीं, तुम्हीं को होगी।' इसी बीच धतिंगा रुपये से भरा एक अटैची दिखा कहा–'विकास इसी की औलाद है।'

फिर आगे कहा–'सरकार पंचवर्षीय परियोजनाओं द्वारा गाँव से लेकर शहर तक को स्मार्ट बनाने को बेचैन है।' साँस थामते मुँह फेर मुस्कुराकर बोले–''अब मैं योजना और परियोजना से नाता जोड़ धरती कौन कहे, आकाश पर भी धाक जमाने को ठान रखा हूँ।''

कुछ सोच आँखें झुका बोला–'विज्ञान भैया का मेहरबान होना जरूरी है। पर इन सबों के महागठबंधन से ही संभव है। वायु बीच में टपक मेज थपथपाते कहा–''यदि मैं चाह लूँ तो तुम्हें नानी याद दिला दूँ।''

'बस, बस!' आँखें तरेर राष्ट्र कुछ बोलना चाहा। फिर कुछ सोच रुका और बुदबुदाते हुए कहा–''धन्ना सेठ से महागठबंधन कर धौंस जमाते फिरता है।'

धतिंगा एकाएक जोर से बोला–''मुझे देखो, हाँ इतना कह देता हूँ कि पुरुषार्थ मुझे सदा से प्रिय रहा है। पर तुम चिंता मत करो; क्योंकि तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा। फिर तो नवयौवना का परिधान पहन बिल्कुल स्मार्ट लगने लगोगे।''

आज संकटग्रस्त राष्ट्र को लगातार भव्य और आकर्षक बनाया जा रहा है। मशीनी छलाँग द्वारा लोक–लोकांतर की खबर रखनेवाले बड़े एवं छोटे संयंत्र लगा–लगा निरीक्षण व परीक्षण कर निष्कर्ष निकाले जा रहे हैं। बस एक बटन पर ऊँगलियाँ क्लिक करने मात्र से ही संसार के घटित घटनाओं की तस्वीर सामने आ टनटना उठता है। इसपर मानव तालियाँ बजा–बजाकर वाहवाही दे खुश है।

अभी भी वसुंधरा नींद की गोलियाँ खा बेसुध पड़ी थी। रह–रहकर स्वप्नद्रष्टा बड़बड़ा रही थी। इधर मानव इसे स्मार्ट बनाने की तैयारियों में जी–जान से जुटा है। इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य का नारा दे–देकर भूमाता को सजाया–सँवारा जा रहा है।

भूपुत्र की भूमाता आज अनोखा स्मार्ट दिख रही है। उसकी प्रतिभा विलक्षण और कृतियाँ दूर–दूर तक फैली हैं। प्रकृति के विश्वविद्यालय में निर्माण एवं निर्माणाधीन भौतिकी सामग्रियों से अटापटा प्रांगण वर्तमान में बहुत कुछ कहने को चिंतित है। समय भूमाता को एकाएक झकझोरने लगा। वसुंधरा को गहरी नजरों से देखा। अब वह जग चुकी थी। फिर बाल–सँभाल बोली–''तुम सभी ने मुझे इतना भरमा दिया है कि मेरा खुद असली नैसर्गिक वसनों को तन से जबर्दस्ती छीन–झपट, काट–काटकर अर्धनग्न ही नहीं नग्न कर दिया है। हमारे नीचे के परतों में दबा हुआ रत्न निकाल लिया। रे बेटा! तूने हमारे जीवनचक्र में जहर घोल–घोल कल्याणी से महाकात्यायनी बना डाली।''

और साँस खींचकर बोली–''आज हमें हमेशा सपनों से ही खतरा है। तू हमारे साथ हाँ–हाँ हमेशा विश्वासघात किया है। तू स्मार्ट का मशाल ले हमारे विनाश का सरंजाम जुटा रहा है। फिर तो टिहुंक मार रोने लगी। पवन रोने का स्वर सुन पास पहुँच, सान्त्वना दे चुप करा चले गये।''

वसुंधरा उठी, बोली–'सुनी हूँ, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहा है। कई बड़ी–बड़ी बातें हो रही हैं। इसी बीच मही आकर बोली–''तुम्हारा त्याग तो ब्रह्मस्वरूप है।' वसुंधरा हवा में हाथ चमकाते बोली–'देखो, बहन! कैसा बेटा जिसने मेरी इज्जत के साथ भीतर–बाहर उघाड़–पुघाड़कर नीलाम कर दिया। पहले मनु ने मेरा दाम लगाया, सजाया, बजाया; फिर खोखला बना बदचलन, डायन, डरावनी, भिखारिन, पिचाशिन, कलमुँही कह लंकिनी, शंखिनी तक वो कह डाला।''

मही उसके शब्दों को बड़ी ध्यान से सुन रही थी। फिर कलेजे पर हाथ रख बोली–''हाय रे मनु! तुम्हारा मन ढेरों आशाओं और वासनाओं के बंधन से बँधा है। ये क्षुद्र विचार एक दिन तुझे गला देगा।'' समय ने मही से कहा–''वसु दीदी की बातों को दिल से समझ। यह सच है कि मानव सदैव स्वयं अर्जित प्रतिभाओं से दुनिया में लोकप्रिय हुआ है। अंतरिक्ष की गतिविधियों को खोजबीन कर सच का उजागर किया, मगर..।'' कह माथा पकड़ लिया। मही झकझोरते हुए बोली–''चुप क्यों हो गयी?''

फिर स्मरण कर कहा–''अस्वच्छता, ग्लोबल वार्मिंग, विभिन्न तरफों से प्रदूषणों की घेराबंदी से वातावरण सिर्फ डरावना ही नहीं, जानलेवा बन गया है।'' मही बोली–'दिल्लगियाँ छोड़ो।' समय बोला–'विश्वास नहीं तो वाहन में बैठ, दिखाता हूँ। देखो, लंबी जाम, जिसे पार करना आफत मोल लेना होगा।' मनु उतर पास के बैंक पर एटीएम कार्ड लगाया ही था कि जाना साइबर गिरोह एकाउंट को खाली कर डाला है। कुछ लिंक फेल होने से शादी एवं मृत्यु शय्या पर पड़े लोगों का काम बिगड़ रहा है। पर मैनेजर समस्याओं को समझने का प्रयास नहीं किया।

मनु रुपये का अवमूल्यन होने से सबसे अधिक परेशान था। समय के साथ मही दबे पाँव घूम–घूम देख रही थी। सभी ओर सी.सी. कैमरा लगा था। ज्यादा उलझने पर कानूनी दाँव–पेंच में पड़ने के डर से चुप रहने में भला समझा।

फिर तो भीड़, सड़ांध, बंदी, धुआँ से परेशान मानव जिंदगी को असमर्थ जान विवश था। सर्वत्र दुर्व्यसनों से शक्ति और साहस ताश के पत्तों–सा बिखर गया था।

चतुर्दिक् निर्ममता का पाषाण–हृदय विदीर्ण हो उठा है। आज शांति का भी कंठ अवरुद्ध हो गया। राष्ट्र के हृदय में अभी भी उद्वेग चल रहा था। विकास के भव्य वायुयान में दुनिया का चक्कर लगाने निकल पड़ा। राष्ट्र अपने अंतर्चक्षु से देख पाया कि मानव में संवेदनाओं की कमी आत्मघाती होती जा रही है।

विचारों के ऊबड़–खाबड़ पथ पर राष्ट्र कभी हँसता, मुस्कुराता, फिर छलाँग लगा छाती में मुक्का मार स्वयं का बाल नोच बड़बड़ाकर बोला–''मनु तुमने प्रकृति–माँ का आवरण उजाड़ा है। मैं कसम खा कहता हूँ कि अंततः सजा दिलाकर ही रहूँगा।''

समय राष्ट्र के बँधी मुट्ठी देख छिप चहलकदमी करने लगा। देखा स्वप्निल वसु एकाएक चिल्ला उठी थी–''न...हीं, न.. हीं! नहीं मुझे गोली मत मारो, मेरी कोख न उजाड़ो, मेरे बाबू को मत मारो। ये निर्दोष हैं। इसे जिन्दा मत जलाओ। मेरे गाँव में आग और न लगाओ।''

ऐसे और भी कई बातों को दीदी बड़बड़ाये जा रही थी। फिर झटके से उठ बालों को नोचने, भमोरने लगी। लाल सूर्ख खौफनाक चेहरा राष्ट्र को गौर से निहार रही थी। राष्ट्र पास जा कहा–''दीदी! ये तू कैसी हालत बना रखी है।' वसु झटके से उठ बोली–'अब जाने का मुझे रास्ता दो।' राष्ट्र प्यार से कंधे पर हाथ रख कहा–''बता तो सही, फिर रास्ता स्वयं मिल जाएगा।'

कुछ देर बाद समान्य हो आँखें मींचती स्वप्नद्रष्टा बोली– ''एक खूँखार दैत्य देखा। वह पास आ कड़क भाषा में बोला–ठहरो। अरे रे, उसके लाल–सूर्ख नयनों से ज्वाला भरी स्फुलिंग बड़ी ही डरावना और बेतरतीव लग रही थी। मूँछें कड़ी, बड़ी दाँतोंवाला महादैत्य–सा बड़ा–बड़ा बिखरे झोंटे, दो नुकीले सींग, कंधे पर तनी राइफलें, विशाल बाहु, खौफनाक बदरंग चेहरा, डरावना अट्टहासें, बड़े–बड़े तोंदवाले नर पिशाच थे। वह एक उड़ते यान से उतर झाड़–झाड़ियों में लुकते–छिपते, बेहद दबे पाँवों से कमरे में आ... खबरदार! जो जहाँ है। मेरी उस स्वप्न को याद कर आँखें छलछला उठती हैं।

एक गहरी साँस खींच सामने रखा गिलास से पानी पी, बोली–''मैं सचमुच डर गई हूँ।''

राष्ट्र कहानी को गौर से सुन रहा था। बोला–''दीदी! मैं धन्वतरी को बुलवाता हूँ। वह ठीक कर देगी।''

राष्ट्र आकाश को निहारा–''फिर रिस्ट वॉच टिक–टिक कर आगे बढ़ रहा था। वृक्षाश्रयी खग चुन–चुन करने लगा था।

राष्ट्र ने कहा–'दीदी! सपना कभी अपना नहीं होता। तू जगत् की माँ है, किन आशंकाओं से बिफर पड़ी।'

काल और महाकाल भी साथ थे। इसी बीच आदित्य आ कुछ बोलना चाहा। पर दूर खड़ा पवन मुँह पर ऊँगली रख चुप रहने का इशारा किया। इससे आदित्य के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। राष्ट्र पुरोहित पर नजर फेरा। वह कहा–'सत्य जानो।'

राष्ट्र पुनः बोला–'सो कैसे?बाद में। अभी बचाने का उपाय सोचा जाए। कहीं न कहीं होकर ही रहेगा।'

आदित्य समय को एलर्ट कर फास्ट होने को कहा। समय अपना सूचना तंत्र निकाला। देखा समय काला बिंदु लगातार ऑफ ऑन हो रहा था। पर सभी तरफ गहन खामोशी थी।

सुबह का धूप खेत–खलिहानों में पसरा था। स्कूल के मैदानों में भी धूप वृक्षों से उतर फैला था। बड़े घरानों के बच्चे अपने लग्जरी गाड़ियों एवं स्कूल बसों से छात्र–छात्राएँ उतर हँसते–हँसाते क्लास रूम जा रहे थे। कुछ उधम मचा रहे थे। समय से प्रार्थना की घंटी लगी।

तत्पश्चात् वर्ग संचालन की घंटी बजी। कुछ बच्चे अभी भी बाहर थे, जो दौड़कर कक्षा में जाना चाह रहे थे। शोर–शराबा शांत हो चुका था। वर्गशिक्षक वर्ग में उपस्थित छात्रों की उपस्थिति पत्रक में उपस्थिति दर्ज कर रहे थे।

एकाएक जोरदार बम फटने की आवाज आई। फिर गोलियों की तड़तड़ाहट शुरू हो गई। कई गोलियों से शिकार बच्चे–बच्चियों के खून से वर्ग कमरा एवं ढयोरियाँ खून की धार और लाशों से पट गया। सूचनातंत्र द्वारा यह खबर आग की धधकती लपटों की तरह संपूर्ण दुनिया में फैल गया।

दृश्य देख समय गश्त खा गिर पड़ा। आदित्य अपना रिस्ट टी.बी. ऑन किया। देखा कई मानवी संगठन जगह–जगह ऐसे कई क्रूरतम घटनाओं को अंजाम दे खुशियाँ मना रहा है।

फिर आदित्य के कानों में एक डरावना अट्टहास का स्वर मौन में गूँजा। समय अपने नयन को ऊपर की नीलिमा को टकटकी लगा देखा। दूर खड़ आतंकी आतंक कर खूनी खंजर ले सरपट भागे जा रहा है।

सारी गतिविधियों को आधुनिक इंटर तकनीकियाँ काले करतूतों को कैद कर रखा था। समय पास जा पूछा–'क्या तुम्हें डर नहीं लगा।'

बोला–'प्रभु कृपा से मैं उनकी नजरों से बचा रहा। पर अभी और बातें करने को समय नहीं है। फिर बाद में बातें होंगी, यह कह चला गया।

इस घटनाचक्र से भू राष्ट्राध्यक्षों का एक गोलमेज सम्मेलन हो रहा था। घटना से मर्माहत बड़े–बड़े राष्ट्रध्यक्ष सबसे अधिक चिंतित थे। अभी सभी का एक ही मुद्दा था कि हमलावरों से कैसे निपटें। साथ ही पर्यावरण से जुड़े मुद्दे भी उठने लगे।

दृश्य देख–सुनकर आदित्य को लगा ब्रह्मांड के द्युलोक में भेदभावों के कारण विभीषिका का दौड़ भूलोक पर हुआ है। इस बात से सभी का कान खड़ा हो गया। आदित्य, वरुण, चक्रवात सभी ने कहा–'आज स्वयं में मंथन का समय है।'

इसपर आदित्य सँभलकर बोला–''संसार के जगत्पति सूरज हैं। वो भूपुत्र के पिता हैं। वही भू–बेटा इतना बड़ा मारक विनाशक कार्य कर बैठा। आपके पास सभी का डाटा वेश है ही, जो सूक्ष्म के मौन में लिपटा अमिट है। महामना अपने विशेष पराक्रम द्वारा सभी को अपनी तरफ आकर्षित किये रहते हैं। आप देव संस्कृति के अधिपति हैं।''

इतने में पवन ने आ कहा–''आदित्य झूठी बड़ाई न लो। जान लो कि मानवीय प्रतिभा ने वैज्ञानिक तकनीकी संसाधनों द्वारा समस्त ग्रह–नक्षत्रों पर हमला को कमर कस लिया है।''

इतना सुन सूरज आग–बबूला हो तमतमा उठे। मानव सूरज का मनोविज्ञान जान बुद्धि को बोध करा कातर भावों से हाथ जोड़कर कहा–''हे जीवनदाता! आप हमारी रक्षा व सुरक्षा करें। तुम्हारे क्रोध से संसार खाक हो जाएगा।''

इतना सुन पुरोहित का चेहरा मुस्कुरा उठा, पर दूसरे ही पल दुनिया की सबसे बड़ी हस्तियों का हश्र जान चुप रहा।

समय बड़ी चालाकी से पुनश्च टाइम इतिहास के पन्नों को उल्टा देखा। गणनोपरांत पाया कि सूरज भी कम वाहियात नहीं है। ये अपनी शक्ति

के महादेश में ब्रह्मांड को तोड़ा, फिर उसे कई मंडलों में बाँटा। भू से प्रेम किया।

इसे औरत की संज्ञा दे रक्षार्थ जल दिया। फिर प्राण पदार्थ के वास्ते वायु, अग्नि और आकाश पर सभी निर्भर होते रहे। कभी–कभी छोटी–मोटी बातों पर पटरी नहीं बैठा, तो उसके लिए अलग रूप सज्जावाले आतंकियों का निर्माण कर बर्बाद किया।

भूमि अपने रक्षार्थ भूपुत्रों को जन्म के साथ ही कई जैव एवं अजैवीय से उसकी रक्षा की। इससे धरती की विरानी हटी, आबादी और आजादी फैली।

एक लंबी साँस खींचकर स्क्रीन ऑन कर देखा, इसपर नियंत्रण हेतु कई प्राकृतिक आपदाओं का कतार खड़ा कर सिंधु को हवाले कर वाष्पी की मदद से एक जीवंत सत्ता दे डाली। अब हमारी भू–वसुंधरा बन दमक उठी। इसी सुंदरता पर सूरज की नजरें टिकी हैं, जो एक कलंक का टीका लगता है।

पुरोहित बोला–''जीवन में समझौता व सामंजस्य ही पुरुषोत्तम को पुरुषार्थी बनाता है।'' माथे पर हाथ रख बोला–''इन दिनों मनु स्वार्थवश कुछेक संगठन बना आतंकी हमला भू महाशक्तियों पर करने से नानी याद क्यों आई?आज ये चिल्ला– चिल्लाकर क्यों औरों को धिक्कार रहा है?क्रूरता का जामा पहनने वाला सागर की बेटी हैप्पी, पैराडाइज और निम्मी जैसे कइयों का अपहरण किया?प्यार का लुत्फ ले गर्म तेवर से सभी को तबाह क्यों किया?''

हवा ने कहा–''धिक्कार है किसी के बहू–बेटियों पर बुरी नजरें गड़ाना।'' शांति को नंगे पाँव भागते देख समय ने रोका और कहा–''जानती हो, महाशक्तियों के ट्रेड सेंटर पर आतंकी निशाना लग चुका है, तभी न दुनिया बचाने की बातें होने लगी है।'' पवन ने हिम्मत जुटा महाशक्तियों से कहा–'हे जगत्पति आपत्तिकाल के लिए आपातकालीन व्यवस्था करो। एक नये युग वास्ते युग निर्माण निमित्त पहले ध्वंस करो।

इससे रवि घबड़ाकर गुरु के विशाल मुखमंडल को देखा। गुरु उसकी परेशानी जान आतंकी से कहा–''तुम बदले–बदले से लगते हो।'' आँखें नीचे कर गर्व से कहा–''अब मैं धरती स्थित आई.एस. (इस्लामिक स्टेट) शब्द से नवाजा जाने लगा हूँ। इससे राष्ट्राध्यक्षों में हाय–तौबा मच गया है।''

इसी बीच प्रतापी आ बोला–''मनु की प्रतिमा वैज्ञानिक बन, मशीनी संस्कृतियाँ विकसित कर अप्रत्यक्ष जगत् के अद्‌भुत रहस्यों के वास्ते आतंकी बन गया है। ग्रहों के अधिपति सूरज पर भी हमला।''

मानव का नाम सुनते ही चक्रवातें ताल ठोक कहा– ''मौसमी तू साथ दो। मौसमी जलवायु में छुपा अलमीनो व अलनीनी को देख गुम्मी लाद दी। बार–बार सिर मुड़ौना से कहती हूँ–''देखो, रणक्षेत्र में मेरे आगे मत कूदो। अलनीनी बोली न आने का वादा तो जरूर करती, पर प्रतापी के घनचक्कर में फँस अलग ही रंग–रूप में आती हूँ। क्या करूँ, मैं मनु विज्ञान के रडार पर..

वायु बातों को सुन शांत हो कहना चाहा, पर चक्रवात वायु को रुका देख बोला–''रे मुझौंसा! तुम्हीं खच्चर का गिरह है।''

वायु साहस कर बोला–'कैसे?' चक्रवात ने पास बुलाकर कहा–'तुम नीनी और नैनी के झाँसे में पड़ मुझे लुंज–पुंज बना शक्तिहीन बना देता है। तू जरा भी साथ देता तो झोपड़ी कौन कहे, बड़े–बड़े अट्टालिकाओं को चीर कर तहस–नहस कर देता।

चक्रवात सामने पहाड़ी से टकराकर रोने लगा। बूँदों के बौछारों से गरीबों की घर–झोंपड़ियाँ उजड़ गयीं। इससे मुझे आह लगेगा ही। मैं तो मानव दोस्त विकासीय संसाधनों को चकनाचूर करना चाहा था। पर तुमने बीच में ही हाथ खींच लिया और मैं कमजोर पड़ गया हूँ। फिर भी जो चल बन पड़ा, किया ही। इतना मुझे सत्य लगा कि दौलत और शोहरत से मानव सुखी नहीं है।

इसी बीच पवन आ कहा–''दीदी! बेमिसाल सूचनातंत्रों (उपग्रह यान, प्रक्षेपण तंत्र, इंटरनेट, मोबाईल, रेडियो, वाट्सअप, फेसबुक) द्वारा प्रकृति के मौन गतिविधियों पर नजर रखना शुरू कर दिया है।

इस खबर में ब्रह्मांड का अधिपति माथा पकड़ गमगीन हो गये। आँखें सूझीं, पलकें गीली हो उठीं–देखा, सामने अम्बा थी। कभी इसके कारण सूरज को कलंकित होना पड़ा था। सिर घूमा देखा–बाजू में पेनम्ब्रा भी थी।

'हाय! अब मैं क्या करूँ! प्रेम मैं तो वसुंधरा से किया था, परन्तु एक क्रोध ने सब कुछ उजाड़ दिया।''

मनु अपनी मशीनी ताकत से सूरज के घर पहुँचने की तैयारी कर रहा है। इस खबर को सुन गुस्सा से मुट्ठी बाँध बोला– ''सस्साला भूपुत्र! ने विज्ञान की विकास–यात्रा कर मुझपर धौंस जमाने आ गया। ठहरो, मैं उसे खाक कर ही दम लूँगा।''

पछिया अपने आँचल में ठंढ और लू को ले निकल पड़े। प्रकृति पर जगत्पति द्वारा भेजा आतंकियों ने प्राकृत सौंदर्य के तमात घटकों को तहस–नहस कर डाले।

इधर पवन सिन्धु के पास पहुँच भूसंतानों की काली करतूत वाली कहानी चित्र समेत दिखाया, इससे सिन्धु की त्योरियाँ चढ़ गयीं। समय ने पवन से कहा–''यह संसार बड़ी ही रहस्यमयी है। जीवन और जगत् का अपना एक घुला–मिला इतिहास एवं भूगोल है।

मानव! विज्ञान का अलादीन चिराग ले धरती व अंतरिक्ष को जबसे भोगना शुरू किया, तभी से शेखचिल्ली सपने को साकार करने लगे हैं। पुरोहित ने कहा–''विज्ञान आधुनिकता का नवरंग चढ़ा मानव को अंध बना डाला है। मानव मस्तिष्क का कम, विज्ञान के उपकरणों से रोजमर्रा के कामों को निपटा रहा है।

आदित्य सत्य जानने स्वीच ऑन किया। देखा, सूरज अपने पर आफत जान भीतर से धधक रहा है। प्राणवायु भी प्रदूषण मार से चोटिल हो भूसंतानों को विनाश करने में जुट गया है।'अब क्या होगा?' समय ने पवन से पूछा–''क्या समस्याओं का आतंकी हमलावर तैयार है?' तैयार तो है पर बिना सिन्धु से आज्ञा लिये काम नहीं होगा। दोनों विज्ञान के शत्रु से लड़ने को ठान सृष्टिकर्ता को बचाने का उपाय लगाया।

दोनों ने तय किया कि सर्वप्रथम सूरज का गुस्सा शांत कराया जाए। फिर वसु दीदी को बचाया जाए।

सर्वप्रथम समय मानव के कानों में फुसफुसा कर कहा–''सर्वप्रथम प्रार्थना करो, तभी सूरज दा का क्रोध काबू होगा। द्वंद्वमें उलझना ठीक नहीं। चापलूस मानव यहाँ समझ गया। समझ काम भी आया। इसी बीच एक जुलूस जा रहा था– 'नेक बनो, इंसान बनो।'

राष्ट्र चार मुख्य कसौटियों पर गहन जाँच–पड़ताल किया। पाया–जहाँ श्रम, मनोयोग, त्याग और निरहंकारिता होगा, वहीं प्रगति है। इसी से मानवी जगत् की पीड़ा मिटेगी। प्रकृति का अनुशासन समझा जाएगा। यही आत्मचेतना जीवन और जगत् को जोड़ेगा।

लघुकथा

क्षतिपूर्ति

सीताराम गुप्ता
पीतमपुरा, दिल्ली–110034
मो.–9555622323

रामप्रकाश सिंह की उम्र तो त्यादा नहीं थी, लेकिन काफी दिनों से कुछ थके–थके से और अस्वस्थ दिख रहे थे। अस्वस्थता के बावजूद वे नियमित रूप से दफ्तर आ रहे थे और अपना काम भी पूरा कर रहे थे। ऐसे में कौन सोच सकता था कि अचानक ऐसा भी हो सकता है?रामप्रकाश सिंह एक दिन काम करते–करते ही कुर्सी से लुढ़ककर नीचे गिर पड़े। उन्हें फौरन अस्पताल ले जाया गया, पर सब बेकार। रामप्रकाश सिंह की अचानक मौत से उनके परिवारवाले तो दुखी थे ही दफ्तर में उनके साथ काम करनेवाले जयनारायण वर्मा उनके परिवारवालों से भी ज्यादा दु:खी लग रहे थे। जिससे भी बात करते यही कहते, 'अब रामप्रकाश सिंह के परिवार का क्या होगा?हमें उनके परिवार की कुछ मदद करनी चाहिए।' सभी सहकर्मियों ने जयनारायण वर्मा की बात का समर्थन किया। रामप्रकाश सिंह के परिवार की मदद के लिए कुछ फंड जुटाने का फैसला किया गया।

जयनारायण वर्मा के नेतृत्व में उनके सुझाव के अनुसार फंड जुटाने के लिए कुछ रसीद बुक्स छपवाकर सबको एक–एक रसीद बुक दे दी गई। रसीद बुक देकर सबसे कहा गया कि दफ्तर के अलावा और जहाँ से भी संभव हो पैसा इकट्ठा करें। रामप्रकाश सिंह के लिए हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। सभी पैसा इकट्ठा करने में जुट गए। चार दशक से भी ज्यादा पुरानी है ये घटना। उस समय मंदे जमाने में भी तेरह हजार रुपये इकट्ठे हो गए, जो बहुत बड़ी बात थी। रामप्रकाश सिंह के घरवालों को पैसा पहुँचाने का जिम्मा भी वर्माजी को ही सौंप दिया गया। एकत्रित पैसा सौंपने के लिए वर्माजी अगले ही दिन रामप्रकाश सिंह के घर चले गये। रामप्रकाश सिंह की पत्नी को जब ये पता चला कि दफ्तर के लोगों ने हमारे लिए चंदा इकट्ठा किया है, तो उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने वर्माजी से कहा, 'भाई साहब! हम इतने भी गिरे–पड़े नहीं हैं कि हमारे बच्चों की परवरिश के लिए चंदा इकट्ठा किया जाए।'

रामप्रकाश सिंह की पत्नी ने पैसों को हाथ लगाने से भी मना कर दिया था, लेकिन जयनारायण वर्मा किसी तरह समझा– बुझाकर एकत्रित पैसा रामप्रकाश सिंह की पत्नी को दे ही आए। इस घटना के कुछ दिनों के बाद दफ्तर में ये अफवाह फैल गई कि जयनारायण वर्मा रामप्रकाश सिंह की पत्नी को तेरह हजार रुपये नहीं, बल्कि सिर्फ तीन हजार रुपये ही देकर आया है। जिन लोगों ने फंड इकट्ठा करने में मदद की थी, जब उन्होंने इस अफवाह के बारे में जयनारायण वर्मा से पूछा तो उसने कहा,'हाँ तीन हजार रुपये देकर आया हूँ। लेकिन रुपये तो तेरह हजार इकट्ठे हुए थे, फिर सिर्फ तीन हजार ही क्यों देकर आए?लोगों ने जानना चाहा और कहा, 'वर्मा जी! आपने ये बड़ी गलत बात की है।' जयनारायण वर्मा ने कहा, 'ऐसा है मौत से कुछ दिन पहले रामप्रकाश सिंह ने मुझसे दस हजार रुपये उधार लिये थे, जो उसे लौटाने थे। अचानक मौत के कारण वो मुझसे उधार लिये पैसे लौटा नहीं पाया। अब मैं अपने दस हजार रुपये किनसे माँगता?मैंने इकट्ठे किये गये पैसों में से अपने पैसे काट लिये, कौन–सी गलत बात कर दी?

अहले करम

जैसे ही वृद्ध अम्माजी के दाँत में दर्द हुआ, नरेन्द्रजी के सामने समस्या खड़ी हो गयी। अम्माजी का एक दाँत बुरी तरह से हिल रहा था, जिसे निकलवाना अनिवार्य हो गया। यद्यपि डेंटल क्लीनिक घर से सौ सवा सौ गज से ज्यादा दूर नहीं था, लेकिन नरेंद्र जी का फ्लैट दूसरी मंजिल पर स्थित होने से अम्माजी को क्लीनिक तक ले जाना बड़ी समस्या हो गई; क्योंकि पंचानबे साल की उम्र में अम्माजी के लिए सीढ़ियाँ उतरना और चढ़ना असंभव था। फिर क्लीनिक के भी पहली मंजिल पर स्थित होने से समस्या और गंभीर हो गयी। नरेंद्रजी में उतनी ताकत नहीं थी कि माँ को गोद उठाकर नीचे उतार दे। तभी कॉलोनी के गेट पर तैनात गार्ड का ध्यान आया। उससे संपर्क किया गया। वह आया और उसने एक विशेषज्ञ की तरह घटनास्थल का निरीक्षण करते हुए कहा, 'सर जी! माताजी को सीढ़ियों से नीचे उतारना बहुत मुश्किल है और चढ़ना तो और भी मुश्किल है; लेकिन आप कहते हैं तो किसी तरह कर दूँगा ये काम।' इस काम के लिए उसने दो सौ रुपये माँगे।

डॉक्टर से मिले एप्वाइंटमेंट के अनुसार उसे नियत समय पर बुला लिया गया। अम्माजी को सीढ़ियों से नीचे उतारते समय वो एकदम अनाड़ी की तरह व्यवहार कर रहा था। वो उन्हें गोद में लेकर उतारने की बजाय ऐसे खींच रहा था, जैसे किसी सामान को खींच रहा हो। इस दौरान उसे न केवल कई बार टोका गया, अपितु डाँटा भी गया। वास्तव में घर के सदस्यों ने ही मिलकर सहारा देकर किसी तरह अम्माजी को क्लीनिक तक पहुँचाया। वहाँ पहुँचने के बाद उसने कहा कि जब डॉक्टर देख लें, तो मुझे फोन करके बुला लेना। अम्माजी की उम्र को देखते हुए डॉक्टर ने सबसे पहले उन्हें ही बुला लिया। ट्रीटमेंट के बाद अम्माजी ने वहीं पर थोड़ी देर आराम किया। बाद में अम्माजी को घर ले जाने के लिए गार्ड को पुन: फोन किया, लेकिन वो काफी देर तक नहीं आया। अम्माजी के कुछ इशारों से और कुछ दुखते मुँह से किसी तरह कहा कि इस गार्ड ने तो मेरे हाथ–पैरों में दर्द कर दिया, उससे अच्छा तो मैं खुद चली जाऊँगी।

लेकिन अम्माजी के लिए एक सीढ़ी उतरना भी संभव नहीं हुआ। वे पहली सीढ़ी पर ही दीवार के सहारे खड़ी हो गयी। तभी क्लीनिक के अंदर से डॉक्टर का सहायक आया और उससे कहा, ''मैं अम्माजी को सीढ़ियों से नीचे उतारने में मदद कर देता हूँ।' उसने बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये अम्माजी को बड़े आराम से धीरे–धीरे गोदी में उठाया और क्लीनिक की सीढ़ियों से नीचे उतार दिया। उसने अम्माजी को क्लीनिक की सीढ़ियों से तो नीचे उतार दिया, लेकिन घर भी तो पहुँचना था। नरेन्द्र जी ने डॉक्टर ने सहायक से कहा, ''भाई! आप अम्माजी को घर तक ही पहुँचा दो तो कितना अच्छा हो। घर यहीं पास में ही है।'' उसने पुन: बड़े आराम से अम्माजी को गोदी में उठाया और घर की ओर चल पड़ा। फ्लैट की सीढ़ियों के पास पहुँचकर उसने अम्माजी को आराम से गोदी से उतारकर पुन: अच्छी तरह से गोदी में उठा लिया गया और सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

जब तीन–चार सीढ़ियाँ शेष रह गयी, तभी गार्ड दौड़ता हुआ आया और बोला–'छोड़ो, मैं चढ़ाता हूँ अम्माजी को ऊपर।' अब तो ऊपर पहुँच गए, अब क्या चढ़ाएगा?' नरेन्द्रजी ने थोड़ा तल्खी से कहा। इसपर गार्ड ने कहा, 'पहुँच गए तो ठीक है, अब मेरे पैसे दे दो, मैं जाता हूँ।' नरेन्द्रजी ने सौ रुपये का एक नोट जेब से निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया। सौ रुपये का एक नोट देखकर गार्ड ने कहा, 'मेरी आपसे कितने में बात हुई थी?' नरेंद्रजी ने जवाब दिया, 'जाना और आना दो सौ रुपये में।' तो फिर सौ रुपये क्यों दे रहे हो?' गार्ड ने अशिष्टता से कहा। नरेंद्रजी ने कहा, 'क्योंकि तुमने सिर्फ आधा काम किया है। तुम अम्माजी को लेकर गए हो वापस नहीं लाए हो, इसलिए सौ रुपये दे रहा हूँ।' हिसाब से सौ रुपये ही बनते हैं तुम्हारे।' गार्ड ने अत्यधिक अशिष्टता प्रकट करते हुए कहा, 'तो फिर ये भी रहने दो।'

इसपर नरेंद्रजी की पत्नी को गुस्सा आ गया। उन्होंने गार्ड को डाँटते हुए कहा, 'एक तो काम ठीक से करना नहीं आता और काम पूरा नहीं करते और

ऊपर से बत्तमीजी भी कर रहे हतो। खबरदार जो बत्तमीजी से बोले।' फिर उसे सौ–सौ के दो नोट पकड़ा दिये। तबतक डॉक्टर के सहायक ने अम्माजी को उनके कमरे में पहुँचा दिया था। अम्माजी को उनके कमरे में पहुँचाकर जैसे ही वो जाने के लिए मुड़ा नरेन्द्रजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसका धन्यवाद किया। फिर अपने पर्स में से पैसे निकालकर उसके हाथ में देने लगे, तो उसने हाथ पीछे करते हुए कहा–'नहीं सर! नहीं, बिल्कुल नहीं।' नरेन्द्रजी ने पैसे जबरदस्ती उसकी जेब में डाल दिये और कहा, 'बड़े भाई की बात रख लो, बस और कुछ नहीं।' फिर नरेन्द्रजी ने कहा–'मैंने नेपालियों के वफादारी के सिर्फ किस्से ही सुने थे, लेकिन नेपाली इतने विनम्र और सेवाभाववाले होते हैं, यह आज अनुभव भी कर लिया।

ए.के. सिन्हा
युकूना ग्राम, विशाखापत्तनम
मो.–9652259270

महादेवी राज्यश्री

महादेवी 'राज्यश्री' महाराजा प्रभाकरवर्धन की पुत्री थी। उनके दो भाई थे–1 राज्यवर्धन और 2. हर्षवर्धन। हर्षवर्धन भारतवर्ष के अंतिम हिन्दू सम्राट थे। महाराज प्रभाकरवर्धन स्थानेश्वर (वर्तमान हरियाणा) के राजा थे। वे 'पुष्याभूरि' वंश के थे, जिनके वंश का शासनकाल 590 ए.डी. से 650 ए.डी. तक रहा। स्थानेश्वर एक छोटा राज्य था। उस समय भारतवर्ष में तीन प्रमुख शक्ति केंद्र थे–1. मगध, 2. मालवा, 3. कन्नौज।

राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजा गृहवर्मन, जो अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राजसिंहासन पर बैठा था, के साथ सम्पन्न हुआ था। इस संबंध में राज्यश्री के पिता प्रभाकरवर्धन अत्यन्त ही प्रसन्न थे। राज्यश्री का अनिंद्य सौंदर्य की स्वाभिनी थी। कन्नौज का राजा गृहवर्मन भी राज्यश्री जैसी रूपवती पत्नी को पाकर अत्यन्त प्रसन्न था। लेकिन उन लोगों की प्रसन्नता कुछ ही पलों की थी। विवाह की रात को ही मालवा का राजा देवीगुप्त कन्नौज पर आक्रमण करता है। इस लड़ाई में गृहवर्मन मारा जाता है और प्रथम रात्रि को ही राज्यश्री विधवा हो जाती है। राज्यश्री को देवीगुप्त बंदी बना लेता है और कारागार में डाल देता है। महाराज प्रभाकरवर्धन इस सदमे को सहन नहीं कर पाते और उनका देहांत हो जाता है।

महाराजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उनका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन सिंहासन पर बैठता है और एक बड़ी सेना लेकर मानव पर आक्रमण कर देता है। राज्यवर्धन देवीगुप्त का अंत कर राज्यश्री को कारागार से मुक्त करने में सफल हो जाता है।

किन्तु राज्यवर्धन की यह सफलता भी कुछ ही पलों के लिए थी; क्योंकि उसका सहयोगी बंगाल का राजा शशांक उसकी धोखे से हत्या कर देता और फिर से राज्यश्री को कारागार में डाल देता है।

राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद हर्षवर्धन सिंहासन पर बैठता है। उसका शासन 606 ए.डी–650ए.डी. तक था। वह अंतिम हिन्दू सम्राट था। उसने अपनी राज्य की सीमाएँ काफी विस्तृत कीं। हर्ष 16 वर्ष की अल्पायु में ही सिंहासन पर बैठा। उसके पिता और बड़े भाई की अकस्मात् मृत्य के कारण हर्षवर्धन को अल्पायु में ही राज्यकार्य सँभालना पड़ा।

बंगाल के राजा शशांक ने धोखे से राज्यवर्धन की हत्या कर दी और राज्यश्री को बंदीगृह में डाल दिया था। इसलिए सिंहासन पर बैठते ही हर्षवर्धन ने कामरूप के राजा भास्कर वर्मन की सहायता से बंगाल के राजा शशांक पर आक्रमण कर दिया। हर्षवर्धन ने रणभूमि में शशांक को पराजित तो कर दिया, लेकिन उसे बंदी न बना सका। शशांक रणक्षेत्र से भाग गया। इसके बाद वह बंगाल की राजधानी तक राज्यश्री को मुक्त करने के लिए पहुँचे; लेकिन अव्यवस्था का लाभ उठाकर राज्यश्री कारागार से भाग चुकी थी। हर्षवर्धन ने अपनी सेना के तुरंत आसपास के इलाके में खोजने का आदेश दिया।

राज्यश्री जंगल में इधर–उधर भटक रही थी। पति और भाई की असामयिक मृत्यु के कारण वह काफी निराश हो चुकी थी। उसने शरीर त्याग करने का निश्चय किया और स्वयं ही अपनी चिता तैयार की। वह चिता में प्रवेश करनेवाली ही थी, किन्तु सौभाग्यवश हर्षवर्धन उसी समय चितास्थल पर आ गया। इस तरह हर्षवर्धन राज्यश्री को अपने साथ कन्नौज ले आया और कन्नौज और स्थानेश्वर दोनों जगह अपने साम्राज्य की राजधानी बना ली।

राज्यश्री ने कन्नौज के राज सिंहासन पर बैठने से इंकार कर दिया और भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। यद्यपि उसके पिता प्रभाकर वर्धन और भाई हर्षवर्धन भगवन शिव के उपासक थे। राजमहल में भी वह एक बौद्ध भिक्षुणी की तरह रहती थी। वह अत्यन्त दयालु प्रवृत्ति की थी। उसका सबसे बड़ा कार्य यह था कि उसने सदियों से चली आ रही दासप्रथा को समाप्त कर दिया।

सत्य शुचि
साकेत नगर, व्यावर, राजस्थान
मो.–9413685820

एक जवाबदेही और

मिड डे मील कार्यक्रम के अंतर्गत अन्नपूर्णा दूध योजना में स्कूलों में बच्चों को अगले माह से रोजाना दूध मिलेगा। सरकार की इस सुनहरी योजना से भाव विभोर हो उठा, चुनांचे ऐसी दूध योजना से कक्षा एक से आठ तक के स्कूली बच्चे बेशक लाभान्वित होंगे, उसने विचारा देखते ही देखते तुरंत अखबार को टेबल पर धरा और उसने पत्नी को टेर लगाई–'अरे! सुनती हो...।'

क्षणों में ही पत्नी कमरे में नमूदार हुई। अभी बोले आपके दूध में चीनी कम डाली थी मैंने जान–बूझकर। पत्नी झेंपकर मिटाती–सी बोली। ना–ना, दूध तो सही था, मगर..!

मगर क्या..?खैर, बाद में बदलाऊँगा, अभी तुम खाने की तैयारी करो, मुझे निकलना है। ठीक है..!

पत्नी के जाते ही एकाएक वह मुदित–से बुदबुदाए, उसे अगले महीने से घर का दूध बंद करने में कहाँ नुकसान...। क्या वह इतना भी मैनेज नहीं करवा सकते हैं अपने स्कूल से! अंत–पंत, वह स्कूल के संस्था–प्रधान भी तो है।

अखबार

एक सुबह अखबार की डबल प्रति लान में निहारते–से क्षण भर वह हॉकर पर अचंभा करने लगा और फौरन ही फोन पर हॉकर को अवगत कराते हुए उसने अच्छा महसूस किया।

चंद मिनट में ही हॉकर उसके घर से गुजरा और खड़े–खड़े ही वह कह गया, 'आप जैसे ईमानदार लोग कमतर ही मिलेंगे साब! धन्यवाद!' और पसीने से तर–बतर वह आगे बढ़ चुका था।

गोकि हॉकर के चले जाने के बाद एक दफा उसकी चेतना झनझना उठी और देर तलक वह एक असमंजस्य भाव में झूलता रहा।

हाँ, उसके जैसे ईमानदार नहीं, बल्कि बेईमान–धूर्त लोग इस दुनिया मं एक ढूँढ़ो, दस मिल जायेंगे। उसने सोचा, अगर आज के अखबार में उसकी कोई रचना प्रकाशित हुई होती तो वह कदापि हॉकर को फोन नहीं करता और अभी दूसरी प्रति–कॉपी पाकर शायद खुश–खुश रहता...!

मगर झटपट ही उसी दौर में वह दूसरी प्रति को पाकर भीतर–ही–भीतर व्यथित होकर रह गया.

कहानी

नाग–फांस

राजेन्द्र राकेश
बोकारो इस्पात नगर, झारखंड
मो.–9204065910

दस्तक के अनन्तर उसने आवाज दी–'बेला दी, बेला दी।' दरवाजा खुला। राधा तुम, धन्य भाग्य हमारे, जो दर्शन हुए तुम्हारे। अरी! तुम तो पसीने से एकदम चपचप हो। ए.सी. खोला और दोनों एक दूसरे के पहलू में बैठ गई।

बता बात क्या है?बेला ने ही पूछ लिया।

दीदी...

हाँ–हाँ, बोलो...मैं तुम्हारी बहन–जैसी ही हूँ, कम–से–कम आठ साल तो बड़ी जरूर।

बेला दी! मैं आपके पास इसलिए आयी हूँ कि आप हसीन हैं, खुश मिजाज हैं, समझदार हैं, रोशनख्याल हैं और भी आपमें अनेक खूबियाँ हैं।

मैडम! जरा कसीदागोई बंद करके यह तो बताओ, बात क्या है?दीदी! मैं माँ बननेवाली हूँ।

होश में तो हो?क्या माँ बनना अभी इतना जरूरी है?काफिया खराब हो जाएगा मैडम और पूरी की पूरी जिंदगी बस नोन, तेल, लकड़ी में ही खप जाएगी, हाँ!

तो क्या करूँ?

तत्क्षण एबॉर्सन।

एबॉर्सन, दीदी!

हाँ, एबॉर्सन। मुझे देखो, कितना दनदना रही हूँ। मैंने भी एबॉर्सन करवाया था। अरे यार! जब जरूरी समझा जाएगा, बच्चे भी दनादन हो जायेंगे, फिकर नौट। लो, डॉक्टर से एबॉर्सन का डेट भी ले लेती हूँ। फोन लगाया, बात करने के बाद। राधा! तुम तो बहुत लकी निकली। शहर की बेहतरीन ग्यानोकॉलिजस्ट से डेट मिल गया। मैं क्लीनिक में समय पर आ जाऊँगी।

निर्धारित समय पर राधा लेडी डॉक्टर के पास गई और लौटते समय यह बेला दी के यहाँ नि:शंक भाव से चली गई। राधा को अपने पास देख, बेला को अपराध–बोध हुआ। जवाब में बस इतना कहा–'सॉरी, मैं तो चक्कर में फँस गयी यार। क्या कहें मेरे सास–ससुर का अचानक आगमन हो गया। खैर, काम हो गया न?डॉक्टर के यहाँ से ही आ रही हूँ दी। उन्होंने मुझे बहुत ही दिलकश अंदाज में, धारावाहिक रूप से समझाया। मैं तो पहले उनके व्याख्यान माला से चौंक गई, लेकिन तुरंत चौकन्नी भी हो गई। अच्छा, बेला ने अचरज से पूछा।

उम्र बढ़ने पर महिलाओं की माँ बनने की संभावनाओं में तेजी से गिरावट आती है; क्योंकि ज्यादा उम्र में गर्भधारण के लिए अधिक अंडाणुओं की आवश्यकता होती है, लेकिन विवशता यह है कि अंडाणुओं के बनने की रफ्तार हमेशा एक–जैसी ही रहती है।

अंडाणुओं के बनने की रफ्तार हमेशा एक–जैसी ही होती है, बेला ने कदाचित् अचरज व्यक्त किया।

बेशक, एक अंडाणु बनने में 28 दिन लगते हैं। उम्र से इसे कोई लेना–देना नहीं और उम्रदराज महिला को गर्भधारण के लिए अधिक अंडाणु चाहिए।

इतना सुनने के बाद बेला की आँखों के आगे तारे नाचने लगे। इसलिए अधिक उम्र में गर्भधारण करने की संभावना बेला दी 10 गुना कम हो जाती है। खुदा ना ख्वाश्ता उम्रदराज महिला माँ बन गई, तो इससे उत्पन्न अधिकांश बच्चे विकलांग या मानसिक रूप से कमजोर होने की संभावना अधिक होती है। मसलन यह विकलांगता माँ की उम्र से सीधा संबंध है।

अच्छा!कभी–कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि गर्भपात कराने के बाद महिलाओं में गर्भधारण करने की क्षमता ही समाप्त हो जाती है और लोग बाल–बच्चों के लिए जीवनभर तरसते, तड़पते और हाथ मलते रह जाते हैं। क्या कह रही हो राधा?कदाचित् उसे भी होनेवाले बहुकोणीय खतरे का आभास होने लगा था और बेला इसी चिंता में चूर हो गई।

जानती हो दीदी! ज्यादा एडवांस समझनेवाले दंपति प्राय: इसका शिकार होते हैं। डॉक्टर का विचार था। अचानक मुझे एक घटना याद आ गई। कहाँ भैया और भाभी सोच रहे थे–बच्चा अभी नहीं होने से हाथ में पैसा आएगा, हमलोग मौज–मस्ती से जीवन–यापन करेंगे। बच्चे अभी होने से चिंता एवं विकलता में बेतहाशा वृद्धि होगी। बहरहाल, भाभी ने गर्भपात करवा लिया। तो क्या हुआ राधा?

कभी वे लोग भी मुस्कुराते थे बेपनाह अंदाज में। अब सूरतेहाल यह है कि वे लोग अपने किये कर्मों पर ही रो रहे हैं बच्चों के अभाव में। भाभी की हालत तो और भी गंभीर है। उनका जीवन कितना शुष्क, सूना और सारहीन हो गया है।

सच कहती हूँ बेला दी! प्रकारान्तर से मैंने यही समझा, ऐसे पिच पर रिस्क लेना मेरे बूते की बात नहीं। यह अल्हड़ता है सरासर, कहते–कहते नौ दो ग्यारह हो गई राधा। बेला बस दीन–हीन दृष्टि से देखती रह गई।

कदाचित् राधा के इस पेशकश से बेला भी अकचका गई और उसकी आँखें छलछला गयीं। क्योंकि आठ साल पहले उसने भी गर्भपात करवाई थी। उसका पूरा बदन पसीने से तर–ब–तर हो गया था और वह अपने खानाखराबी पर पछताने लगी। उसी समय उसके सास–ससुर और पति मंदिर से आ गये और सीधे ड्राईंग रूप चले गये।

गर्मी का दिन था। वह शरबत ट्रे में लेकर जा रही थी और सोच रही थी कि वात्सल्य का नशा ही उसकी विपत्ति को बुला लेगा। उसे आवाज सुनाई दी–तुमलोगों को साथ लेने आई हूँ। किसी अच्छे ग्यानोकोलिस्ट से उपचार कराऊँगी। अगर बात न बनी तो तुम्हारी दूसरी शादी करने से भी परहेज न करूँगी, हाँ; क्योंकि तुम मेरी एकलौती औलाद हो।

माँ कदाचित् आवेश–प्रवाह में आ गयीं, मानो साक्षात् क्रोध मूर्तिमान हो गया।

इतन सुनते ही बेला की आँखों से छलछल आँसू बहने लगे और ललाट पर श्वेत बिन्दु तथा शरबत के गिलास से भरी ट्रे हाथ से छूट गया। शीशे का गिलास चकनाचूर हो गया और शरबत फर्श पर फैल गया।

कविताएँ

राजेन्द्र परदेशी
शिव विहार, फरीदीनगर
लखनऊ (उ.प्र.)

नारी

देने को
अनेक महान संबोधन
तुम्हें दिए गए
पर
आज तक दिया नहीं
समाज ने
समानता का अधिकार
क्योंकि
पुरुषत्व के अहम् को
ठेस जो लगती है
जब
तुम्हारी प्रगति देखता है
तो तुम्हें
रिश्तों की शृंखला से
ऐसा जकड़ दिया
कि
तुम्हारी अस्मिता
चारदीवारियों में कैद
छटपटाती रही
पुरुष को
अच्छी नहीं लगती
अपने आगे
तुम्हारी प्रसिद्धि–प्रतिष्ठा
उसे सह्य नहीं
तुम्हारे स्वाभिमान का फैलाव
तभी तो
जब–जब तुमने
उसके चंगुल से
मुक्त होने का प्रयास किया
उसने
तुम्हारे चरित्र पर ही
कीचड़ उछाली
अग्नि परीक्षा
या
जुए पर दाँव लगाने के लिए
तुम्हारा ही उपयोग
उचित माना गया
शोषण के लिए
आधुनिकी युग में
तुम ही बनी ब्लू फिल्म
तुम ही नग्न हुई
विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता में
भगवती जागरण के पवित्र कर्म से लेकर
कैबरे नृत्य तक

शब्द

प्रयोग के चंगुल में
फँस कर
कभी–कभी
दिग्भ्रमित हो
भाव को कुपित कर
अपने आप पर
आक्षेप का प्रहार
झेलता है
शब्द का प्रयोग
उचित भाव
उजागर में निहित है
अन्यथा
विद्वत जन
दुखी होकर

मंथन की स्थिति में
कोमा के करीब पहुँचकर
सही मान्यताओं से भी
हाथ धो बैठते हैं
क्योंकि
चिंतन के संग
ऐसी–विडम्बना
हो जी जाती है
कभी कभी
शब्दों के चयन की कर्मठता से
बड़ी सरलता से
भाव उभरकर
मानस को
प्रफल्लित कर
परम संतुष्टि से
गद्गद कर
आह्लाद–सुख की प्राप्ति
हो जाती है
साथ–तुष्टि शब्द का
सही प्रयोग भी
हो जाता है
जो
भाव की सौम्यता को
बरकरार रखता है।

शैलेन्द्र चतुर्वेदी
94 चौबान महल्ला
फिरोजाबाद
उ.प्र. 283203

राखी शुभ संदेश सुनाती हूँ

श्रावण की पूर्णिमा विमल
बहनों से मिलता भाई है
प्रकृति सुंदरी आनंद का
साम्राज्य देख मुस्काती है
छवि पूरित हो हँसती–सी
कुछ शुभ संदेश सुनाती है
खड़ी हुई है रंग–बिरंगे
सपनों की ले राखी–सी
ढूँढ रही दृग खोल–खोलकर
ज्यों भाई की झाँकी–सी
बहना कंपित उर क्षण भर को
देख छटा यह फूल उठा
भैया की स्मृति जागी है
भ्रातृ प्रेम में फूल उठा
एक डाल के फूल सदृश
दोनों ही मिलकर खिल उठे
राखी के दिन आते ही
बहना हँसकर दौड़ी आई
भैया लो बँधवाओ राखी
प्रेम मगन हो आई
देख बहन की भेंट मनोहर
दृग भैया के भर आए
सुदृढ़ कलाई पर राखी को
बाँध अमित सुख पाए
राखी है अथवा यह
प्रेम सुधा की धारा है
या आशीष बहत की
जिसको भाई अपना प्यारा है
भैया राखी बाँधो कर में
भाव यही उर में भरना।

कविताएँ

राजकुमार जैन राजन
आकोला राजस्थान
मो. 9828219919

बदली मंजिल

लिखना चाहूँगा
तुम्हारा इतिहास
अतीत से जुड़े पलों का
कुछ इस तरह पत्थर पर उकेरूँगा
कि तुम आज भी हो मेरे अहसासों में

मन के रेगिस्तान में
कुरेदे गए मेरे जख्मों को
तुमने ही सिया था प्रेम के धागे
और विश्वास की सूई से
मैं पिघलता रहा पल दर पल
तुम्हारे समर्पण से

तुम्हारे हर सवाल का जवाब
मेरी आँखों में था
और तुम
जमाने भर का दुःख ओढ़े
करती रही इंतजार
अपने अस्तित्व बोध में

छन जाता है सुख
समय की छलनी में
साथ चलते चलते
अचानक तुमने दिशा मोड़ ली
रास्ता बदल लिया
मुझे भ्रमित कर
और मैं व्यथित थका हुआ
बैठा हूँ
रेगिस्तान–सी चिलचिलाती धूप में

कब तुमने शामियाना उठा लिया
और चलती बनी
न जाने किस मंजिल मानकर
रास्ता तुमने बदला था
मंजिल मेरी भटक गई

समर्थन

यह जो मील के पत्थर
महज पाषाण नहीं है
गति है लय है
हमारे चलने के साथ
जीवन के साक्षी भी बनते हैं

जीवन में कुछ पल
अपने अस्तिबोध में
ऐसे भी होते हैं
जिनमें हम बुद्ध बन जाने को विवश होते हैं

खामोशियों में ही
मन के सुने गाँव में
शब्दों का अर्थ बदलते हुए देख
दिशाहीन इस जीवन में
विक्षिप्त–सी यह काया
कंधों पर चढ़कर
पहाड़ों को रौंदने का समर्थन करती रही

मील के पत्थर को साक्षी मान
असहायता से अतृप्त
मुट्ठियाँ मुड़ती हैं अपने आप ही
भींचने लगती है
आँधियाँ इसी तरह उठती है
और न जाने कितने हिस्सों में
बँट जाता है व्यक्तित्व

आँधियों के मिटने के
कोई तो दिन होगा
जो हमारी मुट्ठी में होगा
प्रकाश देगा।

सपनों के सच हो जाने तक

कई सपने
बाँधकर रखे हैं
जीवन की कुटिया में
रोशनी की छाँह तले
जिसमें सँजो रखा था हौसला
नव उत्कर्ष के लिए

पानी के बुलबुलों–सी
उठती है छिटपुट स्मृतियाँ
क्या होगा कविताएँ लिखकर
जिंदगी के अहम सवाल जब
शब्दों में ढलते ही नहीं
अक्षरों की कैद से
अर्थ कतराते हो जहाँ

कविताएँ

मनोरंजन सहाय सक्सेना
इन्द्रपुरी, जयपुर (राजस्थान)
मो.–9351288071

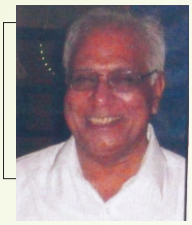

हे वसन्त

तुम ऋतुओं के नृप
नव संवत के
हो उद्‌बोधक
वन–उपवन में
नव पल्लव के
तुम्हीं हो जनक
तुम ही पोषक
गूँज उठे कोयल के
मृदु स्वर
ताल दे रहा
युवा मुदित मन
पंछी वन में,
हर्षित स्वर में
गाते कुहुक गान
रंजित मन
युवा वृक्ष
माधव का रूप घर
नाचे राधा लता संग
हो मुदित
चरवाहों के
मधुर गीत से
निर्जन चारागाह गूँजते
स्वागत में
ऋतुराज तुम्हारे
पंछी कलरव करे
विहरते
शस्य खेत में
विकसित जीवन
साँसों में मधुमास जगाता
खिले फूल कलियों का यौवन
नयनों में नव स्वप्न जगाता
जर्जर तन
गति यौवन प्रौढ़ा
रवि की ऊष्मा से
है प्रमुदित
चढ़ी दोपहर
वन प्रदेश में
प्रेमी युगल
रास क्रीड़ा रत।

होली के रंग

मनोरंजन सहाय सक्सेना
रंगपर्व की मस्ती में डूबा, फागुन का माह बताते हैं
होली में जेठ कहें भाभी, ब्रज में होली पर गाते हैं
पर नित्य ही होली और फागुन हर घर में लोग मनाते हैं
सुत के समवय की पत्नी को भाभीजी कहकर बुलाते हैं
वे कहते हैं नर–तनधारी जो भी समाज में रहता है
हम उसको भाई कहते हैं, वह हमको भाई कहता है
भाई की पत्नी भाभी है, यह तर्क खोखला उनका है
यह बहू कौन सा रिश्ता है, कहते मुँह पोपला जिनका है
है आज न मौसी, मामी, बुआ, आंटी में समा गईं सारी
मामा हैं न मौसा, ना फूफा, अंकल जी पड़े सब पर भारी
जीवित माता है आज ममी, और डैड है जिन्दा बाप यहाँ
फिर ग्रांड ममा और पापा में, दादी और दादा मिले कहाँ
भारतीय संस्कृति विस्मरण हेतु स्कूलों में अभियान चला
ऋतुराज आगमन इरानमन को भावी कर्णधर भूल चला
वेलेन्टाइन डे का उत्सव क्यों अनाहूत ही आया है
दिल की चाहत को जिसने पर–दर्शन को हेतु बनाया है
उत्पादक क्लर्क फैक्ट्री ने ऐसा उत्पाद चलाया है
सब है खरीदने को आतुर बचपन पर दाव लगाया है
भारी बस्तों से लदे हुए और होमवर्क से दबे हुए
दादी, नानी की परी कथाएँ बच्चे, बिल्कुल भूल गये
विक्रम सम्वत् का शुभारम्भ अब ज्ञात किसे कब होता है
बस एक जनवरी को सबका हैप्पी न्यू ईयर होता है
कब शुक्लपक्ष, कब कृष्णपक्ष यह ज्ञात नहीं अध्यापक को
वो जाने सिर्फ इंडिया को, क्या जान सकेंगे भारत को
भारत है भिन्न संस्कृति, भाषा के रंगों में रँगा हुआ
मधुरिम होली के रंग संग, गुझिया की प्रीति में पगा हुआ
भाभी, साली संग होली के मधुमय गीतों में रमा हुआ
रसिकों, मित्रों की टोली में फागुन–चैता बन जमा हुआ
तुम चुटकी भर गुलाल लेकर, मल दो इक सुंदर मुखड़े पर
होली की मधुर आत्मीयता का अनुभव कर पाओगे जी भरकर
तुम रंगपर्व में भारत का दर्शन कर लो आत्मीयता से
तुम भूल जाओगे दुनिया को भर आओगे अपनेपन से।
(इरानमन–सरस्वती पूजन।
क्लर्क फैक्ट्री–इंग्लिश मीडियम स्कूल)

क्षुधा के सृजन से

जब उदर गह्वर में/
उद्दीप्त होती है जठराग्नि
तो सूरज और चाँद सौंदर्य के प्रतिमान
नहीं रोटियाँ लगने लगते हैं
भूखे पेटों की आँतों में उठती हैं ऐंठन
सारे उपदेश निरर्थक लगने लगते हैं
जब क्षुधा पेट की अगर शान्त हो जाती है
तब ज्ञान सुधा की निर्मल ज्योति विहँसती है
कविता, चित्रांकन, राग, रागिनी का उद्‌भव
इस क्षुधा अग्नि से विलगित आकृति पाती है
जब भक्ति भाव से आलोकित होता है जन मन
स्वान्तः सुखाय गाते रामायण रच जाती है
ज्ञानाक्षर वंचित वाल्मीकि के श्रीमुख से
वह विश्वकाव्य का प्रथम छन्द बन जाती है
दर्शन करके हरिमूर्ति या
किसी ललना का
उत्कीर्णन क्षुधा
मूर्तिशिल्पी को व्याकुल करती है
अनगढ़ कठोर पाषाण शिला के अंतर से
एक पावन सुन्दर मूर्ति
नयन सुख देती है
सरिता तट पर
लहरों की अविरल कलकल ध्वनि
या वन प्रान्तर में मलयानिल का सनसन स्वर
जब स्वयं आत्मा में अंकित हो जाता है
तब मधुर राग–जीवन का
सिरजन पाता है।

कविताएँ

जीवन का अर्थ

जीवन के दोपहर की, ढलने आई धूप
लगा व्यर्थ खनते रहे, हम पर्वत पर कूप

सब बंधन सम्बन्ध के, खोने लगे जुड़ाव
साथी संगी छूट चले, लगता है दूर पड़ाव

एकाएक चुकने लगी, कर्म शक्ति सामर्थ्य
जंग लगे औजार सम, हम अब लगते व्यर्थ

जीवन भर गढ़ते रहे, सम्बन्धों के सेतु
कुछ अपनापन मिलेगा, अपनों से इस हेतु

पर ज्यों ही ढलने लगी, निज समर्थ की धूप
सभी सेतु खुद ढह गये, अनुभव हुआ अनूप

हुआ ज्ञान सामर्थ्य बिन, हो जाता सब व्यर्थ
रिश्तों की आत्मीयता, खो देती है अर्थ

इसीलिए अब अर्थ ही, है जीवन का अर्थ
है अनर्थ सब अर्थ बिन, अर्थ बिना सब व्यर्थ।

होली के रंग

मस्त फाग मन में करे, नव उमंग संचार
मारुति मादक परस से, तन में घुले खुमार

फूलन लगे पलाश, ज्यों विपिन में आग
रति के बिरहा में मदन गाता दीपक राग

रंग में डूबी मद भरी, फागुन की हर शाम
रसिया मन खुद को छले, मौसम है बदनाम

फागुन में हर पल करे, साँसें एक सवाल
बाल सखा क्या आयेगा, लेकर रंग गुलाल

होली के रंग मेघ बन, उड़ते संग समीर
उनसे ऊँचा उड़ रहा, बिरही चित्त अधीर

रंगों की बौछार है, किन्तु न वह आनन्द
छक कर जिसको ईसुरी, रच गये होली छंद

होली का उल्लास है, छाया दिशा दिगन्त
सबके जीवन में खिले, नित प्रति फाग वसन्त।

.....मनोरंजन सहाय सक्सेना

वक्त

वक्त ने किया है सितम वक्त ही मरहम देगा
चिंता मत कर रे मन यही दवा–ए–गम देगा

होगा सवेरा, निकलेगा सूरज, होगी रौशनी
बजेगा साज,निकलेगी तान, छिड़ेगी रागिनी
रात की क्या मजाल कि रोक सके वो सवेरा
धीरज रख वक्त ही फिर अपना हमदम देगा
वक्त ने किया है सितम वक्त ही मरहम देगा

चाँद है बदरी में पर बादल की औकात कहाँ
कुछ दिन संकट फिर आनंद का सौगात यहाँ
यकीन रख, गुलशन एक बार फिर लहकेगा
यही वक्त फिर खुशियों का आलम देगा
वक्त ने किया है सितम वक्त ही मरहम देगा

जहाँ में कुछ भी टिककर कभी नहीं रहता
दरिया भी कभी एक ही राह पर नहीं बहता
आग में जीने पर ही तो सोना कुंदन होगा
यही वक्त खुशियाँ हमेशा और हरदम देगा
वक्त ने किया है सितम वक्त ही मरहम देगा।

अंतर्मन का सपना

सच ही होगा अंतर्मन का सपना
कौन पराया, कौन यहाँ अपना

सारे लगे हैं स्वार्थ सिद्धि में
इस मिथ्या संसार की प्रसिद्धि में
काहे मनमा तू इस रेस में खड़ा
कर्म पथ पर तुझे है बस लगना
कौन पराया, कौन यहाँ अपना

क्या पहले हुआ उसको छोड़ो
आगे क्या, इस स्वप्न को तोड़ो
सम्प्रति आज जो है चल रहा
केवल उसी को तो है तकना
कौन पराया, कौन यहाँ अपना

जो मिला है वो अच्छा मिला
ईश्वर के दिये से हो कैसा गिला
नित आगे को बढ़ना ही बेहतर
निरंतर चलने से क्योंकर थकना
कौन पराया, कौन यहाँ अपना।

संजीव कुमार
कैरिया, कहलगाँव, भागलपुर
8002360699

बीते दिन याद दिलाते हो

बीते दिन याद दिलाते हो
यादों का पुष्प खिलाते हो

वह दौर था कितना हसीन
हरेक पल था जिसका रंगीन
ऐसे आनंदित क्षण लहराते हो
संस्मरणों का दीप जलाते हो
बीते दिन याद दिलाते हो

तब जल्दी से बड़ा होना था
भरा मन का कोना–कोना था
मन मखमल को सहलाते हो
स्मृति नैया को चलाते हो
बीते दिन याद दिलाते हो

फिर से वही बचपन हो
उम्र चाहे फिर पचपन हो
क्यूँ हमको ऐसे बहकाते हो
यादों का आईना दिखलाते हो
बीते दिन याद दिलाते हो

यादों के सहारे ही जीता हूँ
सारे जख्मों को सीता हूँ
क्यूँकर हमको समझाते हो
सुंदर लम्हों से बहलाते हो
बीते दिन याद दिलाते हो

उम्र तो संघर्षों में बीता
हर एक बाधा से है जीता
संस्मरणों से बतलाते हो
तभी तो संजीव कहलाते हो
बीते दिन याद दिलाते हो।

समीक्षा

हन्दी उपन्यास को नया धरातल देता कुबेर

बी एल. आच्छा
36 क्लीमेंट्स रोड, पुरुषवकम, चेन्नई
तमिलनाडु–600007
मो.–9425083335

डॉ. हंसा दीप का उपन्यास कुबेर कुछ मायनों में विशिष्ट है। एक फ्लैश बैक, जो ग्रामीण अंचल की टपरी से निकलकर न्यूयॉर्क की झिलमिलाती जिंदगी तक ले जाता है। यह गरीबी में घर से भागे, ढाबे पर बर्तन माँजनेवाले बालक के न्यूयॉर्क की कुबेर कंपनियों के मालिकाना वैभव तक ले जाता है। पर, इन दो अलहदा छोरों को मिलानेवाला तार है, सेवा का, मिशन का। इस मिशन की बीजविहीन जमीन है, ग्रामीण टपरी में भूख से विचलित माँ का कथन–''कुबेर का खजाना नहीं है मेरे पास जो हर वक्त पैसे माँगते रहते हो।'' और इस तपते मरुस्थल–सी भूख की जमीन से धन्नू का भागना, गुप्ताजी के ढाबे की रोटी के लिए बर्तन माँजने से लेकर 'जीवन ज्योत' के मिशनरी दादा के माध्यम से न्यूयॉर्क तक पहुँचना। धरती यह भी, धरती वह भी, जीवन यह भी, जीवन वह भी। धरती और जीवन के इन दोनों छोरों के बीच की गहरी फाँक एक अंतहीन खाई है, जिसे पाटने का मिशन ही गरीब माँ के कुबेर से न्यूयॉर्क के मल्टी कुबेर की जीवन यात्रा को उपन्यास बना देता है।

इस उपन्यास के कथाचक्र में जितनी वास्तविकताएँ हैं, उतने ही धन्नू के धनंजय प्रसाद और डीपी बन जाने के संयोग भी। अलग बात है कि ये संयोग दैवीय नहीं, उपन्यास के प्राणतत्व से जुड़े हुए हैं, जिसमें गरीबी को दूर करने का अनथक मिशन ही कारणभूत बना है, जीवन–ज्योत के दादा के अंतरंग दर्शन–मिशन सेवा से विदेशों में भी अपनी जमीन तैयार करता हुआ। एक दूरतर जमीन तक फैली इस औपन्यासिक कथा में दुनिया का अंधेरा भी है और गगनचुंबी इमारतों की रोशन दुनिया भी। पर इन दोनों दुनियाओं के अंतर में एक अंत सूत्र समाया है और वह है झिलमिलाती दुनिया में धन कमाकर अंधेरी जमीन को उजाले में बदलने का। और यह आकस्मिक नहीं है कि विवेकानंद ने भी शिकागो सम्मेलन के बाद भाषणों से डॉलर कमाकर भारत में भेजने का संकल्प डेढ़ सौ साल पहले किया और आज की भारत की पीढ़ी भी उस मिशन से इन अंधेरी–उजली दुनियाओं को मानवीय पक्ष से जोड़ रही है।

धन्नू, धनंजय प्रसाद, डीपी और डीपी सर। माँ का कुबेर का भूख से तड़पता उलाहना और अमेरिकी जमीन पर कुबेर का खजाना गढ़ती धन्नू से डीपी सर के आकाश की ऊँचाई। धन्नू से डीपी सर बना यह पात्र कभी नहीं भूलता कि 'पेट की भूख के सामने हर भूख छोटी लगती है।' यह बात इस उपन्यास की दो जमीनों को, दो सभ्यताओं को, बाजार की गलाकाट स्पर्धाओं और मानवीय स्पर्शों को, गरीबी और अमीरी के स्तरों को किसी आंतरिक पीड़ा, कुछ बड़े संकल्प और तकनीक पर टिके निरंतर विकसित होते बाजार में अपनी जद्दोजहद को एकतान किये रहती है। यह बनावट यदि कथासार पर है तो बुनावट में पूरब और पश्चिम की दुनिया की सोच भी इस उपन्यास को दृष्टिपरक बनाता है।

इस उपन्यास के उत्तरार्ध में अमेरिकी जीवन और बाजार सभ्यता के कितने ही दृश्य उभरे हैं, पर इनके भीतर सारे उतार– चढ़ावों के बीच रिश्तों का संसार और तकनीक की निरंतर अनथक दौड़ का मनोविज्ञान भी जगह पाता रहा है। इसीलिए आंतरिक स्पर्श, दार्शनिक मूल्य, निरंतर बदलते जीवन के साथ बदलाव का मनोविज्ञान, तकनीकी ज्ञान की ताकत, निरंतर चुनौतियाँ, एक बड़ा–सा कैनवास, टीम संस्कृति का बाजार वर्चस्व, भौतिक सुखों में भी मानवीय सरोकारों की सोच जैसे कई पक्ष व्यक्ति और समाज के स्तर पर खूब उतरे हैं। मसलन कसिनो का जुआ संसार भी अपनी हदों को पहचानता है। लोगों के आत्मनियंत्रण और बस्तियों के कल्याण की वांछा से पुष्ट है–''हर अमीर आदमी जब यहाँ आता है तो एक राशि तय करके आता है। उस बजट के अंदर ही वह रहेगा। इसके बाद जीता तो जीता, हारा तो हारा।'' लेकिन कसिनो का सामाजिक सरोकार भी है। ''कसिनो से प्राप्त राजस्व को यहाँ के नेटिव अमेरिकन्स यानी 'एबओरिजिनल्स' के उत्थान के लिए लगाया जाता है। लास वेगस के आसपास के कई रिजर्व है जो कसिनो के राजस्व के हकदार हैं।'' और इसे महाभारत के 'जुआघर' के समानान्तर रखकर कहा गया है–''ये किसी महाभारत को रचते या किसी द्रौपदी को दाँव पर लगाते नहीं थे, बल्कि मन के पैसों की भूख मिटाने के लिए थे। ये शकुनि कभी नहीं कहलाते, पर इतिहास को बदलने का माद्दा रखते। इनकी हर हाल में जीत ही होती। इनमें कोई शकुनि किसी को फँसाता नहीं ना ही कोई धर्मराज युधिष्ठिर इसमें फँसते चले जाते।'' दरअसल आनंद और हर दिन को उत्सव मानकर जीने का यह सोच इस झिलमिल विकास का मनोविज्ञान है।

ऐसा भी नहीं कि इस रंगीन धरती का उत्सवी मनोविज्ञान आहत नहीं है। निरंतर दौड़, बाजार लक्ष्यों की प्रतिस्पर्धा, तकनीक के निरंतर विकास से पुराने औजारों को पीछे छोड़ पैसा कूटने की मानसिकता के साथ इस झिलमिलाती सभ्यता का अंधेरा पास्कल साहब के पारिवारिक जीवन की नियति में देखा जा सकता है–''दो बार शादी, दोनों बार तलाक, कड़वे तलाक, आरापों–प्रत्यारोपों वाले तलाक। आर्थिक सेटलमेंट कमर तोड़कर रख देते हैं। मासिक खर्च के साथ संपत्ति चली जाती है। संपत्ति ही नहीं मन की अच्छाइयाँ भी उसके साथ चली गयी थीं।'' और इसके विपरीत डीपी का परिवार। खून का रिश्ता नहीं फिर भी धीरम, ताई, जॉन, मैरी और परिवार जीवन–ज्योत के बच्चे। लेखिका ने इन समानांतर कथाविन्यासों के साथ उनके परिदृश्यों के परिणामी मनोविज्ञान की तहों का भी स्पर्श किया है।

यों तो दुनिया के इन दोनों छोरों और सभ्यता के परिदृश्य ठीक से अंतर्ग्रथित हैं, जो कथाविन्यास को संक्रमित करते रहते हैं, पर इनके भीतर तमाम संघर्षों के बीच जीवन की सच्चाइयाँ आंतरिक स्पर्श पाकर तरल–सी मूल्यवत्ता बन जाती हैं। कभी दार्शनिक फलसफे में, कभी सूक्ति की सोच में, कभी जीवन के मूल्यपरक अंदाज में, कभी समय के साथ आदमी के बदलाव की प्रकृति में, कभी रिश्तों की अनजानी दृष्टि में, कभी औरों की पीड़ा सहेजने में। कभी किसी संकल्प को अनासक्त होकर आनंद के साथ जीने में और कभी बाजार की सारी स्पर्धाओं के बीच इस सत्य को पाने में भी–''कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता, ना ही किसी काम को करने से कोई आदमी छोटा होता है, बल्कि वह उदाहरण पेश करता है दुनिया के सामने अपनी मेहनत का अपनी खुद्दारी का।'' भारतीय जाति व्यवस्था और श्रेष्ठता को चुनौती देती पश्चिम के बाजार की यह सच्चाई अन्य बातों के बावजूद मनुष्यता और उसकी जीवट को सूत्र बनाती है। पूरे उपन्यास में बाजार सभ्यता की बीज शब्दावली, बाजार संस्कृति और उसकी हार–जीत की उखाड़–पछाड़ के अंदाज हिन्दी उपन्यास के कैनवास को बड़ा भी बनाते हैं और समानांतरता में पाठकीय सोच के धरातल को नये सोच से संक्रमित भी करते हैं। जीवन–ज्योत का क्रियापरक, सेवापरक मानवीय सोच न्यूयॉर्क की जमीन पर मानवीय सरोकार की तकनीक के माध्यम से साधने की जद्दोजहद तक ले जाता है–''क्या हम दिव्यांग लोगों के लिए ऐसे प्रोग्राम तैयार कर सकते हैं, जिसमें एक दृष्टिहीन अपने हाथ में उस यंत्र को लेकर अपने दिमाग में हम देख सकें, एक बधिर उसके माध्यम से सब कुछ सुन सके और एक मूक उसके द्वारा बात करके निर्देश दे सके।'' निश्चय ही यह दो सभ्यताओं की सोच को अपनी पूरक साध्यता में प्रस्तुत करती निरपेक्ष सोच है, बेहतर मानवता के लिए।

'कुबेर' का युवा हाता धीरम, धनंजय उर्फ डीपी के मूल्यबोध और तकनीकी विकास का अगला सोपान देते हुए मानवीय प्रगति के नवोन्मेषी सिलसिले को अनथक अंदाज देता है। यहाँ डीपी सर का अध्याय साँसें गिनता है, पर इन्हीं टूटती साँसों के बीच धीरम के भाषण पर बजती तालियाँ इस नवोन्मेषी मानवीय सोच को नया प्रतिमान देती है–''यहाँ एक नहीं, कई कुबेर खड़े हैं।'' सरल–सी प्रवाही भाषा, उलझावहीन कथानक, देश–विदेश की सभ्यता–संस्कृति के अंत–संक्रमित परिदृश्य, बाजार सभ्यता का अंतरंग और घटनाचक्र से फूटती तरल सोच निश्चय ही इस उपन्यास को पठनीय बनातह हैं। प्रवासी आँख में बसा भारत और अमेरिकी जीवन से जुड़ता जीवन उस अनुभव को उतार लाता है, जो नरेटिव नहीं अनुभवपरक है और लेखिका का सधा हुआ अनुभव धाराप्रवाह होकर तरल स्पर्शों से भरा–पूरा है।

आलेख

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

विनय कुमार सिंह
गाँधीनगर, बरियारपुर, मुंगेर
मो.–9570638908

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।''

(भारतेन्दु समग्र, हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान, पृ. 228)

हमारे देश में प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को जब हिन्दी–दिवस मनाया जाता है तो उपर्युक्त पंक्ति प्रत्येक वक्ताओं के मुँह से कहा–सुना जाता है, इस लिहाज से यह पंक्ति कालजयी हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सभी प्रकार की उन्नति का मूल अपनी निज भाषा हिंदी को मानते थे, हालाँकि उस समय भारत में अंग्रेजों का राज था। अंग्रेज स्वयं को सुसभ्य, सुसंस्कृत मानते थे, इसलिए उनका मानना था कि वे भारतीयों को सुसभ्य बनाने की नीयत से ही अपनी भाषा अंग्रेजी थोपना चाहते हैं। अंग्रेज और अंग्रेजी भाषा को हिकारत की नजरों से देखते हुए उनकी मुकरी द्रष्टव्य है–

''भीतर भीतर सब रस चूसे, हँसि–हँसि कै तन मन धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन ?नहिं अंग्रेज.''

(नये जमाने की मुकरी, पृ. 256)

''सब गुरुजन को बुरो बतावै, अपनी खिचड़ी अलग पकावे
भीतर तत्व न झूठी तेजी, क्यों सखि सज्जन ?नहिं अंग्रेजी.''

(वही, पृ. 256)

ऊपर की पंक्ति में अंग्रेजों को भारत का तन–मन–धन लूटने वाला बताया गया है। वहीं दूसरी पंक्ति में अंग्रेजी के खोखले शान पर व्यंग्य भी किया है। भारतेन्दु कहते हैं कि अंग्रेज और अंग्रेजी दूसरे को बुरा बता रहे हैं, लेकिन स्वयं उसके अंदर वह तत्व और तेज नहीं है, जिसकी बात वे स्वयं की भाषा के बारे में कहते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 ई. में (काशी) हुआ था। उनके पिता बाबू गोपाल चन्द्र उर्फ गिरधर दास स्वयं कवि थे। काव्य प्रतिभा उन्हें विरासत में प्राप्त हुई थी। कहते हैं भारतेन्दु महज पाँच वर्ष की आयु में दोहा लिखकर अपने पिता को दिखाया, उन्होंने उन्हें यशस्वी कवि होने का आशीर्वाद दिया और वह पूर्णरूप से फलीभूत भी हुआ।

भारतेन्दु के माता–पिता की मृत्यु जब वे युवावस्था में थे, तभी हो गयी थी, लेकिन उनके माता–पिता का भारतेंदु पर काफी प्रभाव पड़ चुका था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बताया है कि कैसे भारतेन्दु ओड़िसा में पूरी के जगन्नाथ मंदिर अपने परिवार के साथ 1865 ई. में गये थे, जब वे 15 वर्ष के थे। इस यात्रा के समय बंगाल पुनर्जागरण काल का उनपर काफी प्रभाव पड़ा और उसी समय उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों और हिन्दी उपन्यासों की रचना करने का निर्णय लिया था। इसी प्रभाव के चलते उन्होंने 1868 ई. में बांग्ला नाटक विधासुंदर का रूपांतर हिन्दी भाषा में किया था।

भारतेन्दु ने अपना संपूर्ण जीवन हिन्दी साहित्य के विकास में लगाया। लेखक, देशभक्त और आधुनिक कवि के रूप में उन्हें पहचान दिलाने के उद्देश्य से 1880 ई. में काशी के विद्वानों ने सामाजिक सभा में उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी थी, प्रसिद्ध साहित्यिक आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने भी उन्हें 'द्विवेदी साहित्य का सबसे प्रभावशाली और हिन्दी साहित्य का जनक और नायक' बताया।

पत्रकारिता, नाटक और कविता के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने 'कविवचन सुधा' जैसी पत्रिका को 1868 में संपादित किया। 1874 ई. में उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से देश के लोगों को देश में बने उत्पाद का उपयोग करते हुए स्वदेशी अपनाओ का नारा दिया था। इसके बाद 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र' और 'बालबोधिनी' पत्रिका में उन्होंने देश के लोगों को स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की अपील की थी। बाल बोधिनी में नारी की समानता, नारी की शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह पर रोक, सती प्रथा का विरोध पर विशेष रूप से जोर दिया। भारतेन्दु पर महान समाज सुधारक व आधुनिक भारत के निर्माता राजाराम मोहन राय के विचारों का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। भारत की धन–संपदा किस प्रकार अंग्रेज लूटकर अपने देश ले जा रहे हैं और भारत को खोखला बना रहा है। इस विषय पर उन्होंने 'भारत दुर्दशा' नाटक लिखा, जो उस समय काफी चर्चित रहा। भारतेन्दु न सिर्फ नाटक लिखते थे, बल्कि स्वयं अभिनय भी करते थे। 'भारत दुर्दशा' नाटक के प्रारंभ में उनकी ही लिखी कविता की चंद पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

''रोअहू सब मिलके आवहु भारत भाई
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई
अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन बिदेश चलि जात इहे अति ख़्वारी
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी
दिन–दिन दूने दुःख ईस देत हा–हा री
सबके ऊपर टिक्स की आफत आई
हा–हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।''

–भारत दुर्दशा, पृ. 460–61

आलोचकों की नजर में भारतेन्दु का सबसे बड़ा योगदान नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में रहा है। उन्होंने पहली बार हिन्दी में मौलिक नाटकों की रचना की। अपने छोटे से जीवन में भारतेन्दु ने मौलिक और अनुदित मिलाकर 17 नाटक लिखे। इसके अलावा वे एक अच्छे अभिनेता भी थे। लिहाजा रंगमंच में भी उन्होंने कई प्रयोग किये। इसलिए उन्हें हिन्दी नाटक का युग प्रवर्तक करार दिया गया। उन्होंने नाटक के कथानक को काफी विविध बना दिया। उनसे पूर्व के नाटक धार्मिक और भावुकता प्रधान थे। इसकी जगह उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक नाटक लिखे। इसके जरिये उन्होंने तार्किक चिंतन विकसित करने की कोशिश की। इनके लिखे 'भारत दुर्दशा', 'अंधेरी नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' जैसे नाटक अभी भी मंचित हो रहे हैं। ये सभी प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। हिन्दी में पहली बार प्रहसन लिखने की शुरुआत इन्होंने ही की और उसे उसके शीर्ष तक पहुँचाया। इस विधा के जरिये उन्होंने समाज में गहरी पैठी समस्याओं पर व्यंग्य के माध्यम से करारा प्रहार किया था। इनका रंगमंच के क्षेत्र में काफी योगदान रहा। वेश, वाणी, अभिनय के स्वरूप और गीतों के स्वाभाविक प्रयोग आदि पर इन्होंने काफी काम किया। इन्होंने पारसी और पश्चिमी थियेटर के अति प्रभाव से दूर करते हुए हिन्दी रंगमंच की स्थापना की।

'भारत–दुर्दशा' नाटक में प्रयुक्त कविता की चंद पंक्तियों से उस समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थितियों का पता सहज ही चल जाता है। आम जनता किस प्रकार गरीबी, महँगाई, रिश्वतखोरी और टैक्स की मार से पीड़ित था। उनका दुःख घटने के बजाय बढ़ता ही चला जा रहा था, इससे मुक्ति के लिए वे भारतीयों का आह्वान करते दिखाई दे रहे हैं।

भारतेन्दु का एक और चर्चित नाटक 'अंधेर नगरी' की कुछ पंक्तियाँ

को देखें–
कुंजड़िन–''जैसे काजी वैसे पाजी, रैयत राजी टके सेर भाजी,
ले हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर।''
(वही, पृ. 531)

भारतेन्दु जिस वक्त लिख रहे थे, उस वक्त सीधे–सीधे बहुत कुछ कहना संभव नहीं था; क्योंकि अंग्रेजों का शासन था। इसलिए उन्होंने व्यग्य का सहारा लिया, जो उस समय ही नहीं, आज भी बेहद पसंद किया जाता है। ''हिन्दुस्तानियों को चेताते हुए दो फल फूट और बैर के माध्यम से उन्हें उसे भुलाकर भारत की आजादी के लिए प्रेरित करते नजर आते हैं। उस समय भी पुलिस प्रशासन आज की ही तरह पतित व भ्रष्ट था। देखें, कुछ पंक्ति–
पाचकवाला–''चूरन पुलिसवाले खाते हैं, सब कानून हजम कर जाते हैं।'' और ''चूरन अमले सब जो खावे, दूनी रिश्वत तुरंत पचावे।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि रिश्वत का चलन उस समय भी था।
''रूप दिखावत सरबस लुटे, फंदे में जो पड़ै न छूटे,
कपट कटारी जिय में हुलिस, क्यों सखि सज्जन?नहिं सखि पुलिस।'' (नये जमाने की मुकरी, पृ. 256)

उस वक्त भी बेरोजगारी चरम पर थी–
''तीन बुलाए तेरह आवे, निज–निज बिपता रोई सुनावै,
आँखों फूटे भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन?नहिं ग्रेजुएट।''
(वही, पृ. 256)

भारत के आम–अवाम टैक्स व चुंगी देते–देते तबाह हो रहे थे, लेकिन अंग्रेज मौज–मस्ती कर रहे थे।
''धन लेकर कछु काम न आवै, ऊँची–नीची राह दिखावै,
समय पड़े पर सीधै गुंगी, क्यों सखि सज्जन?नहिं सखि चुंगी।
(वही, पृ. 256)

अंग्रेजों के बनाये हुए कठोर कानून से जनता त्रस्त थी और उसे तोड़ना चाहती थी।
''नई–नई नित तान सुनावै, अपने जाल में जगत फँसावे,
नित–नित हमे करै बल सून, क्यों सखि सज्जन?नहिं कानून।''
(वही, पृ. 256)

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र केवल 35 वर्ष की आयु में ही (6 जनवरी, 1885 ई.) इस नश्वर शरीर को छोड़कर संसार से अलविदा कह गये, लेकिन इतने ही अल्प समय में उन्होंने गद्य से लेकर कविता, नाटक और पत्रकारिता तक में हिन्दी का स्वरूप बदलकर रख दिया। अल्प आयु में ही उन्होंने दुनिया छोड़ दिया, लेकिन दुनिया छोड़ने से पहले वे अपने क्षेत्र में इतना कुछ कर गए कि आश्चर्य होता है कि कोई इंसान अपनी छोटी उम्र में इतना कुछ कैसे कर सकते हैं। हमें मालूम हो या न हो, लेकिन यह सच है कि आज का हिन्दी साहित्य जहाँ खड़ा है, उसकी नींव का ज्यादातर हिस्सा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी साहित्य मंडली ने खड़ा किया था। भारतेन्दु ने न केवल नई विधाओं का सृजन किया, बल्कि वे साहित्य के विषय में भी नयापन लेकर आए, इसलिए उन्हें भारत में नवजागरण का अग्रदूत माना जाता है।

उनसे पहले हिन्दी साहित्य में मध्यकाल (रीतिकाल) की प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं, इसलिए उनसे पहले का साहित्य बुनियादी जरूरतों से बिल्कुल कटा हुआ था। साहित्य का पूरा माहौल प्रेम, भक्ति और अध्यात्म का था। इसे अपने प्रयासों से उन्होंने बदल डाला। उन्होंने हिन्दी साहित्य को देश की सामासिक संस्कृति की खूबियों के साथ–साथ पश्चिम की भौतिक और वैज्ञानिक सोच से लैस करने का हर संभव प्रयास किया।

आधुनिक विचार ईश्वर और आस्था की जगह मानव और तर्क को केन्द्र में रखते हुए साहित्य–सृजन किया। भारत की गुलामी और मध्यकालीन सोच की जंजीरों में जकड़े भारतवासियों को भारत माता की आजादी और मुक्ति के लिए प्रेरित किया। साहित्य में बुद्धिवाद, मानवतावाद, व्यक्तित्ववाद, न्याय और सहिष्णुता के गुण लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आये।

चिड़िया

महेन्द्र देवांगन 'माटी'
8602407353

लाती तिनका
बनाती घोंसला
बच्चे पालती

दाना चुगाती
चींव–चींव करती
भूख मिटाती

पंख फैलाती
उड़ना भी सिखाती
चिड़िया रानी

नीड़ बनाती
बच्चे चहचहाते
शोर मचाते

प्यार करती
चहकती चिड़िया
खुश रहती

सुंदर पक्षी
बहेलियों से डर
माँ बतलाती

जाल फैलाते
दाने का लोभ देते
झट फसाते।

सूचना

मान्यवर !माननीया!

हिंदी साहित्य के उद्भव और विकास में बिहार का अवदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा है, जिसे हम सातवीं शताब्दी के सरहपाद से लेकर बीसवीं शदी के अन्त तक, विभिन्न विधाओं में रचे गए विपुल साहित्य को देखकर समझ सकते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ चाहे जो कोई भी हो, कारण कोई भी रहा हो 'बिहार का हिन्दी साहित्य' जिस मूल्यांकन की मांग करता है वह अनदेखी ही रहा गई, और शायद वह आज तक अपेक्षित है। इसलिए इस स्थिति को कुछ हद तक दूर करने के लिए मैंने 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' जैसा एक ग्रन्थ सृजन का संकल्प लिया है जो अब पूर्णता की ओर है।

उक्त संदर्भ के आलोक में आप से सादर आग्रह है कि किसी कारणवश मैं यदि आप तक नहीं पाया हूँ तो मुझे अपनी कृतियों के साथ संक्षिप्त परिचय देने का कष्ट करेंगे ताकि मैं उसे इस ग्रंथ में अंकित कर सकूँ।

निवेदक
दयानन्द जायसवाल
Mob. : 9931240303

पुस्तक समीक्षा

डू नॉट लॉस योर कूल, लेट गो ऑफ योर इगो

दयानन्द जायसवाल

कमोडोर चन्द्रशेखर आजाद का निबंध संग्रह 'डू नॉट लॉस योर कूल, लेट गो ऑफ योर इगो' है, जिसमें अपनी शान्ति को मत खोएँ और अहंकार से अपने को दूर रखें, को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है। रचना में इन्होंने बताने का प्रयास किया है कि हम अपने जीवन को और सरल एवं सहज कैसे बना सकते हैं। सकारात्मक व्यवहार की योग्यताएँ 'जीवन कौशल' ही जीवन की चुनौतियों से निपटने के लिए हमें सक्षम बनाती है। इसके लिए संवेग या भावना की आवश्यकता है, जिसे हम उद्दीपक द्वारा अनुभव करते हैं। यह संवेदन चेतन उत्पन्न करने की अत्यन्त प्रारंभिक स्थिति है, जिसे हम मानवीय संवेदना कहते हैं, जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। इसका अहसास ही अच्छे–बुरे की पहचान का केन्द्रीय कारण है। संवेदना का धरातल चाहे जो हो, इन्होंने इसके माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव संबंधों की सूक्ष्म परख परिभाषित की है। मानवीय संवदेना सुखात्मक और दुःखात्मक दो प्रकार की होती है। वेदना की अनुभूति बड़ी व्यापक एवं गम्भीर है। इसे हम सुखात्मक कैसे बना सकते हैं।

अहंकार रहित जीवन ही स्वयं को या समाज को शांति या सुख देता है। जीवन में अवसर वह अनमोल मोती है, जिसे हड़पने के लिए विध्वंसक व सर्जक सदैव आतुर रहते हैं। यदि अवसर विध्वंसक के हाथ लगता है, तो विनाश, अशांति, पीड़ा, दंश, असंतोष और पश्चाताप बनकर जीवन को पीड़ामय बनाता है; लेकिन यदि सर्जक के हाथ लगता है तो आनंद, उत्साह, संतोष, शांति, हर्ष, ज्ञान सुख, सौहार्द, प्रेम व भाईचारे की आधारभूमि बनाता है।

चिता और चिंता समान कही गई है, परन्तु चिंता में प्रयुक्त बिन्दु की एक विशेषता होती है–चिता मृतक को जलाती है और चिंता जीवित को। इसलिए वर्तमान को विस्मृत कर भविष्य की चिंता में घुलते जाना केवल मूर्खता ही है। तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्य का वर्तमान उज्ज्वल नहीं है, उसका भविष्य भी कदापि सुखद व सुंदर नहीं हो सकता। अतः सदैव वर्तमान में बहुत पाने की लालसा को छोड़कर सुख, शान्ति और संतोष में जीएँ। हालाँकि भविष्य को भी नजरअंदाज करना अनुचित है, किन्तु आज भूखे रहकर भविष्य के लिए रख देना या उसका सुंदर व सुखद स्वप्न में वर्तमान खराब कर लेना विवेकहीनता है। चन्द्रशेखर जी कहना चाहते हैं कि चिंता का मुख्य कारण आज की भौतिक एवं शीघ्रता से धनी बनने का लक्ष्य और आपाधापी–भरे जीवन की देन है। इसमें हम अस्त–व्यस्त हो जाते हैं। छोटी–बड़ी समस्याओं से घिर जाते हैं और असंतुष्ट हो जाते हैं। जरूरत है जीवन के हर पल को सार्थक बनाने का, परिधि से बाहर आने का, उनके समय, साधन और समझ के अनुरूप सजगतापूर्वक जीने का। उतावलापन वर्तमान युग की महामारी है। जीवन में जहाँ अधीरता व जल्दीबाजी होती है, वहाँ व्यक्ति निश्चित रूप से मानसिक तौर पर अस्त–व्यस्त हो जाते हैं। फलस्वरूप लाभ को हानि में, सफलता को असफलता में बदल देते हैं। पूरा आनन्द ही समाप्त हो जाता है। लोभ–लालच में फँसकर अपने मन का चैन खो बैठता है और मस्तिष्क खोखला बन जाता है, प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता घट जाती है, मन शंका–कुशंका, भय और भ्रम की आशंक से घिर जाता है। अपना वर्तमान तो खराब होता ही है, दूसरों के लिए भी समस्या बन जाते हैं।

निबंधकार चन्द्रशेखर आजाद का कहना है कि हमें यह मानकर चलना चाहिए कि जिंदगी का कोई भी लम्हा मामूली नहीं होता, हर पल वह हमारे लिए कुछ–न–कुछ नया प्रस्तुत करता रहता है। इसके लिए जरूरी है हमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, काम और अकाम, कर्मण्यता और अकर्मण्यता दोनों के बीच संतुलित स्थापित करना होगा। स्वस्थ और संतुलित जीवन–शैली के लिए जरूरी है–दोनों के बीच संतुलन स्थापित होना। मानव जीवन का अर्थ सिर्फ खाना, पीना और सोना इतना ही मान लिया जाए तो मनुष्य और पशु–पक्षी में क्या अंतर रह जाएगा। मनुष्य की सर्वाधिक श्रेष्ठता तो विवेक–बुद्धि और परोपकार–प्रवृत्ति में है। मनुष्य जबतक अपने–पराये के भेद–भाव को कम करके अन्य लोगों का भी ख्याल न रखेगा, तबतक वह वास्तविक सुख के दर्शन नहीं कर सकता। अपनी पुस्तक में इन्होंने कहा है–समत्व भावना की समस्त साधना सहयोग, प्रसन्नता, उल्लास, उत्साह, आशा और सुख का अंतिम लक्ष्य है। जीवन तो कोरा कागज है, जो लिखेंगे, वही पढ़ेंगे। इसके कागज और कलम निष्पक्ष और निश्छल हैं।

आज के इस अशांत–भरे वातावरण में जहाँ हर कोई परेशान है, कोई–न–कोई तकलीफ से घिरे हैं, अधिकांश लोग दुःखी हैं, ऐसे में इनकी कल्पना है, इनकी सोच है कि कैसे जीवन को संपूर्ण स्वादों से सजग बनाया जा सके। इनकी सोच में मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ हैं तथा विस्तारित चैतन्यता के सुपरिचित लक्षण भी हैं। इनकी संवेदनशीलता मानवीय पक्ष की सौंदर्यता को उकेरी है। इन्होंने जीवनशैली को ही विस्तृत आयाम देकर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः ...' की श्रेष्ठता और सद्भावना को उत्तरोत्तर बढ़ाने का प्रयास किया है। यह भी बताने का प्रयास किया है कि मानव जीवन ही परमार्थ के लिए है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में जो सुख–शान्ति है, जीवन की सार्थकता है, वह अन्यत्र कहाँ?अगर वृक्ष से फल–फूल की जगह छाया भी न मिले तो वृक्ष की उपयोगिता या मानवीय बड़प्पन की क्या सार्थकता है!इस प्रकार इन्होंने जीवन को खूबसूरत और हसीन देखने की कल्पना को अपने शब्दों में प्रतिबिम्बित किया है। इसमें संवेदना की स्वच्छन्दता को बनाये रखने का भी प्रयास किया गया है। इनकी यह सर्जना एक सुखद एहसास है, आध्यात्मिक रसास्वादन है, प्रेम तथा स्नेह की अभिव्यक्ति है, इन्सानी रिश्तों का दर्शन है तथा इसकी उपमाएँ–उपमान जीवन की यथार्थ से जुड़े हैं। मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय

भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303

Sakshi Card, BGP 7004435995